गुरु माहात्म्य

शंकराचार्याश ब्रह्मानंद अक्षयरुद्र

ऐं
जय माँ महासरस्वती

ॐ नमो गुरुभ्यो गुरुपादुकाभ्यो

परमगुरु ज्ञान का सागर

परम गुरु ज्ञान का सागर होते हैं जो हमें सही मार्ग पर चलाते हुए आत्म ज्ञान प्रदान करते हैं और यथार्थ पराविज्ञान देकर भवरोग से मुक्त करते हैं। सद्‌गुरु की कृपा से ही मनुष्य अपने लक्ष्यों को प्राप्त कर धन्य हो पाता है। गुरु हमें अज्ञानता से ज्ञानता की ओर ले जाते हैं। चित्त को विश्रांति देते हैं। गुरु का आशीर्वाद हमारे जीवन को सुखी और समृद्ध बनाता है, पर गुरु भी अनासक्त और जितेंद्रिय होना चाहिए अंधविश्वास से कोई लाभ नहीं। गुरु हमें अपने जीवन के उद्देश्य को समझने में मदद करते हैं उद्देश्य से ही मनुष्य सही मार्ग पर स्थित हो पाता है। गुरु की शिक्षा हमें आत्मविश्वास और सशक्त बनाती है। गुरु हमें जीवन के हर क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिए प्रेरित करते हैं। गुरु की कृपा से हम अपने जीवन को सार्थक बना सकते हैं। पर ऐसा तभी हो पायेगा जबकि हम उनकी आज्ञा को मानें। मात्र उपदेश श्रवण से क्या लाभ ? उदाहरण–रोटी बनाने की विधि का ज्ञान हो पर रोटी न बनाओ तो भूख कैसे शान्त हो पायेगी। गुरु हमें अपने कर्तव्यों को समझने और उनका पालन करने में सतत् मदद करते हैं। गुरु हमारे जीवन के सच्चे मार्गदर्शक होते हैं, जो हमें जीवन के हर कदम पर सही निर्णय लेने में मदद करते हैं।

अतः गुरु के ज्ञान को आत्मसात अवश्य करना चाहिए। उसी में कल्याण निहित है पर जो गुरु शास्त्र विरुद्ध आज्ञा दे उसका त्याग भी करें ऐसा शिव पुराण का आदेश है। सार समझें तो सार यही है कि साधन चतुष्ट्य से संपन्न और अपरोक्ष ज्ञाननिष्ठ गुरु ही एकमात्र ध्येय है।

शंकराचार्यांश ब्रह्मानंद अक्षयरुद्र (अंशभूतशिव मानस रत्न)
जिला गुना मध्य प्रदेश (भारत)
ग्राम – पाडरखेड़ी
संपर्क– 9340–53–7971

*****

अनुक्रमणिका

क्र.	अध्याय	पृष्ठ
1.1	गुरुदेव की कृपा ही आनंद का एकमात्र आधार है	1
1.2	गुरुओं के प्रकार	3
2.	सबका गुरु होता है ।	7
3.	गुरु का परम आदेश यही जानों।	8
4.	गुरु कौन ?	11
5.	दो गुप्त रहस्य	13
6.	ज्ञानहीनो गुरुत्याज्यो	14
7.	तीसरी भूमिका के नीचे वाले से मंत्र ग्रहण न करें	16
8.	कुतर्क न करें अपनी साधना पर ध्यान दें	20
9.	मार्ग पर आरूढ ही विचलित हो सकते हैं लक्ष्यारूढ नहीं।	22
10.	छुआछूत पाप कर्मों तथा अशुद्धि से ही	25
11.	अपरोक्ष ज्ञानी अर्थात ब्रह्मनिष्ठ ही परम गुरु	26
12.	ब्रह्मभाव पर वह वही होता है	38
13.	सुरक्षा से मात्र समय का क्षय	40
14.	मुक्ति का सम्यक् ज्ञान	42
15.	सहस्त्रों बार जन्म लेते हैं रूप अवश्य ही अन्य	45
16.	गुरु प्रदत्त विद्याओं पर परम विश्वास	46
17.	'मैं' ही समस्त प्राणियों के रूप में हूँ	51
18.	इन सबको पूरी तरह विस्मृत कर दो	53
19.	गुरुसेवा का फल ज्ञान	64
20.	कंचन और कामिनी के बंधन से दूर	65
21.	परम सुख अभिन्न सुख ही	80
22.	भोगने के लिए सारा संसार	84
23.	धनवान बनें या गुरु सेवा से यथार्थ पराविज्ञानी	85
24.	गुरु कृपा से संन्यास	87

25.	आप यथार्थ में शिव ही हो	90
26.	साधारण गुरु तो सभी को पुनरागमन ही देंगे	91
27.	केवल ब्रह्मज्ञान होने तक ही सेवा	93
28.	द्वैतवादियों का पतन	94
29.	तृतीय भूमिका मात्र	95
30.	परीक्षा	100
31.	अष्टपाशों से युक्त जीवात्मा को मात्र पशु की संज्ञा प्राप्त है	102
32.	बिना परम गुरु के ज्ञान किसे मिल सकता है।	109
33.	गुरू सान्निध्य का फल अमृत तुल्य	118
34.	शीघ्र कल्याण का उपाय (गुरूभक्ति)	122
35.	जगत मिथ्या गुरु ही सत्य	125
36.	गुरु भव सागर से तारने के लिए जहाज	128
37.	प्रजा का मन भी देखें :	148
38.	ब्रह्मनिष्ठ रूपी परमगुरु से बढ़कर कुछ भी नहीं	149
39.	जो गुरु ब्रह्मनिष्ठ नहीं वो..	151
40.	गुरु के प्रकार	152
41.	गुरु पादुकाओं में कितना सामर्थ्य	156
42.	गुरुदेव का यथार्थ ज्ञान ईश्वर गीता ही है	160
43.	तुम वही हो,न कि किसी के अधीन; तुम वही ब्रह्म हो।	173
44.	हे शिवा! ऐसा मनुष्य महा मूर्ख है।	179
45.	गुरुलिंग	181
46.	जगदम्बिका 'गुरु के गुरु की' भी परमगुरु हैं।	182
47.	अनिवार्य जानने योग्य सत्य	190
48.	गुरुपत्नि की सेवा की मर्यादा	194
49.	गुरु का पतन कब	202
50.	गुरु दीक्षा के लिए उत्तम महिना	203
51.	वृहदविज्ञान परमेश्वरतंत्र	204
52.	गुरु का पतन कब	208
53.	कूर्म पुराण की गुरुगीता उपरिविभाग से	209
54.	ज्ञान प्राप्त	213

55. गुरु और पति सावधान— 214
56. लिंग पुराण की श्रीगुरुगीता 216
57. श्री गुरुगीता 221
58. द्वयोपनिषद 280
59. श्री गुरु पादुका पंचकम् 283
60. कुलार्णव तंत्रोक्त पादुका स्तोत्रम् 285
61. श्री गुरुपादुका स्तोत्रम् 287
62. गुरु कृपा से प्रारब्ध भी क्षय— 290
63. गुरु कृपा पंचरत्न 292

*****

अध्याय–1.1

गुरुदेव की कृपा ही आनंद का एकमात्र आधार है

गुरुदेव की कृपा ही आनंद का एकमात्र आधार है आनंद का एकमात्र कारण गुरु सान्निध्य है। सांसारिक सुख तो पिता की चल अचल संपत्ति (भूमि धन आदि) से मिल सकता है पर आध्यात्मिक संपदा के लिए सद्गुरु और गुरु रूप संतों का सान्निध्य अनिवार्य है। भौतिक संपत्ति से मात्र 20 वर्ष ही सुख मिल पाता है क्योंकि संतान की 40–45 वर्ष की आयु में ही पिता अपने पुत्र को भूमिदान या संपत्तिदान करता है या राजभार देता है पर यह आगामी 20 साल तक ही लाभदायक है तदोपरान्त मृत्यु सब कुछ छीन लेती है। अतः इसी कारण सच्ची दौलत ईश्वर की कृपा को मानना चाहिए और वह कृपा अपरोक्ष ज्ञाननिष्ठ गुरु का आशीर्वाद और सान्निध्य है। हम इस विश्व में जो भी भौतिक प्रयास करते हैं वह धन और भोग के लिए ही करते हैं अर्थात हम नौकरी या स्त्रीभोग के लिए ही भौतिक प्रयास करते हैं और इसके लिए हमारी आयु के 26 वर्ष नष्ट हो जाते हैं तदोपरान्त नौकरी और स्त्री पुत्र के बंधन में पड़कर हम न तो स्वतंत्र रूप से तीर्थ सेवन कर पाते हैं न ही पुरश्चरण। अतः अक्षयरुद्र का यही कहना है कि यदि आपको आध्यात्मिक कृपा प्राप्त करना है तो पहले आध्यात्मिक उपायों को करें तदोपरान्त संसार में प्रवेश करें। हालांकि यह कार्य आपको रिस्कभरा लग सकता है पर यथार्थ पराविज्ञान का लाभ इसी मार्ग से संभव है।

कामनाओं के जाल के कारण यदि आप(किशोरकाल में) पूरी तरह से सरेंडर न कर पाओ तो सुबह और शाम दो दो घंटे निकालकर भी बहुत कुछ पा सकते हो। पर करना आपको ही पड़ेगा। हर माह या हर छः माह में गुरुचरणामृत और चरणरज का सेवन तथा नित्य कम से कम 11 माला और संयम का पालन ये सब आपको आध्यात्मिक अनुग्रह अवश्य दिलवायेंगे पर

चलना आपको ही पड़ेगा। गुरु उपाय या नियम मात्र बता सकते हैं आपके किये बिना अपने आप पराविज्ञान रूपी अमूल्य संपदा नहीं मिलेगी।

●●

पुनः सार रूप श्रवण करें –

गुरुदेव की कृपा ही आध्यात्मिक सुख का एकमात्र आधार है, और गुरु सान्निध्य ही आध्यात्मिक संपदा का मूल स्रोत है। सांसारिक सुख तो भौतिक संपत्ति से मिल सकता है, लेकिन वह केवल कुछ समय के लिए ही रहता है, जबकि आध्यात्मिक संपदा शाश्वत होती है।

1. गुरुदेव की कृपा ही आध्यात्मिक सुख का एकमात्र आधार है।
2. सांसारिक सुख भौतिक संपत्ति से मिल सकता है, लेकिन वह केवल कुछ समय के लिए ही रहता है।
3. आध्यात्मिक संपदा शाश्वत होती है और गुरु सान्निध्य से प्राप्त होती है।
4. जीवन में संतुलन बनाए रखने के लिए आध्यात्मिक उपायों को पहले करना चाहिए।
5. नियमित साधना, संयम, और गुरुचरणामृत का सेवन आध्यात्मिक अनुग्रह प्राप्त करने में मदद करता है।
6. आध्यात्मिक संपदा प्राप्त करने के लिए गुरुमयी प्रयासों को करना आवश्यक है।

अर्थात आध्यात्मिक जीवन में गुरु की कृपा और सान्निध्य कितना महत्वपूर्ण है। यह ईश्वर ने भी वेदव्यास जी की वाणी द्वारा बार बार लिखा है। जिसे अवश्य ही पढ़ना चाहिए और भवरोग से मुक्त (ब्रह्ममय) हो जाना चाहिए।

*****

अध्याय–1.2

गुरुओं के प्रकार

गुरुर्यः शिक्षयति चलनं वचः लेखनं पठनम्।
स महागुरुर्यः शान्तिमानंदम् लेखैः प्रयच्छति।

अर्थः

जो गुरु चलना, बोलना, लिखना, पढ़ना सिखाता है, वह गुरु है।
जिसके लेख पढ़कर शान्ति और आनंद मिलता है, वह महागुरु है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

परमगुरुर्यः शिवत्वम् ददाति वाक्यैः।
पालकगुरुर्यः पालनपोषणं करोति।

अर्थः

जो गुरु शिवत्व प्राप्त कराता है, वह परमगुरु है।
जो पालन–पोषण करता है, वह पालक गुरु है। यह पालने वाला कोई भी या पिता होता है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

धर्मज्ञगुरुर्यः शुद्धिं ददाति व्यवहारेण।
दमगुरुर्यः ब्रह्मचर्येण संयमम्।

अर्थः

जो गुरु व्यवहार से सुधार कराता है, वह धर्मज्ञगुरु है।
जो गुरु ब्रह्मचर्य से संयम कराता है, वह दमगुरु है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

देवगुरुर्यः पूजनात् लाभम् ददाति।
महामांत्रिकगुरुर्यः मंत्रं विनियोगं च।

अर्थः

जो देवता पूजन से लाभ देता है, वह देवगुरु है।
जो मंत्र, विनियोग, न्यास, ध्यान, पूजा की जानकारी देता है, वह महामांत्रिक गुरु है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

अक्षयरुद्र वचनम् शृणु,
गुरुविभागं विजानीहि।
महागुरुर्यः शान्तिमानंदम्,
लेखैः प्रयच्छति स सद्गुरुः.
परमगुरुर्यः शिवत्वम्,
ददाति वाक्यैः परं पदम्।
पालकगुरुर्यः पालनपोषणम्,
करोति स पितृसमः गुरुः.
धर्मज्ञगुरुर्यः शुद्धिं ददाति,
व्यवहारेण सुव्रतः।
दमगुरुर्यः ब्रह्मचर्येण,
संयमम् ददाति स गुरुः.
देवगुरुर्यः पूजनात् लाभम्,
ददाति स देवतासमः।
महामांत्रिकगुरुर्यः मंत्रं,
विनियोगं च न्यासम्.

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

अर्थात्

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

अक्षयरुद्र के वचन सुनो, गुरुओं के विभिन्न प्रकारों को जानो।

1. महागुरु जो शान्ति और आनंद देता है।
2. परमगुरु जो शिवत्व प्राप्त कराता है अर्थात् तद् रूप करके एकाकार करता है। यह शाम्भवी दीक्षा के माध्यम से भी हो सकता है। इसमें मंत्र लेने की आवश्यकता नहीं। मात्र वचनों को सुनकर भी शिवत्व प्राप्त हो सकता है। या ज्ञानकांड की उपनिषदों के शब्दब्रह्म से भी इस अद्वैतमय परब्रह्म से अभिन्नता हो जाती है।
3. पालकगुरु जो पालन–पोषण करता है।
4. धर्मज्ञगुरु जो सुधार कराता है।
5. दमगुरु जो संयम कराता है।
6. देवगुरु जो पूजन से लाभ देता है।
7. महामांत्रिक गुरु जो मंत्र, विनियोग, न्यास सिखाता है।
8. तीन अन्य महत्वपूर्ण प्रकार भी हैं वे निम्नलिखित हैं। जिनको 8वां ,9वां तथा 10वां गुरु कहा गया है। माता या वात्सल्यगुरुः चलनं फिरनं वचनं उत्थानं उपवेशनं अङ्गबोधादिकर्त्री ।
9. शब्दगुरुः विद्यालये अक्षरज्ञानदाता शब्दज्ञानदाता च ।
10. विहितगुरुः संसारदुखालये धनपदभौतिकनारीसुखत्यागेन भगवद्भजनम् कुरु परमधामप्राप्तये ।

जन्मजराव्याधिमृत्युदुखदर्शनकर्ता विहितगुरुः ।

माता या वात्सल्यगुरुः चलनं फिरनं वचनं उत्थानं उपवेशनं अङ्गबोधादिकर्त्री ।

शब्दगुरुः विद्यालये अक्षरज्ञानदाता शब्दज्ञानदाता च ।

विहितगुरुः संसारदुखालये धनपदभौतिकनारीसुखत्यागेन भगवद्भजनम् कुरु परमधामप्राप्तये ।

जन्मजराव्याधिमृत्युदुखदर्शनकर्ता विहितगुरुः ।

अर्थात

चलना, फिरना, बोलना, उठना, बैठना, अंगों का बोध आदि कराने वाली माता को वात्सल्य गुरु कहा जाता है। और विद्यालय के अक्षरज्ञान दाता व शब्द ज्ञान दाता शिक्षक को शब्द–गुरु कहा जाता है।

तथा संसार दुखालय है इसमें दुख ही दुख है अतः धन, पद और भौतिक या नारी सुख का त्यागकर मात्र भगवान का भजन करो तो परमधाम मिलेगा। ऐसा कहकर जन्म जरा व्याधि और मृत्यु के दुखों के दर्शन कराने वाला विहित गुरु है ।

सार – इन तीनों प्रकार का

१) वात्सल्यगुरु (माता)
२) शब्दगुरु (शिक्षक)
३) विहितगुरु (वैराग्यदाता गुरु)

यह अध्याय गुरुओं के प्रकार व महत्व को दर्शाता है।

000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000

*****

अध्याय–2

सबका गुरु होता है ।

सर्वेषामपि गुरुः कश्चित् आदिगुरुः।
न गुरुः इति वदन्तः सर्वे मिथ्या वदन्ति।

अर्थः

सभी का कोई न कोई आदि गुरु अवश्य है।
जो कहते हैं कि मेरा कोई गुरु नहीं है, वे सभी झूठ बोलते हैं।

00000000000000000000000000000000000000000000000000000

मांत्रिको वा शाम्भवी वा गुरुः।
दीक्षामयो वा स्पर्शदृष्टिवाणीभिः।

अर्थः

कोई गुरु मांत्रिक हो सकता है, कोई शाम्भवी हो सकता है।
दीक्षा के माध्यम से, या स्पर्श, दृष्टि, वाणी से भी गुरु की प्राप्ति होती है।

00000000000000000000000000000000000000000000000000000000

इन श्लोकों में आदि गुरु के महत्व और गुरु के विभिन्न रूपों का उल्लेख है, जैसे कि मांत्रिक, शाम्भवी, दीक्षामय, स्पर्श, दृष्टि, वाणी।

000000000000000000000000000000000000000000000000000000000

*****

अध्याय–3

गुरु का परम आदेश यही जानों।

कलियुगे धनपदबलतः प्रवर्तते।
निर्दोषोऽपि दण्डमाप्नोति।

नार्यः अर्धतनवृत्ताः भविष्यन्ति।
केचित्स्तनकटिजानघप्रदर्शिनः।
धनार्थम्प्रसिद्ध्यर्थम्पि क्रियां करिष्यन्ति।

ब्राह्मणाः कर्मकाण्डं विना शान्तिमाप्नुवन्ति।
न सुखमाप्नुवन्ति।

वासनामेव प्रेम इति मन्यन्ते।
नार्यः सिन्दूरमाल्पमात्रमेव भरिष्यति।
खलु बाला घूमिष्यति।

धनिकः स्त्रीभिरनेकाभिः संभोगमकरोत्।
नरकमाप्नोति।

कुलटाः परस्त्रीगमिनः पुरुषाः बढिष्यन्ति।
दुर्गे कार्तिकेयजननी श्रृणु ध्यानात्।

कलियुगे ज्ञातुमपि कठिनम्।
नार्याः गर्भे कस्य बीजमिति।

महापुरुषाः शिवलोकात् प्रेष्यन्ते।
शतसहस्रवर्षपर्यन्तम्।
घोरपापं न भविष्यति।

तदनन्तरं गर्भ में बालात्कारः।
पित्रा भ्रात्रा कृतः भविष्यति।
मातरः पुत्रियों को कम जन्म देंगी।
गर्भपातं करिष्यन्ति।

मध्यकालखण्डेषु मेरंशभूताः।
हरिपार्षदाः पदार्पणम्।
संध्याकाले शान्तिरूपहरियाली।
कुछ कुछ वर्षेषु भविष्यति।

अर्थः

कलियुग में धन, पद और बल वाले की ही मानी जाएगी, इससे निर्दोष को भी दंड मिलने की संभावना बढ़ जाएगी।

नारियाँ आधे तन को ढकेंगी और कुछ तो अपने स्तन, कटि व जांघ का भी प्रदर्शन करके धन तथा प्रसिद्धि कमाएंगी।

ब्राह्मण सम्यक नियम जाने बिना कर्मकांड करेंगे, जिससे शान्ति और सुख नहीं आएगा।

लोग वासना को ही प्रेम समझेंगे।

नारी अपनी मांग का सिन्दूर अति अल्प मात्रा में भरेंगी तथा खुले बाल करके घूमेंगी।

धनी व्यक्ति धन के बल पर अनेक स्त्रियों से संभोग करके नरक भी जाएगा।

कुलटा और परस्त्रीगमन करने वाले पुरुष बढ़ जाएंगे।

हे दुर्गा! हे कार्तिकेय की माता! सुनो ध्यान से कलियुग में यह भी ज्ञात करना कठिन होगा कि नारी के गर्भ में किसका बीज है।

पर कुछ महापुरुषों को मैं शिवलोक से भेजता रहूंगा ताकि 100,000 वर्ष तक घोर पाप न हो।

तदोपरान्त हर घर में बेटी का बलात्कार भी पिता या भाई करने लगेंगे और इस भय से माताएं पुत्रियों को कम जन्म देंगी या गर्भपात कराने पर विवश होंगी।

बीच–बीच के कालखंड में मेरे अंशभूतों
या
हरि के पार्षदों का पदार्पण होने से
संध्याकाल में कुछ–कुछ वर्ष तक
शान्ति रूपी हरियाली अवश्य आएगी।

कलिकालस्य वर्णनमिदम् अक्षयरुद्र अंशभूतशिवेन कृतम्।
अतः शीघ्रम् दुर्गादेवीपशुपतिशर्वेश्वरशिवभजनम् कुरु।
देवीगीताशिवगीताम् विज्ञाय, अवधूतउपनिषदावधूतगीताभैरवगीताश्च
शंकराचार्यांशब्रह्मानंदअक्षयरुद्रस्य चिन्तनम् कुरु। अपरोक्षज्ञाननिष्ठो भव।

अर्थात्

कलिकाल का यह वर्णन अक्षयरुद्र अंशभूतशिव ने किया है।
इसलिए शीघ्र ही दुर्गा देवी और पशुपति सर्वेश्वर शिव का भजन करें।
देवी गीता और शिव गीता को समझकर, अवधूत उपनिषद, अवधूत गीता और शंकराचार्य अंश ब्रह्मानंद अक्षयरुद्र की भैरव गीता का चिंतन करें।
अपरोक्ष ज्ञान में निष्ठा प्राप्त करो। गुरु का परम आदेश यही जानों।

*****

अध्याय–4

गुरु कौन ?

धर्मज्ञो धर्मकर्ता च सदा धर्मपरायणः।
तत्त्वेभ्यः सर्वशास्त्रार्थादेशको गुरुरुच्यते।।

धर्म को जाननेवाले, धर्म के अनुसार आचरण करनेवाले, धर्मपरायण,और सब शास्त्रों में से तत्त्वों का आदेश करनेवाले गुरु कहे जाते हैं।

गुकारश्चान्धकारस्तु रुकारस्तन्निरोधकृत् ।
अन्धकारविनाशित्वात् गुरुरित्यभिधीयते ।।

'गु' कार अंधकार है और 'रु' कार उसको दूर करने वाला है। अज्ञानरूपी अन्धकार को ज्ञान रुपी प्रकाश द्वारा नष्ट करने वाला ही गुरु कहलाता है।

धर्मज्ञो धर्मकर्ता च सदा धर्मपरायणः।

तत्त्वेभ्यः सर्वशास्त्रार्थादेशको गुरुरुच्यते ॥

प्रेरकः सूचकश्वैव वाचको दर्शकस्तथा ।

शिक्षको बोधकश्चैव षडेते गुरवः स्मृताः ॥

अर्थः प्रेरणा देने वाले, सूचना देने वाले, सत्य बताने वाले, मार्गदर्शन करने वाले, शिक्षा प्रदान करने वाले और ज्ञान का बोध कराने वाले ये सब गुरु समान हैं।

अर्थः धर्म को जानने वाले, धर्म के अनुसार आचरण करने वाले, धर्मपरायण और सब शास्त्रों में से तत्त्वों का आदेश करने वाले गुरु कहे जाते है।

ऋषि विश्वामित्र जी ने कहा है–

दर्शनात् स्पर्शनात् शब्दात् शिष्यदेहके ।
जनयेद् यः समावेशं शाम्भवं स हि देशकः ।।

अर्थः दर्शन से, स्पर्श से, शब्द से और ज्ञान उपदेश से जो शिष्य के शरीर में शम्भु–संबंधी (ईश्वर–सम्बन्धी) ज्ञान का जनन कर दे, वही उपदेशक अर्थात् गुरु है।

श्रीमद्भागवत् पुराण में बताया गया है आत्मा ही गुरु है।

आत्मनो गुरुरात्मैव पुरुषस्य विशेषतः ।
यत् प्रत्यक्षानुमानाभ्यां श्रेयोसावनुविन्दते ।। (11/7/20)

अर्थः समस्त प्राणियों की, विशेषकर मनुष्य की आत्मा अपने हित–अहित का उपदेशक गुरु है क्योंकि मनुष्य अपने प्रत्यक्ष अनुभव और अनुमान के द्वारा अपने भले–बुरे का निर्णय करने में पूर्णतः समर्थ है।

दूसरी ओर, श्रीमद्भागवत् महापुराण में भगवान ने स्वयं कहा है कि 'सद्गुरु' या 'परम गुरु' ईश्वर तुल्य होते हैं।

आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित् ।

न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत सर्वदेवमयो गुरुः ॥ (11/17/27)

अर्थः आचार्य को मेरा ही स्वरुप समझे, कभी उनका तिरस्कार न करे। उन्हें साधारण मनुष्य समझ कर दोषदृष्टि न करे; क्योंकि समस्त दैवी शक्तियाँ गुरु में ओतप्रोत होती हैं।

00000000000000000000000000000000000000000000000000000000000

*****

अध्याय–5

दो गुप्त रहस्य

गुरोर्ज्ञान–वैराग्य–आत्म–साक्षात्कारैः पूज्यते।
न इष्ट–दर्शन–आत्म–साक्षात्कारिणं गुरुमाश्रये।
सः साधारणः मनुष्यः स्यात्।

अर्थः

गुरु की पूजा उसके ज्ञान, वैराग्य और आत्म–साक्षात्कार के कारण की जाती है।

जिस गुरु ने इष्ट के दर्शन या आत्म–साक्षात्कार नहीं किये, उसे गुरु न मानें।

वह तो साधारण मनुष्य है।

✍✍✍✍✍✍✍✍✍✍✍✍✍✍✍✍✍✍✍✍

गुरवः सप्तप्रकाराः, तेषां सर्वे न पूज्याः।
निषिद्धगुरुम् त्यजेद् यथाशु, बोधकगुरोर्दीक्षां व्रजेत्।
बोधकात् ज्ञानसम्पन्नतरः सम्यग् उपलभ्येत, तं सेवेत।

अर्थः

गुरु सात प्रकार के होते हैं, जिनमें से सभी पूजनीय नहीं हैं।

निषिद्ध (अयोग्य) गुरु को तत्काल छोड़कर बोधक (जो मात्र सात्विक मंत्र का जानकार हो उस) गुरु से दीक्षा लें।

और यदि (कभी भविष्य में) बोधक गुरु से भी ज्ञानी व्यक्ति मिले, तो उसकी सेवा करें।

*****

अध्याय–6

ज्ञानहीनो गुरुत्याज्यो

"हे देवी ! जो जीवात्मा संसार से मुक्त होना चाहता है उसका रूप, रंग, वर्ण अथवा उसका भूतकाल न देखकर मात्र वर्तमान की मुमुक्षा ही देखना चाहिए उसका वैराग्य देखना चाहिए इनको देखकर सम्यक् ज्ञान देना चाहिए। आत्मा का वर्ण या आवरण (कि उसने स्त्री नामक वस्त्र धारण किया है या पुरुष आवरण ओढ़ रखा है वह इस जगत में चाण्डाल है या वर्णसंकर अथवा वैश्य आदि क्या) है ऐसा भाव गौण भाव के गुरु रखते हैं"

इसी कारण स्कन्दपुराण की गुरुगीता में ऐसे गुरुओं को परम गुरु नहीं कहा। वे सूचक या वाचक स्तर के इर्द–गिर्द साधारण गुरु ही हैं।

पर जो निर्मोही, वैराग्यवान या मुमुक्षुत्व नामक महागुण से युक्त न होकर सामान्य पशुभावी मनुष्य या सामान्य गृहस्थ हो उसको पराविद्या या महाविद्या उसकी पात्रता के अनुसार ही देना चाहिए। इसी कारण श्रीमद्भागवत महापुराण में भी यह स्पष्टीकरण है कि वीतरागी, अपरोक्ष ज्ञाननिष्ठ, मुमुक्षुत्व (संसार रूपी दुखालय से निजात पाने के लिए मोक्ष की प्रबल इच्छा) या नैष्ठिक ब्रह्मचारी के लिए चारों वर्णों के समान कर्तव्य या अकर्तव्य नहीं होता न ही उन पर शास्त्रों का अनुशासन होता है वे पितृ ऋण, देव ऋण और ऋषि ऋण से भी मुक्त हैं। ये तीनों ऋण पशु भाव या आसक्त मनुष्य को ही अपने शासन में ले सकते हैं न कि यथार्थ गुणसंपन्न पर इनका शासन लागू होता है।

जो किशोरी या वृद्ध यदि सम्यक् ज्ञान लेने की इच्छुक हो

अथवा जो गृहस्थ नारी मोक्ष की इच्छुक हो वह सम्यक् ज्ञान की अधिकारिणी ही है । संध्या को वसिष्ठ ने गुरुदीक्षा में जो मंत्र दिया (शिव चरित मानस में उल्लेख) तथा मनसा की तपस्या से महारुद्र शंकर जी ने जो मंत्र और जो ज्ञान दिया अथवा पार्वती को नारद जी ने जो मंत्र दिया उसी के परिणामस्वरूप उनको अभीष्ट मिला।

पर जो नारी काम क्रोध मद मत्सर निन्दा या छल कपट ईर्ष्या से युक्त हो वह दीक्षा की अधिकारिणी नहीं। वह शुद्ध होने तक अपने पति (चाहे वह पति अज्ञानी ही क्यों न हो) को ही गुरु और पति को ही परमात्मा समझकर सेवा करे। पर जो विकारों से परे धर्मपरायण हो चुकी वह मदालसा की भांति सम्यक् ज्ञान विज्ञान के लिए कभी कभी परम संतो का संग अवश्य प्राप्त करती रहे पर किसी को साथ लेकर ही सत्संग श्रवण करें इस कलिकाल में पारिवारिक सदस्य उसे अकेली न भेजे यही उसकी सीमा समझें क्योंकि भूमि भले ही कितनी ही शक्तिशाली हो पर पापी मनुष्य रूपी बीज से वह दूषित हो सकती है नारी तन भूमि के समान ही है अतः वह अपनी तुलना पुरुष तन की तरह स्वतंत्र यात्रा से न करें इस कलिकाल में अनेक गुरु निषिद्ध भी भ्रमण कर रहे हैं भगवा की आड़ में पाखंडी और स्त्रीलम्पट भी हैं।

पर वह अपना गृह त्याग का न सोचे। पाखंडी गुरु का त्याग करना ही धर्म है पर जो गुरु धर्मपरायण हो परंतु प्रथम या दूसरी ज्ञान भूमिका पर हो उसकी सेवा भी एक सीमा तक करना चाहिए यदि किसी पुण्य या अनुग्रह से (योगवसिष्ठ की ज्ञान भूमिका के अनुसार) तीसरी भूमिका वाला परम वैराग्य संपन्न और सुख दुख में समता वाला गुरु मिले तो नवीन तृतीय भूमिका वाले गुरु की ही सेवा आरंभ करना चाहिए यही शिव पुराण विद्येश्वर संहिता की भी आज्ञा है। धर्म का आचरण ठीक है पर हर धार्मिक मनुष्य वीतरागी नहीं होता। ऐसा शिव पुराण कहता है अतः जो धर्मपरायण और वैराग्यवान हो वह दूसरे ज्ञान स्तर से अधिक श्रेष्ठ है।

और मुमुक्षुओं को शास्त्र पढ़ते रहना चाहिए ताकि वे ज्ञान की अगली भूमिका जान सके और उसी के अनुसार वे उच्च्य स्तरीय गुरु का वरण करते रहें। जब तक ज्ञान की सातवीं भूमिका वाला गुरु न मिल जाए तब तक गुरु बदलने में दोष नहीं यह शिव पुराण का ही आदेश है।

*****

अध्याय–7

तीसरी भूमिका के नीचे वाले से मंत्र ग्रहण न करें

जो मनुष्य तीसरी ज्ञान भूमिका वाला न हो उससे मंत्र ग्रहण न करें वह साधारण मनुष्य स्वयं ही मोहग्रस्त होने से बद्ध हैं न ही वैराग्यवान। मात्र तिलक माला या पीले लाल से ज्ञान का ताल्लुक नही यह लाल पीला आदि दूसरी भूमिका का एक सूक्ष्म अंश मात्र है। पर इन माला भगवा आदि से यह अनुमान न लगायें कि यह महात्मा ही होगा। हर भागवत कार्यक्रम में विकारी लोग भी राधाकृष्ण की पोशाक में बिठा दिये जाते हैं पर वे विकारी अंदर से धन और चढ़ावा पर ही लार टपकाए रहते हैं न कि एक ए टाइम वे तद्भावित ब्रह्मनिष्ठ होते हैं।

मैं अब संसार में नहीं आऊंगा इस हेतु पाप अधर्म नहीं करूँगा और सतत् राम राम जपूंगा तथा यथासंभव संयम से रहूँगा. .. पर यह थोट ऑनली ही है ज्ञान की पहली भूमिका। जिसे शुभ इच्छा (शुभेच्छा) कहा गया है।

शुभेच्छा के बाद तत्काल विचारणा आती है इससे वह कल्याण का बीज बो देता है अर्थात जप तप व्रत–उपवास आरंभ हो जाता है और पाप भी बंद। लेकिन इस भूमिका में जप तप ही होता है पर परम वैराग्य कालान्तर में आ पाता है उस समय ही थर्ड भूमिका पर प्रवेश होता है।

जिनके पास वैराग्य है वह विहित गुरु की उपाधि पा लेते हैं। भले ही कागज का सर्टिफिकेट न हो पर वैराग से ही यह हो पाता है। लेकिन ये लोग परम गुरु नहीं होते । परम गुरु की आरंभिक शुरुआत फोर्थ भूमिका पर हो पाती है।

यह पुस्तक (गुरु माहात्म्य) इसी कारण लिखी है कि लोग आधे घड़े को फुलफिल न समझें।

और सच्चाई तो यह है कि उपदेशक या प्रवचन कर्ता दूसरी भूमिका पर ही नहीं पहुंच पाए। वे अपनी इन्द्रियों के गुलाम हैं और फिर भी उपदेश बांट

रहे हैं। उनको स्वयं इस अक्षयरुद्र के अनुसार उनके गुरु के चरणों की आवश्यकता है।

इस संसार में 80फीसदी गुरु शोषण भी कर रहे हैं।

वे अष्ट पाश में लिप्त हैं पर गुरु बने हुए मंडरा रहे हैं।

और दूसरे गुरु का रिकॉर्ड तोड़ने के लिए दीक्षा दे रहे हैं।ज्ञान की सात भूमिकाएं –

1. पहली ज्ञानभूमिका, शुभेच्छा बतायी गयी है।
2. दूसरी विचारणा,
3. तीसरी तनुमानसा,
4. चौथी सत्त्वापत्ति,
5. पाँचवीं असंसक्ति,
6. छठी पदार्थाभावना और
7. सातवीं तुर्यगा।

इस प्रकार ये ज्ञान की सात भूमिकाएँ मानी गयी हैं।

✍

(जिसमें पहली ही भूमिका किसी तहसील में मुश्किल से एक को ही प्राप्त होती है वह भी कभी कभार;दूसरी तो छोड़ ही दो)

पहली–

स्थित किं मूढ एवास्मि प्रेक्ष्येऽहं शास्त्रसज्जनैः।
वैराग्यपूर्वमिच्छेति शुभेच्छेत्युच्यते बुधैः ।।

यह विचार कि –

मैं मूढ होकर ही क्यों स्थित रहूँ? (मैं अभी तक बहुत भटक चुका पर अब नहीं)

में भी अब शास्त्रों और सत्पुरुषों के द्वारा यथार्थ जानकर तत्व का साक्षात्कार करूँगा। मुझे पता नहीं वह परम तत्व या पराविज्ञान क्या है और अपरोक्ष ज्ञान क्या है यह भी नहीं जानता पर जानकर ही रहूँगा फिर भले ही इसके लिए मुझे अखंड ब्रह्मचर्य पूर्वक रहना पड़े या सतत् जप तप व्रत–उपवास करना पड़े अथवा जंगल में किसी संन्यासी की सेवा के लिए जाना पड़ा।

इस प्रकार वैराग्यपूर्वक केवल परमगति की इच्छा होने को ज्ञानी जनों ने शुभेच्छा कहा है।

अतः यह विचार ही शुभेच्छा है जो हर किसी को नहीं मिलती।

आजकल 99.9 प्रतिशत तो मात्र यही इच्छा करते हैं कि मेरा दोस्त मासिक एक लाख कमाता है तो मैं भी सवा लाख कमाकर मित्रसंघ में रिकॉर्ड तोड़कर रहूंगा अथवा वे तो हर रात नारी पिण्ड के देह की गंदगी लार, कफ, पसीना, या नीचे का स्रावित मूत्र या रज ही चाटते रहते हैं ....

Don't worry i shall not say more anything
Because
all the peoples are so intelligent
in this sexual field

अधिक कहकर यह अंशभूतम् मर्यादा का उल्लंघन नहीं करेगा।

खैर,

प्रथम भूमिका के सिद्ध होने पर (यह शुभ इच्छा नष्ट न हो कि मैं यथार्थ प्रभु /पराविज्ञान को पाकर कृतकृत्य होऊंगा ही फिर चाहे घर और परिवार वाले नाराज हों चाहे चूल्हे में जायें मैं बार बार, हर जन्म में खजाने का ढेर लगा लगाकर छोड़ने के लिए पैदा नहीं हुआ !!!!!!!!

मैं हर जन्म में बच्चे पैदा करने के लिए और पालने के लिए पैदा नहीं हुआ, यह सब साक्षात् हरि की आज्ञा होगी तो सोचेंगे पर मैं पहले अपना लक्ष्य हासिल करूँगा न कि पहले बच्चे पैदा करूँगा। कर्दम की तरह पहले परम तत्व का साक्षात्कार करूँगा न कि पहले सांसारिक अनुभव।)

अब वह इस शुभेच्छा का प्रेक्टीकल करेगा तो दूसरी भूमिका सिद्ध होगी अर्थात वह माया की चकाचौंध में न उलझकर

- शास्त्रों के अध्ययन,
- मनन और
- सत्पुरुषों का संग व
- सत्संग पर विचार करेगा न कि मात्र सुनकर ढेर लगायेगा।

अतः वह पाप अत्याचार शोषण व्याभिचार कुदृष्टि बंद कर देगा, जीव मात्र में परमात्मा देखने लगेगा और वह इस कारण चींटी की हत्या भी नहीं करेगा तो बकरा, भैंसा और मुर्गा क्यों काटेगा।

और सतत् सुमिरन भी आरंभ करेगा उसमें वैराग्य भी आने लगेगा ।

(यही विवेक वैराग्य के अभ्यासपूर्वक सदाचार में प्रवृत्त होना ही 'विचारणा' नाम की मात्र दूसरी भूमिका कही जाती है।)

●●●●●●●●●●●●

विचार करो कि इस भारत में दूसरी भूमिका पर कितने हैं ? साधारण लोग तो छोड़ दो व्यासपीठ पर बैठकर उपदेश देने वाले भी घर में अपनी पत्नि, पिता और मेहतारी से लड़ते हैं और सेक्सुअल क्लिपिंग भी पत्नि को दिखाकर खुद भी देखते हैं। और सुबह कहते हैं कि–अब कुछ दिन रुको भार्या! मैं यजमान के यहाँ जाकर कुछ माल पानी इकट्ठा कर लूँ फिर

आफ्टर ऐट डेज आई विल सेटिस्फाई यू

एण्ड योर पर्सनल पार्ट

ओ मॉय स्वीटहार्ट. ....

I will satisfy you surely successfully.

ऐसा मूरख स्त्रीलम्पट तो अभी दूसरी भूमिका पर ही नहीं पहुंच पाया।

(ऐसे लोग भी आजकल मंत्रदीक्षा देने लग गए हैं)

●●●●●●●●●●●●

तनुमानसा –

विचारणाशुभेच्छाभ्यामिन्द्रियार्थेष्वसक्तता यात्रा सा तनुताभावात् प्रोच्यते तनुमानसाः ।।

उपर्युक्त शुभेच्छा और विचारणा द्वारा इन्द्रियों के विषय भोगों में आसक्ति का अभाव होकर (अनासक्त हो) रागहीन होकर संसार में विचरण करना ही

तीसरी भूमिका तनुमानसा है।

परम वैराग्यवान पुरुष इसी पर आरूढ हैं पर यह गारंटी नही कि वे चौथी कक्षा (फौर्थ स्टेप) के विद्यार्थी हैं या नहीं।

चौथी और पाँचवी पर तो आप (99प्रतिशत) विश्वास ही नहीं करोगे कि यह सत्य है।

अतः यहीं तक ठीक है!!!!!!!!!

यहाँ योगवाशिष्ठ के अनुसार अद्वैत का श्रीगणेश होता है।

*****

अध्याय–8

कुतर्क न करें अपनी साधना पर ध्यान दें

सत्य और असत्य केवल परब्रह्म ही जानते हैं या सम्यक् जाननें वाले ही जान पाते हैं इस कारण कभी भी किसी विद्वान से कुतर्क न करें और न ही वह विद्वान किसी अन्य विद्वान से कुतर्क करे। कुछ गुरु या कुछ लोग परमात्मा को ही सभी रूपों में लीलारत मानते हैं स्वयं को भी सोऽहम् महावाक्य से साक्षात् वही तत्...........और कुछ लोग या कुछ द्वैतवादी गुरु यह मानते हैं कि ईश्वर ने अपनी सेवा के लिए जीव रूपी दास दासियां ही उत्पन्न की अतः सबके स्वामी परमात्मा हैं और सब दास हैं दास ही रहेंगे......। कुछ लोग ईश्वर के धाम की इच्छा करते हैं वैसे इसे सालोक्य व सारूप्य आदि मुक्ति कहा जाता है पर कुछ लोक इस सालोक्य आदि मुक्ति को तुच्छ समझते हैं। कुछ गुरु या कुछ लोग अभिन्नभाव को ही सम्यक् ज्ञान समझते हैं। ये सब अपनी अपनी ज्ञानभूमिका का परिणाम मात्र है। इस विश्व में द्वैत और अद्वैत दो ही भाव हैं तीसरा नहीं जो जिसको अच्छा मानता है उसी भाव को अंगीकार करके उसी में रमण करता है। पर अपनी बुद्धि से उपजे विचार को ज्ञान नहीं कहते। सम्यक् ज्ञान तो योगवसिष्ठ या अवधूत उपनिषद का ही मान्य है। भक्तियोग का अलग स्तर है और ज्ञानयोग का अलग।

ब्रह्मनिष्ठ पात्रता देखकर अपनी शरण में आये जिज्ञासुओं को शान्त करते हैं। यह ब्रह्मनिष्ठता परम लक्ष्य है पर इस पर पहुंचने के लिए 99.999 प्रतिशत लोगों को द्वैतात्मक पथ पर कदम रखना पड़ता है तभी उसका चित्त इतना निर्मल हो पाता है कि वह समझ सके कि हरि या शिव क्या सोचते हैं या उनका तद्भाव कैसा है अन्यथा सभी मात्र दास पद तक ही सीमित रहते हैं। पर दासत्व को अखंड ब्रह्मचर्य पूर्वक लगभग 12 वर्ष हो गया हो तो जीवत्व के क्षय के लिए अवधूत उपनिषद या अवधूत गीता या अष्टावक्र गीता जैसे महाग्रंथ मनुष्य को समझ में आने लगते हैं। कामकामी, अतिभोगी , स्त्रीलम्पट पुरुष या परपुरुष गामी कुलटा नारियाँ यथार्थ पराविज्ञान कभी भी

नहीं समझ पाते। उनकी पूजा पाठ भी मात्र धन पद या यश तक सीमित होता है। वे अपने आत्मबोध से अनभिज्ञ ही रहते हैं। दुखालय जगत के कारण मुमुक्षुत्व या संसार से उपरति होने पर ही यथार्थ अध्यात्म का श्रीगणेश होता है शेष सब बाते एल.के.जी. यूकेजी के बच्चों के पाठ्यक्रम की तरह हैं।

वे साधारण मनुष्य को पहले निष्पाप करने के लिए जप तप व्रत–उपवास की आज्ञा देते हैं या संतों की सेवा की आज्ञा। नैष्ठिक संत या ब्रह्मनिष्ठ की सेवा से अतिशीघ्र पापों का क्षय होता है पर तीर्थ स्थल पर रहकर जप तप व्रत–उपवास से देरी से। अतः मनुष्य को श्रीमद्देवीभागवत महापुराण की देवी गीता के श्लोकों के सम्यक् ज्ञान को समझना चाहिए जिसमें ब्रह्मनिष्ठ का माहात्म्य है। वे ब्रह्मनिष्ठ मुमुक्षु को ही स्वबोध कराते हैं। सकामी को नहीं। पर गृहस्थ आश्रम में सकामी होना ही पड़ता है धन, पद, बच्चों के संकट नाश, संतान सुख, पितृ तृप्ति आदि सब इस आश्रम में अनिवार्य ही मानों।

*****

अध्याय–9

मार्ग पर आरूढ ही विचलित हो सकते हैं लक्ष्यारूढ नहीं।

मार्ग पर आरूढ ही विचलित हो सकते हैं लक्ष्यारूढ नहीं। अतः जब तक पूर्णतः तद्भावित अवस्था (ब्रह्मनिष्ठता) से अमनस्कता नही आ जाती तब तक मनुष्य को ब्रह्मविद्या खंड की सभी उपनिषदों व योगवसिष्ठ, अवधूत गीता जैसे ग्रंथों का स्वाध्याय करते रहना चाहिए पर इन महापथारूढ़ वालों को जीवभावी तथाकथित संतों के प्रवचनों का श्रवण नहीं करना चाहिए वे स्वयं ही बद्ध जीव हैं ऐसे बद्ध जीव न तो अद्वैत का अ कार जानते हैं न ही कैवल्या का ककार।

उपनिषदों के अलावा
भगवान श्रीकृष्ण जी ने भी
अद्वैत के विषय में
(गरुड पुराण आचार काण्ड अध्याय 240,241 में)
अर्जुन से जो कहा इस अक्षयरुद्र के अनुसार वही ज्ञान है।
"कि मैं ब्रह्म हूँ यही सब निजस्वरूप चिंतन करें "

कृष्ण यजुर्वेदीय शाखा के अन्तर्गत एक उपनिषद है जिसका नाम हर अद्वैतवादी जानता ही है;क्योंकि वह उपनिषद ही उसके ज्ञान का एक महत्वपूर्ण अंग है जो अभिन्नता की सततता का संबल उसे देता है अक्षयरुद्र वही ठोस प्रमाण प्रस्तुत कर रहा है क्योंकि वैदिक या उपनिषदों का प्रमाण ही यथार्थ प्रमाण माना जाता है। फिर भी जिसके पुण्यों में दरारे आ चुकी हैं या जिस पर विज्ञान के अधिष्ठाता महाशंकर की कृपा नहीं है वह इस प्रमाण के बाद भी संशय से भरा रहेगा दोष उसका नहीं अपितु उसके अल्प पुरुषार्थ व प्रमाद का है। खैर सुनें –

वह है कैवल्योपनिषद् जो साक्षात ईश्वर रूप ब्रह्मा जी के वचन हैं।

यत्परं ब्रह्म सर्वात्मा विश्वस्यायतनं महत।
सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरं नित्यं तत्त्वमेव त्वमेव तत्।।

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तादि प्रपंचं यत्प्रकाशते।
तद् ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा सर्वबन्धैः प्रमुच्यते।।

जिस परब्रह्म का कभी नाश नहीं होता, जो सूक्ष्मतम से भी सूक्ष्म है, जो संसार के समस्त कार्य और कारण का आधारभूत है, जो सब भूतों का आत्मा नाम से सुप्रसिद्ध है, **वही परब्रह्म तुम हो, तुम वही हो।।**

जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति आदि अवस्थाओं में जो मायिक–प्रपंच दिखाई देते हैं वे सब ब्रह्म द्वारा ही प्रकाशित होते हैं और वह ब्रह्म साक्षात मैं ही हूं––ऐसा जो जान लेता है, वह सब प्रकार के बंधनों से तत्काल मुक्त हो जाता है।।

●स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्।
स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स चन्द्रमाः ॥

यहाँ सोऽहम् का "स" जो इसमें प्रयुक्त हुआ है स्वयं का सूचक है अर्थात जो वह है वही मैं हूँ। वही (एक परब्रह्म मूल तत्व) ब्रह्मा है, वही शिव है वही इन्द्र है वही अक्षर रूप में शाश्वत ब्रह्म है। वही (ब्रह्म) भगवान विष्णु है वही प्राण तत्व; वही कालाग्नि नाम से विख्यात और वही चंद्रमा के रूप में दिखाई देता है वही मैं हूँ। फिर किसका ध्यान और कैसा यजन किया जाये ।

●न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः।
परेण नाकं निहितं गुहायां विभ्राजते यद्यतयो विशन्ति ॥

पर यह स्वयं अमृतकुण्ड और अमृतेश ही की परम पहचान न तो कर्म से हो सकती है न ही संतान उत्पन्न करने से होती है और धन के द्वारा भी नहीं होती।

●अहमस्मि परश्चास्मि ब्रह्मास्मि प्रभवोऽस्म्यहम् ।

सर्वलोकगुरुश्चास्मि सर्वलोकेऽस्मि सोऽस्म्यहम् ॥ १ ॥

अर्थ –

अन्तः स्थित ब्रह्म) मैं हूँ और (बाह्य स्थित) पर (ब्रह्म) भी मैं ही हूँ, मैं ब्रह्म हूँ, उत्पत्ति हूँ, समस्त लोकों का गुरु हूँ और सभी लोकों में जो भी कुछ है, वह मैं ही हूँ ।

●अहमेवास्मि सिद्धोऽस्मि शुद्धोऽस्मि परमोऽस्म्यहम् ।

अहमस्मि सदासोऽस्मि नित्योऽस्मि विमलोऽस्म्यहम् ॥ २ ॥

मैं ही सिद्ध हूँ, मैं ही शुद्ध हूँ तथा परम तत्त्व भी मैं ही हूँ। मैं सदैव (विद्यमान रहता) हूँ, मैं नित्य हूँ एवं मलरहित भी मैं ही हूँ ।

●विज्ञानोऽस्मि विशेषोऽस्मि सोमोऽस्मि सकलोऽस्म्यहम् ।

शुभोऽस्मि शोकहीनोऽस्मि चैतन्योऽस्मि समोऽस्म्यहम् ॥ ३ ॥

मैं विशिष्ट ज्ञान सम्पन्न हूँ,
मैं विशेष हूँ,
सोम मैं हूँ,
सभी कुछ मैं ही हूँ।
मैं शुभ हूँ,
शोक रहित हूँ,
सम हूँ तथा
चैतन्य भी मैं ही हूँ ।

●मानावमान–हीनोऽस्मि निर्गुणोऽस्मि शिवोऽस्म्यहम् ।
द्वैताद्वैतविहीनोऽस्मि द्वन्द्वहीनोऽस्मि सोऽस्म्यहम् ।।

मैं मान एवं अपमान से रहित हूँ, निर्गुण (गुणरहित) हूँ, मैं ही शिव हूँ, द्वैत एवं अद्वैत के भाव से रहित हूँ, सुख तथा दुःख आदि द्वन्द्वों से रहित हूँ तथा वह (ब्रह्म) मैं ही हूँ ॥ ४॥
– सोऽहम्

अध्याय–10

छुआछूत पाप कर्मों तथा अशुद्धि से ही

गुरु कृपा से पत्थर भी सोना हो जाता है वह फिर पुरस्कार के योग्य होता है उसके लिए सामान्य सोच नही रखना चाहिए। गुरु कृपा से अपरोक्ष ज्ञान होने पर वह चारों वर्णों से परे हो जाता है। फिर वह महावर्णी का ही मंत्र जपता है या कुछ भी नही। वैसे छुआछूत पाप कर्मों तथा अशुद्धि से होती है जो मनुष्य विशुद्ध कर्मों को करता है उसका स्पर्श किया जा सकता है फिर चाहे वह कोई भी क्यों न हो ? और जो कोई भी (सामान्य या उच्च वर्ण का) परस्त्रीगमन, व्याभिचार, चोरी, लूट, मदिरापान, माँस भक्षण, मित्र की पत्नी पर गलत दृष्टिकोण, शासन का जनहित का धन निजी कार्यों में लगाता है या माता पिता, संत, गुरु व गौ का घातक है या द्विज होकर भी संध्यापूत नहीं वह पापी ही है उसका स्पर्श निषेध है।

ऐसे पापी मनुष्य के दर्शन से गंगा स्नान से शुद्धि कही गई है।

पर जो भक्ति या वैराग्य से युक्त होकर शुद्ध हो गया हो, जितेन्द्रिय हो, दयासागर, सम्यक् ज्ञान से परिपूर्ण वह विजातीय जन्म वाला विलोमज भी हो तो भागवत 7/11/35 के अनुसार स्पर्श, सेवन, पूजन के योग्य साक्षात विशुद्ध ब्राह्मण के समान ही उसे माना जाए। और शिव पुराण में पूजा और सम्मान के योग्य पहले स्थान पर सोऽहम् महावाक्य से युक्त महावर्णी, दूसरे स्थान पर अखंड ब्रह्मचर्य पूर्वक रहना वाला जितेन्द्रिय व तपोनिष्ठ तथा तीसरे और अंतिम स्थान पर वर्ण को बताया है । इसमें भी जन्म व धर्म दोनों होना चाहिए।

भले ही ब्रह्मविद् न हो, भले ही अखंड ब्रह्मचर्य पूर्वक न रहता है पर वर्ण उच्च हो तथा पाप न करता हो तब भी तीसरा स्थान दिया । अतः धर्म शास्त्रों में भेद नहीं।

*****

अध्याय–11
अपरोक्ष ज्ञानी अर्थात ब्रह्मनिष्ठ ही परम गुरु

भूमि, जल, वायु, अग्नि आकाश (भीम नाम), क्षेत्रज्ञ, सूर्य और चंद्र अष्ट मूर्तियों के अतिरिक्त अपरोक्ष ज्ञानी अर्थात् परम ब्रह्मनिष्ठ ही महान कल्याणकारक है। वे ही गुणातीत व रूपातीत होने से गुरु कहे जाते हैं। ये मंत्र दें अथवा न दें पर इनका ज्ञान ही कैवल्या दाता है। इनका पराविज्ञान ही मोक्ष का मूल है। सामान्य जीव भावी यथार्थ गुरु नही कहलाता। जो स्वयं माया मोह छल कपट में लिप्त हो वह क्या मुक्त करेगा; यह गुरुगीता में महादेव ने सम्यक् रूप से कहा है। परम गुरु ही ज्ञान की सर्वोच्च भूमिका पर स्थित होते हैं वे ही महावाक्यों के दाता व अभिन्नता के कारण परमात्मा ही हैं। आयें अब उन परात्पर की महिमा का वर्णन करते हैं, पर पहले समझना होगा कि अपरोक्ष ज्ञानी होता कौन है? ज्ञान दो प्रकार का कहा गया है एक परोक्ष व एक अपरोक्ष। परोक्ष ज्ञान शब्दों तक सीमित है पर एकरूपता का आंतरिक भाव ही जिससे द्वैत न हो न ही भय व एक तत्व ही सर्वमय हो वही पल अपरोक्ष ज्ञान का पल माना जाए।

चूंकि शिव चराचर में व्याप्त हैं अतः शिवजी की कल्पना करके तो कोई भी काष्ट, मिट्टी धातु या पाषाण में भी शिव जी की कल्पना करके पंचोपचार या षोडशोपचार पूजा व सेवा से तो कोई भी स्वर्गीय भोगों या शिवलोक को पा सकता है और परम धाम की अपर मुक्तियाँ भी पाना कठिन नहीं, पर जब तक पराविज्ञानमय परम ब्रह्मनिष्ठ नहीं मिल जाते तब तक परम अनुग्रह रूपी कैवल्या (अभिन्नता) किसी भी प्रकार से संभव ही नहीं, परंतु हाँ आपकी परम मुक्ति की इच्छा, जिज्ञासा या वैराग्य देखकर यदि साक्षात् मंत्रादि के पुरश्चरण से महादेव स्वयं ही गुरु बनकर उस परम का उपदेश करें या शाम्भवी दीक्षा से कृतकृत्य कर दें तो अवश्य ही आप पूर्णतः उन परम गुरु (महादेव) की कृपा से तदाकार हो जाओगे।

बिना साक्षात् अनुग्रह के, बिना उपदेश से, बिना दिव्य स्वाध्याय के परोक्ष ज्ञान भी नहीं मिलता तो फिर अपरोक्ष की कल्पना निरर्थक है।

ब्रह्मा जी के एक दिन में 14मनु व्यतीत हो जाते हैं; क्योंकि उन ब्रह्मदेव के एक दिन (1ब्रह्मकल्प) में 14मन्वंतर बीत जाते हैं, प्रत्येक का शासन काल एक मंवंतर तक ही होता है अतः सकाम पुण्यों का फल भोग–

1. पृथ्वी का सारा धन
2. वैभव,
3. स्वर्ग,
4. कीर्ति,
5. ऐश्वर्य,
6. देवपद,
7. सौन्दर्य से परिपूर्ण सुंदरियाँ,
8. सिद्धियाँ,
9. अनेक पुत्र,
10. दास दासियाँ,
11. जय जयकार
12. यहाँ तक कि सारी भूमि
13. भूमि के सारे अनमोल रत्न

ये सब वस्तुओं को मात्र लौकिक शब्दों का जानकार या बोधक गुरु (मंत्रदाता) अवश्य ही दिलवा सकता है पर परम पद, परममुक्ति केवल पराविज्ञानी ''परम गुरु'' की कृपा से ही संभव है, अपरोक्ष ज्ञानी ब्रह्म से एकरुप होने से साक्षात् ब्रह्म ही है, अपरोक्ष ज्ञानी द्वंदों से पूर्णतः मुक्त ही है।

जो अनासक्त, निर्मोही, निष्कामी और मूल रूप से सम्यक् भावी होता है उसे वर्ण, जाति, रूप नाम से कोई भी मतलब नहीं होता, स्वयं को पूर्ण शिव स्वरूप समझकर सभी में पूर्ण वही देखता है जो स्वयं वही होता है। जो एकाकी, निस्पृह और शांत होता है वही सदा अचिन्त्य होकर अक्षय आनन्द का अधिकारी होता है, अतः इनकी शरण ही मुक्ति दाता है न कि संतान, कर्म तथा धन से मुक्ति मिलती है।

मुक्ति तो मात्र ब्रह्मविद् की सेवा, उनके महावाक्य का आत्मसात् और त्याग (हिंसा, ईर्ष्या, छल, कपट असंयम, चोरी का और कर्मफलों का त्याग) से ही होती है,

प्रजया कर्मणा मुक्तिर्धनेन च सतां न हि।

साधारण कर्मों या वैदिक कर्मकांडो की ही सकाम साधना कराने वाले या बाह्य आवरण देखकर ही छोटे बड़े शब्दों के कारण भेद समझने वाले, लोभी, कामी और भ्रमबुद्धि वाले भोगात्मा सेवनीय नहीं होते,

गुरुत्व न होने से निषिद्ध गुरु स्वयं भी बार बार पुनर्जन्म को ही प्राप्त होते हैं फिर वे शिष्यों को कैसे मुक्त कर सकेंगे, भोगी प्रवृति के लोग सदा ही पुण्य और पुण्यों के फल स्वर्ग के भोग ही चाहते हैं।

जैसे जड़ से कटा हुआ वृक्ष विवश होकर पृथिवी पर ही गिरता है वैसे ही स्वर्ग में रहने वाले पुण्यरूपी वृक्ष के क्षय होने से पृथ्वी पर पुनः आते ही हैं। जो भोगी प्रवृति के नहीं तदाकार हैं परम शांत और क्षमाशील, निर्विकल्प मात्र वही यथार्थ रूप से कल्याणकारी हैं अन्य कोई भी नहीं।

कीटों पक्षियों, मृगों, घोड़ा हाथी आदि पशुओं में भी सर्वदा दुःख सी दुःख देखा गया है अतः भोग का त्याग करने वाले को ही उत्तम सुख प्राप्त होता है। मंवंतरों या कल्पांतरों के देवताओं, कल्पों के अधिकारी तथा अपने पद का अभिमान करने वाले मनु आदि को भी दुख प्राप्त होता है।

वैमानिकानामप्येवं दुःखं कल्पाधिकारिणाम।
स्थानाभिमानिनां चौव मन्वादीनां च सुव्रताः।।

भक्तजन पराविद्या से ही ज्ञान प्राप्त करते हैं अपरा विद्या से नहीं, अतः जो मात्र अपरा विद्या (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद सभी अर्थों को सिद्ध करने वाला अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, और ज्योतिष) में दक्ष है न कि अपरोक्षता से तद्मय... वो मात्र शाब्दिक ज्ञान के संग्रह के कारण वास्तविक रूप से यथार्थ ज्ञानी नहीं, उसकी शरणागति से कोई भी लाभ नहीं, मात्र परोक्ष ज्ञान को पाने वाला भी परममुक्ति का अधिकारी नहीं होता पर हाँ वो लक्ष्य के समीप अवश्य ही होता है।

परा विद्या तो अदृश्य, अग्राह्य, गोत्ररहित, वर्णरहित, नेत्र कान, हाथ, पैर आदि से रहित है। वह स्पर्श रहित, रूपरहित, रसहीन, गंधहीन, अव्यय,

आधारहीन, नित्य सर्वगामी, सर्वशक्तिशाली, महान, ब्रहत, अज तथा चित् स्वरूप है।

वह अद्वैत, अनंत, आवरण रहित, मनरहित और पूर्णतः अस्थूल है और प्रत्येक आत्मा ही साक्षात् परा विद्या का स्वरूप साक्षात् परात्पर ब्रह्म ही है।

अयमात्मा ब्रह्म, सोऽहम् मेरा ही संकेतक पद है पर इस पराविद्या का शब्दों में वर्णन न तो कोई कर सका है न ही कर सकेगा; क्योंकि ठोस, द्रव और गैस तो वर्णनीय है पर स्वाद का लेखन कैसे किया जा सकता है, आनंद को शब्दों का रूप कौन दे सकता है अर्थात् कोई भी नहीं।

अस्पर्शं तदरूपं च रसगंधविवर्जितम।
अव्ययं चाप्रतिष्ठं च तान्नित्यं सर्वगं विभुम।।

विशेष कला से या शास्त्रों के अध्ययन से धन कमाने की कला तो व्यक्ति सीख सकता है भरी सभा में कीर्ति भी पा सकता है पर अभिन्नता मात्र पढ़ने से नहीं आती, इसी कारण ही ब्रह्मनिष्ठों का महत्व है और इसी कारण ऐसे रुब्रह्मविद् को साक्षात् परब्रह्म शिव का ही स्वरूप कहा जाता है।

शेष कोटी कोटी प्रकार के गुरुओं से अलग अलग लौकिक शिक्षायें ली जा सकती हैं, मंत्र, यंत्र, तंत्र के विषय में भी जाना जा सकता है, मंत्रों और व्रतों को लेकर उनसे नियम विधि विधान भी सीखी जा सकती है और उनके कारण ऋद्धि, सिद्धि, इंद्रजाल के कर्तव्यों में महारथ तथा ईश्वर की मूर्तियों के दर्शन भी किये जा सकते हैं पर अपरोक्षता नहीं पा सकते।

जिसके पास जो होता है वो अत्यधिक प्रसन्न होने पर वही दे सकता है जो है शेष के लिए तो वो खुद अन्यत्र भेज देता है।

स्वयं नारद जी को भी गानविद्या के लिए बहुत गुरुओं का सहारा लेना पड़ा जिसमें पूर्व कल्प में गानबंधु नामक उलूक पक्षी फिर इस कल्प के मंवंतर में जाम्बवती, सत्यभामा और रुकमणी तथा साक्षात् श्रीकृष्ण जी भी उनके शिक्षा गुरु बनें।

अतः सम्मान सभी का करते रहो किसी की निंदा न करें, क्रोध में न जलें पर सभी प्रकार की भूमिकाओं से युक्त ज्ञानी की शरण में रहें।

शुद्ध हृदय वाले, विनय से संपन्न, मिथ्या और कटु वाणी से रहित, स्वयं के गुरु की शरणागति जिसने स्वीकार की हो, शास्त्रज्ञ, बुद्धिमान, तपस्वी,

मधुरता के कारण लोकप्रिय, लोकाचार में रत और तत्त्वज्ञानी गुरु ही मोक्ष देने में समर्थ बताया गया है अंधविश्वास से कपटी को ही परम गुरु मानकर अन्य लोभहीन ज्ञाननिष्ठों के समीप न जाने की इच्छा ही बंधन का कारण है।

सेवा तो जीवमात्र की करना ही धर्म है पर जिसे तैरना नहीं आता वो क्या तैरायेगा। जो स्वयं शांत नहीं वो कैसे शांत करने का माध्यम होगा याज्ञवल्क्य के द्वारा गुरु त्याग का यही कारण था तदोपरान्त साक्षात् सूर्यदेव से उनको ज्ञान प्राप्त हुआ।

तत्त्वहीन गुरु में बोध कहाँ से होगा और उस अज्ञानी का आत्मोद्धार कैसे होगा, वो तो पशु है किसी का गुरु नहीं। जो अभिन्न रूपी कैवल्य ज्ञान से रहित हैं वे सब पशु कहे जाते हैं मुक्त नहीं।

पशुभिः प्रेरिता ये तु सर्वे पशवः स्मृताः

अतः जो तत्त्वेत्ता हैं वे ही मुक्त हैं और दूसरों को भी मुक्त कर सकते हैं।

आत्मबोध उत्पन्न करने वाला तत्त्व परानन्द को उत्पन्न करता है, उस तत्त्व को जिसने स्वयं में पूर्णभाव से जान लिया वही परमानंद का दर्शन कराने में समर्थ है।

नाम मात्र का गुरु ऐसा नहीं कर सकता। जो आत्मज्ञान विहीन है, वह दूसरे को कभी भी नहीं तार सकता, क्या कोई शिला दूसरी शिला को पार करा सकती है,

जिनको नाम मात्र का ज्ञान है उनकी मुक्ति भी नाम मात्र की (कुछ काल तक या अपर मुक्तियों में से कोई एक)

न पुनर्नाममात्रेण संवित्तिरहितस्तु यः।
अन्योन्यं तारयैन्नैव किं शिला तारयेच्छिलाम।।
येषां तन्नाममात्रेण मुक्तिर्वै नाममात्रिका।

अतः सर्व प्रयत्नों से अनासक्त होकर शास्त्र की मायाजाल छोड़कर सदा ही परमगुरु की सेवा में ही तत्पर रहना चाहिए। क्योंकि गुरु बिना परम मुक्ति नहीं मिलती, गुरु बिना शांति, आनंद और विश्रांति की स्वप्न में भी कल्पना नहीं की जा सकती।

अनेक प्रकार की कामनाओं की प्राप्ति के लिए हमारे धर्म ग्रंथों में बहुत प्रकार के उपाय हैं अतः हम उन साधनाओं को गुरु प्राप्ति के निमित्त भी प्रयोग करके सद्गुरू निश्चित ही प्राप्त कर सकते हैं।

अतः अपना वास्तविक हित चाहने वाले पुरुषों को शांति और धैर्य के साथ ब्रह्मविद् परम गुरु की अथवा आरंभ में अपने हृदय में ही स्थित शिव रूपी परम गुरु की तीनों संध्याओं में ही पूजा करना चाहिए।

त्रिसन्ध्यं तु गुरोः पूजा कर्तव्या हितमिच्छता।।

जो गुरु (ज्ञानदाता ब्रह्म) हैं, वे (तद्रूप ज्ञान के कारण साक्षात) शिव कहे गये हैं और जो शिव (ब्रह्म सर्वमय) हैं वे ही गुरु कहे गये हैं और जैसे शिव हैं वैसी ही विद्या (अतः विद्या का साक्षात् परब्रह्म भाव से सेवन करें), जैसी विद्या (कल्याणकारी रहस्यों का ज्ञान देने से) है वैसे ही गुरु होते हैं।

अतः इनमें समरूपता अनिवार्य है, मूल रूप से तो सब कुछ एक ही है पर शिष्य और स्वाध्याय कर्ता को अपने शरीर गुरु और विद्या को साक्षात् शिव स्वरूपता द्वारा ही सेवन करना चाहिए, सेवा और सुश्रूषा करना चाहिए।

यो गुरुः स शिवः प्रोक्तो यः शिवः स गुरुः स्मृतः।
यथा शिवस्तथा विद्या यथा विद्या तथा गुरुः।।

जिससे संपूर्ण जगत व्याप्त है वही शिव है वही भिन्न भिन्न प्रकार के रूपों से सभी ब्रह्माण्डों में समाया है और वही ब्रह्माण्ड और उससे भी परे है उस शिव को ही गुणातीत और रूपातीत होने से गुरु कहा जाता है और जिस वाणी द्वारा जीव के अज्ञान का नाश होता है वही शिव वाणी कही जाती है और जो (एक देह के माध्यम से) कहने वाला निराकार तत्त्व है वह इसी कारण शिव संज्ञा को प्राप्त है अन्यथा उस देह को शिव कहना अज्ञान है, वो दिव्य आत्मा स्वयं अपने बाह्य आवरण को शव तुल्य कहकर स्वयं का असली परिचय देना चाहती है पर जीव का जीवत्व तो देखो कि बाह्य आवरण को ही परब्रह्म समझकर उनकी (उन शिव स्वरूप आत्मा का) अवहेलना करके मुक्ति की आकांक्षा करता है देहातीत होने की इच्छा करता है ये कितना बड़ा आश्चर्य है।

इसी कारण उस मूल स्वरूप को सर्वमय (स्वयं मय भी) और मात्र एक ही परमसत्ता जानने वाले और स्वयं में पूर्णभाव से अनुभव करने वाले को ही एकत्व अर्थात् कैवल्या की प्राप्ति होती है।

वेदों में शिव के दो नाम बताये हैं, निष्कल और सकल, पर सकल वास्तव में मूर्ति में व्याप्त वही निष्कल परब्रह्म शिव ही हैं। शिवतत्व सत्य, ज्ञान, अनन्त एवं सच्चिदानंद नाम से प्रसिद्ध है।

शिवतत्व निर्गुण, उपाधियों (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, देव, बड़ा छोटा, लाल, पीला, सफेद, मोटा, महीन आदि) से रहित है जैसे आकाश सर्वत्र व्यापक है वैसे ही यह शिवतत्त्व सर्वव्यापक है, यह माया से परे, संपूर्ण द्वंद्वों से रहित तथा मत्सरता शून्य है, परंतु जब तक पापों की गठरी नहीं जलती तब तक शिव ज्ञान का उदय नहीं हो सकता और सार समझा जाये तो पापों का परिणाम ही अज्ञान, अशांति, विक्षेप, दुख, पीड़ा, वेदना और भटकाव है अन्यथा शिव केवल और केवल शांत और अविचल सत् चित् आनन्द ही है।

इसी कारण जो इसे जान लेता है वो ही शिव संज्ञा को प्राप्त होकर परात्पर ब्रह्म कहा जाने लगता है।

वेदांती नित्य अद्वैत तत्त्व का वर्णन करते हैं पर अन्य मतों अन्य दर्शनों में मतभेद ही

दिखाई देता है उसका कारण मात्र बाह्य आवरण और बाह्य गुणधर्म मात्र है। लौकिक दृष्टि से यह जीव नाम मात्र उसी को दिया गया है जो अविद्या से आच्छादित है जब अज्ञान का समूल नाश हो जाता है तो उसे शिव ही कहा जाता है क्योंकि वो वही है, वही है वही है।

अविद्या ही जीवत्व का कारक और ब्रह्मविद्या ही शिवत्व का कारक है।

जैसे समुद्र, मिट्टी अथवा सुवर्ण ये उपाधिभेद से नानात्व को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार शिव भी उपाधियों के कारण ही अलग अलग रूपों में भासते हैं, कार्य और कारण में वास्तविक भेद नहीं होता केवल भ्रम से भरी बुद्धि के कारण ही भेद की प्रतीति होती है, भ्रम दूर होते ही भेद बुद्धि का नाश हो जाता है, और फिर जो शेष रहता है वह केवल शिव ही होता है जिसे अनंत, आनंद, परब्रह्म, मूल और एक नाम से संबोधित किया जा सकता है पर वो यथार्थ में नाम और रूप से रहित है।

अपरोक्ष ज्ञान ही पराविद्या है यही ब्रह्मविद्या और यही अभिन्नता जिसे कुछ शास्त्रों में परब्रह्म नाम दिया है और इसके विपरीत जो बिना अनुभव की सारी विद्यायें हैं वे अपर विद्यायें वे अपर भी कई भागों में विभाजित की जा सकती हैं पर उनका कैवल्य से विशेष संबंध नहीं पर हाँ ब्रह्म और जीव की एकता बताने वाले जितने भी ग्रंथ हैं वे निश्चित ही ब्रह्मविद्या दाता कैवल्या के परम से भी परम माध्यम ही मानने योग्य हैं न कि साधारण जानकारियाँ।

पर अपरोक्षता शब्दों में वर्णन का विषय नहीं पर समझने के लिए ऐसा मान लीजिए कि जब दो दीपक की ज्योतियाँ आपस में मिलकर एक हो जाती हैं उनमें कोई भेद नहीं रह जाता कि कौन बड़ी कौन छोटी कौन कम प्रकाश वाली और कौन अधिक...वैसे ही जब अपरोक्ष ज्ञान होता है तो जीव और ब्रह्म का भेद पूर्ण रूपेण खत्म हो जाता है और यही जीवंतमुक्ती कही जाती है।

इसमें तो बस निर्विकल्पता ही शेष रहती है और निर्विकल्पता वाला ब्रह्म (ब्रह्मविद्) यदि लीलावश निर्विकल्प भाव को वर्णन करे तो भी धन्यता के सिवाय और कुछ भी शेष नहीं रहता।

धन्योऽहं धन्योऽहं दुःखं सांसारिकं न वीक्षेऽद्य।
धन्योऽहं धन्योऽहं स्वस्याज्ञानं पलायितं क्वापि।।
धन्योऽहं धन्योऽहं कर्तव्यं मे न विद्यते किंचित।
धन्योऽहं धन्योऽहं तृप्तेर्मे कोपमा भवेल्लोके।
धन्योऽहं धन्योऽहं धन्यो धन्यः पुनः पुनर्धन्यः।।

1. मैं धन्य हूँ मैं धन्य हूँ क्योंकि मैं (ब्रह्म स्वरूप सत् चित् आनन्द) अब इस नाशवान संसार का दुःख बिल्कुल भी नहीं देखता हूँ।
2. मैं धन्य हूँ मैं धन्य हूँ क्योंकि मेरा अज्ञान कभी का विनष्ट हो गया।
3. मैं धन्य हूँ मैं धन्य हूँ क्योंकि अब मुझे कुछ भी करना शेष नहीं।
4. मैं धन्य हूँ मैं धन्य हूँ क्योंकि मेरी तृप्ति की क्या इस लोक में कोई उपमा है अर्थात् कोई नहीं।
5. मैं न तो जीव हूँ न ही कोई रूप न ही मेरा कोई नाम मैं अनाम, निराकार, सदा स्वयं में ही पूर्ण कृतकृत्य हूँ, मुझे कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र कहकर मेरे प्रति असत्य भाषण ही करता है पर मैं उससे भी प्रभावित नहीं होता; क्योंकि मैं शब्दातीत हूँ फिर

शब्दों में उलझकर मूढ़ता का परिचय कैसे दे सकता हूँ, हाँ आरंभ मैं जब मैं अपने आपको शरीर मानता था तब अवश्य ही मैंने अपनी मूलता के अनभिज्ञ क्षणों में ऋषियों के द्वारा बताये मार्ग को अंगीकृत किया क्योंकि ऋषियों की आज्ञा ही जीव और ईश्वर का भेद नाशक परम औषधि है।

अब न तो लोकेष्णा है न ही धन की लालसा (वित्तेष्णा), न ही मुक्ति के लिए पुत्रों की कामनायें; क्योंकि मैं स्वयं मुक्त ही हूँ और ब्रह्मा व ब्रह्मपुत्रों में श्रवण और ब्रह्मापुत्र वधुओं में श्रावणी भी मैं स्वयं ही तो हूँ....

ओह् इतने अनंत और अक्षय आनन्द का वर्णन भला यह शब्द और जिव्हा कैसे कर सकते हैं। भौतिक कीर्ति से होगा भी क्या बैसे भी कीर्ति शब्द का कीर्तित्व मैं स्वयं ही हूँ और जहाँ जहाँ जिस जिसकी कीर्ति हो रही है, लोक में जो जो प्रसिद्ध हैं वो मूलतः मैं ही एक सर्वमय सत्ता हूँ... अब इस देह के लिए क्यों और किसके लिए प्रसिद्ध होऊँ। सब रूप में मैं ही तो हूँ और भेदभावी होकर एक पल देख भी लूँ तो मुझे एक कल्प पहले के उन सभी चक्रवर्ती राजाओं पर हंसी आती है जो प्रसिद्धि के लिए भागते रहे भजन न किया अतुलनीय धन का संग्रह कर लिया और आज उनका नाम, रूप ही अस्तित्व हीन है और कुछ पापों के कारण अनेक स्थानों में श्वान बनकर घूम रहे हैं.....

ओह् और न ही स्त्री रूपी एक स्थूल पिंड (जो जड़ ही है मात्र मेरे कारण चलायमान है) को पास में रखने की इच्छा; क्योंकि सारे जड़ और चैतन्य मेरे ही रूप है फिर मैं ही मुझको कैसे भोग सकता हूँ और जो नाशवान है उसको मैं पास में रखकर क्या करूँगा, मैं एकाकी था, हूँ और रहूँगा। जिसको मुझसे दूर होना है शौक से दूर हो जाये जिसको पास आना है आये पर इसमें में क्या लाभ या हानि, मैं लाभ और हानियों से मुक्त सत् चित् स्वरूप हूँ मैं वही हूँ निराकार परम शांति और परम आनंद।

फिर तो बस बाह्य पूजा भी तिरोहित हो जाती है और आरंभ होती है आत्मज्ञानियों की आत्म पूजा। यद्यपि यह भी आवश्यक नहीं क्योंकि पूर्ण और तद्भावी स्वयं की पूजा करके भला प्रसन्न किसको करेगा सर्वमय केवल एक ही है, वह हो तुम, वह हूँ मैं, वही सर्वमय केवल और केवल वही

शिवोऽहम्
शिवोऽहम्
शिवोऽहम्
तस्य निश्चिन्तनं ध्यानम्।
सर्वकर्मनिराकरणमावाहनम।
निश्चलज्ञानमासनम।
समुन्मनीभावः पाद्यम।
सदामनस्कमर्घ्यम् ।
सदादीप्तिराचमनीयम।
वराकृतप्राप्तिः स्नानम।
सर्वात्मकत्वं दृश्यविलयो गन्धः।
उसका सतत् चिंतन ही ध्यान है।
सभी कर्मों का निराकरण ही आवाहन है।
अविचलित अविचल ज्ञान ही आसन है।
उसके प्रति सदा उन्मुख रहना ही पाद्य है।
उस ओर सदैव मनोयोग ही अर्घ्य है।
आत्मा की निरंतर दीप्ति ही आचमन है।
श्रेष्ठता की प्राप्ति ही उसका स्नान है।

और सर्वात्मक दृश्य (भौतिक प्रपंच और अलगाव से युक्त भेद दृष्टि) का विलय ही गंध है।

दृगविशिष्टात्मानः अक्षताः। (विशिष्ट नेत्र अर्थात् अन्तर्नेत्र ही अक्षत हैं)
चिदादीप्तिः पुष्पम् (चौतन्य दीप्ति ही पुष्प है)
सूर्यात्मकत्वं दीपः।
परिपूर्णचन्द्रामृतरसैकीकरणं नैवेद्यम। निश्चलत्वं प्रदक्षिणम।
सोऽहंभावो नमस्कारः।
परमेश्वरस्तुतिर्मौनम।
सदासन्तोषो विसर्जनम।
एवं परिपूर्णराजयोगिनः सर्वात्मकपूजोपचारः स्यात।
सर्वात्मकत्वं आत्माधारो भवति।
सर्वनिरामयपरिपूर्णोऽहमस्मीति मुमुक्षूणां मोक्षेकसिद्धिर्भवति।।

अर्थात् उस आत्म तत्त्व का सूर्यात्मकत्व ही दीपक है, पूर्ण चंद्र और उसके अमृत रूपी रस का एकीकरण ही नैवेद्य है। उसकी निश्चलात्मकता (सुनियोजित गतिशीलता ही प्रदक्षिणा है।

सोऽहम् भाव अर्थात् वह (साक्षात् परब्रह्म) मैं ही हूँ (दूसरा और तीसरा अन्य कहीं भी कुछ भी नहीं, जो भी, जहाँ भी दिखाई देता है वो मेरा ही बाह्य आवरण है उन सभी का परम विशुद्ध आत्मा मैं ही हूँ केवल मैं) ही नमस्कार है (शेष औपचारिक नमस्कार मात्र व्यवस्थाओं के लिए और भेदज्ञों के लिए बनाये गये हैं इस कारण वो अविद्या के अंतर्गत ही है और अद्वैत के अनुसार मायामय, अज्ञानमय और भय के कारक हैं क्योंकि द्वैत से ही भय और विचलन होता है।) मौन(अन्तर्मुखी) रहना ही उस स्वयं आत्मतत्व की स्तुती (कही जाती) है। सदा संतोष, संतुष्ट रहना ही यथार्थ विसर्जन है।

इस प्रकार परिपूर्ण राजयोगी का सर्वात्मक पूजा, उपचार ही उस आत्म तत्त्व का आधार है। समस्त आधि व्याधियों से रहित मैं पूर्ण ब्रह्म हूँ।

ऐसा परम व सत्य आत्मबोध रखने से ही मुमुक्षुओं को मोक्ष प्राप्त करने की अभिलाषा सिद्ध होती है अथवा जो मुक्त है वो तो भावों से भी रहित निर्लिप्त और निर्विकल्प ब्रह्म ही है। **इस प्रकार**

मैं पूर्ण ब्रह्म हूँ ....

रूपी **सत्य को जानकर 84लाख योनियों की पीड़ा से मुक्त होकर संसार रूपी भयंकर विष को दूर कर देना चाहिए,** प्राचीन काल में एक बार हलाहल विष पान के बाद भोले की इस वाणी को कभी नहीं भूलना चाहिए जो परम कल्याणकारी और भवरोग की नाशक औषधि है–यह जगत ही महाविष और महाघातक है, संसार को अमृत न समझे वो तो भीषण विष है जो मेरे कंठ के कालकूट विष से भी घातक ही सिद्ध होगा।

(सागर मंथन के बाद गुफा में पहुँचकर कालकूट विष के भक्षक बनने के बाद महादेव जी एक गुफा में बैठ गये)

तब मुनियों ने पूछा कि प्रभु आपने कालकूट को निष्क्रिय कैसे किया?

तब प्रभु आशुतोष बोले कि यह विष क्या है कुछ भी नहीं मैं अति भयंकर विष को भी पान कर जाऊँगा, परंतु यह कालकूट वास्तव में विष नहीं बल्कि संसार ही विष कहा जाता है, संसार भयंकर विष है अज्ञान के कारण

ही जीव इस विष का सेवन करता है, क्षणिक सुखों के लिए यह आठों पहर ही विष पीता है।

अपने अधिकार के अनुसार संसार दो प्रकार का कहा गया है, मूढ़चित्त वालों के लिए यह संसार असंक्षीण (कभी भी क्षीण न होने वाला) और बुद्धिमानों के लिए यह संसार मिथ्या का स्वरूप अतः हे मुनियों! इस संसार से पूर्णतः मुक्त होने का प्रयास करो।

परलोक को न जानकर भी शास्त्र के द्वारा सत्यता का स्पष्टीकरण सहज ही होता पर इहलोक और परलोक दोनों ही पदार्थों को हेय समझकर पूर्ण प्रयत्न से परित्याग कर देना चाहिए।

और वही विरक्त कहा जाता है और जो पूर्णतः निःस्पृही हो और वह निष्काम भाव से युक्त होकर कर्म अवश्य ही करें, वेदोक्त निष्काम कर्म के द्वारा जीवभाव क्षीण होता है और सकाम कर्म से जीवभाव दृढ़ हो जाता है।

वास्तव में पुत्र, पुत्री, कर्म तथा धन इन सबसे मुक्ति नहीं होती ये सब बहुत से बहुत स्वर्गादि तक पहुँचा सकते हैं, मात्र अपना संकल्प, अपनी भक्ति की ही रक्षा करना चाहिए। जितना बड़ा त्याग होगा उतना ही बड़ा फल सुनिश्चित जाने, यहाँ कोई भी किसी के साथ भेद या पक्षपात नहीं कर सकता। गर्भ में, योनिमार्ग में, धरती पर कुमारावस्था में, युवावस्था में, वृद्धावस्था में और मृत्यु के समय प्राणियों को अनेक दुःख होते हैं, विषयों को दुःख की पिटारी समझकर जला डालना चाहिये, विषयों के उपभोग से काम की शांति कभी नहीं हो सकती, जैसे हवि से अग्नि बढ़ती है वैसे ही वह कामना निरंतर बढ़ती ही जाती है अतः इन सबका दूर से ही त्याग कर कल्याण संभव है।

चाहे भोग 8, 16, 24, 32, 40 या 48 प्रकार का अथवा 56 भोग का ही क्यों न हो विवेक युक्त व्यक्ति के लिए ये सब और अन्य भोग भी ये सब दुख रूप ही हैं।

एक बार विद्याधरों के अधिपति चित्रकेतु ने तप करके भगवान अनंत प्रभु के दर्शन किये और परम सत्य, जीवन का परम लक्ष्य और परमसिद्धि के विषय में पूछा था तब प्रभु ने संसार और भौतिक सुखों की सारहीनता तथा आत्मा के अनंत और अक्षय आनन्द संबंधी, अद्वैत के बारे में जो कहा वह सुने।

अध्याय–12

ब्रह्मभाव पर वह वही होता है

ब्रह्मभाव पर ही मनुष्य समाधिस्थ हो सकता है क्योंकि वह उस समय तद्रूप होने से साक्षात ब्रह्म ही होता है। यह ब्रह्मभाव परम अद्वैतवादी गुरु की कृपा से ही संभव है। न कि जीवभावी की सेवा से। इस ब्रह्मनिष्ठता पर ही उसका देहत्व भाव नहीं बचता इस कारण यह कहना ही शाश्वत सत्य है कि एक ब्रह्मभावी ही सहज ही ब्रह्मचर्य का सतत पालन भी करता है अन्य जीव भाव पर वह प्रयास अवश्य करता है और इस प्रयास के बदले उसे महर्लोक या ब्रह्म लोक में सुख मिलता है पर वह कैवल्या पद का अधिकार नहीं पाता । इस संसार में ब्रह्मचारी दो ही तरह के हैं एक वह जो अपने जीव भाव से रत होकर ईश्वर से रक्षा के लिए प्रार्थना कर रहे है (कभी हनुमत् मंत्र का अनुष्ठान करते हैं तो कभी स्मर सूक्त से उपासना तो कभी यम स्तोत्र का पाठ जिससे वो खंडन के परिणाम से कांपने लगते है और यमगदा से डरकर परायी नार को नेत्र गड़ाकर नहीं देखते न ही परायी स्त्रियों से डर के चक्कर में संबंध स्थापित कर पाते हैं यह भी यमभयभाव उत्तम है इसका फल भी अद्वितीय है पर इस प्रकार के ब्रह्मचर्य की प्रशंसा यह शिव स्वरूप अक्षयरुद्र नहीं करता क्योंकि ऐसा ब्रह्मचारी महान लक्ष्यारूढ़ न होकर पथिक कहलाता है। महान तो हे अक्षयरुद्र! वही है जो ब्रह्मचर्य व्रत के पालन हेतु सोचता नहीं न ही उपाय करता है पर सहज ही भगवान कृष्ण और शिव जी की तरह अखंड ब्रह्मचर्य पूर्वक रहता है। और यह तद्भावित ब्रह्मनिष्ठता पर संभव है भेदभाव वाले तो दैहिक बुद्धि से परे हो ही नहीं पाते। देवता वर्ग भी जब तक स्वरूप बोध से युक्त न होगा तब तक वह अखंड ब्रह्मचर्य पूर्वक नहीं रह सकता इसी कारण एक बार चंद्र देवता भी काम का गुलाम होकर उसी के गुरु को पत्नी पिण्ड से मूँह काला कर चुका है और एक बार इन्द्र देव भी अहिल्या प्रसंग में पतित हो चुका। हालांकि अब ये दोनों घोर तप से शुद्ध होकर पुनः पूजे जाने लग गए पर बात ब्रह्मभाव की ही उत्तम है जो जीवत्व

भाव पर तो कभी भी कलंक लगा सकती है देह भाव ही जीव भाव है और महावाक्य का पालन ही ब्रह्म भाव जहाँ देह ही नहीं बचता मन भी अमनस्क होने पर वह ब्रह्म ही हो जाता है। बस वही परम रक्षा है और सब औपचारिक।

इस विश्व के ऐसे ही दिव्य ब्रह्मचारियों को नमन है। नमन है नमन है।

और जो प्रयास रत हैं उन सभी का प्रयास सार्थक हो।

*****

अध्याय–13

सुरक्षा से मात्र समय का क्षय

सारे के सारे भोगों की आसक्ति और भोगों की वस्तुओं को ढेर लगा लगाकर उसकी सुरक्षा से मात्र समय का क्षय ही होता है, उनका या सिद्धियों का भी या सौन्दर्य का सागर किसी सुन्दर नारी से विवाह करके और पदार्थ संग्रह करके आप मात्र पड़ोसी को अपनी उपलब्धता दिखा सकते हो कि –

देखो यार मेरे पास यह है वह है आदि आदि पर

कब तक ?

अगले 40 साल तक ...... फिर क्या होगा।

आपकी चिता जलने के बाद आप स्वयं भटकोगे आसक्ति के कारण।

अतः भगवान ने हमको यह आयु मात्र सदुपयोग करने के लिए दी है न कि स्पृहावान बनकर लोकेष्णा के लिए। यह सारे भोग आपको परलोक में भी मिल जाते हैं (हाँ वहाँ किसी भी चीज की कमी नहीं पर इस जन्म में तो परम विशुद्ध रहो) हम तो कहें आप निवृत्त होकर अपने गुरुदेव को ही समर्पित हो जाओ और उनके महावाक्यों से अभिन्न हो जाओ।

मात्र दीक्षा लेकर औपचारिक क्रियायोग या चार पाँच माला से मुक्ति मिलती तो प्रत्यक्ष में गुरु शरण की आवश्यकता ही क्या रह जाती। अंशभूत शिव तो मात्र यही कहेगा कि यदि आपके दो तीन भाई हो तो आप बंधन में मत पड़ो। पतंगा दीप शिखा के क्षणिक और मिथ्या सुख के कारण ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है यह कोई माने या न माने, पर परम सत्य है, अतः व्यक्ति को कुछ समय के भोगों या इंद्रिय तृप्ति के चक्कर में पड़कर अपना जीवन नष्ट नहीं करना चाहिए अथवा पूर्णता के बाद कुछ किया जा सकता है (पर पूर्णता के बाद तो आपकी कामना पलायन वेग से उड़ ही जायेगी तब मात्र ब्रह्मानंद ही बचेगा)

हालांकि सत्य तो ये भी है कि यदि किसी भी परिवार में एक भी पतिव्रता हो तो वह समस्त परिवार को तार देती है, पर तारने की आशा पत्नि

से रखना भी मूर्खता है स्वयं ही सिद्ध पुरुष बनो न क्यों किसी जीव की विशुद्धि की आशा करते हो भाई!

परंतु यह भी सत्य है कि यदि वह परपुरुष गामिनी (कुलटा, वैश्या अथवा महावैश्या) निकली तो पति के परिवार की पिछली 7 पीढ़ी और वर्तमान की पीढ़ी को सीधे ही नरक में डाल देती है तथा उसके माता पिता की पीढ़ी भी नरक गामी होती है वैसे भी मुक्ति का संबंध स्त्री या पुत्र से है ही नहीं, पर जो लोग पाप करते हैं उनके लिए श्राद्ध, पिण्डदान आदि के लिए संतान की आवष्यकता होती है इसके विपरीत जो प्रभु के भक्त, गौ सेवक, राष्ट्र भक्त, वैराग्य वान, मुमुक्षु या ज्ञाननिष्ठ होते हैं उनको अपने उद्धार के लिए न तो संतान की आवष्यकता है और न ही पिण्ड दान की। धर्म शास्त्रों में तो इतना भी लिखा है कि यदि कोई मनुष्य भक्त या ज्ञानी हो अथवा न हो, वैराग्य या मुमुक्षा उसे प्राप्त हुई हो अथवा नहीं, यदि वह मात्र नित्य गाय को एक पूरा (अथवा गाय की अन्य खाद्य सामग्री) भी खिलाता है या गौषाला में मात्र अपनी वेतन का सूक्ष्म अंष भी देता है तो भी वह संपूर्ण पापों से मुक्त होकर गौलोक का अधिकारी हो जाता है अतः हे कामियो! कुछ करना ही है तो गायों के लिए करो। क्यों व्यर्थ ही अपने जीवन को जीते जी मुर्दा बनाने का प्रयास कर रहे हो?

*****

अध्याय–14

मुक्ति का सम्यक् ज्ञान

तीन प्रकार की गुरुदीक्षा होती है जिसमें निम्न स्तर के साधकों को मंत्रदीक्षा पर ही अधिकार है और जो ज्ञान की तीसरी भूमिका पर (सत्संग स्वाध्याय मात्र से या श्मशान की राख से अनासक्त व वैराग्यवान हो गऐ अर्थात इस भूमिका पर) पहुँच चुके वे बिना मंत्र के भी मुक्त हो जाते हैं। दीक्षा के उन दो प्रकारों में शाम्भवी व शाक्तिक दीक्षा है पहली मंत्र दीक्षा (किसी किसी परंपरा में पहले नाम दान तदोपरान्त मंत्र दान का नियम है) स्कंद पुराण के श्रीराम– हनुमंत संवाद में तो यह तक बताया है कि मुमुक्षु या वीतरागी मनुष्य मात्र सत्संग से ही मुक्त हो जाते हैं क्योंकि उनके पूर्व जन्म का गुरु ही उनको इस जन्म में अतिशीघ्र वीतरागी बनाता है और ज्ञान की अगली भूमिका के लिए शाम्भवी या शाक्तिक दीक्षा (देह में प्रवेश करके बिना दर्शन दिये भी) देकर ही मुक्त कर डालते हैं।

याद रहे मंत्र दाता गुरु मात्र बोधक गुरु होते हैं पर वे यदि स्वयं ब्रह्मनिष्ठ न हो तो उनका मंत्र या उनकी सेवा से मनुष्य मुक्त नहीं होता। ऐसा लिंग पुराण कहता है कि मुक्ति अनेक प्रकार की होती है पर यह गुरु की ज्ञान भूमिका पर आधारित है

नाम मात्र के गुरु से नाममात्र की मुक्ति (कुछ कालखण्ड तक परलोक में सुख) मिलती है यह भगवान वेदव्यास जी ने लिंग पुराण में स्पष्टीकरण किया है। और स्कन्दपुराण की गुरुगीता में भी कहा है कि सूचक वाचक बोधक (जो तद्भावित नहीं पर मंत्र दाता हो)

और विहित गुरुओं से साधारण कल्याण होता है । पर जो गुरु परम गुरु हो (महान वैराग्यवान और अपरोक्ष ज्ञानी) वही कैवल्या दाता है। इसी गुरु की संज्ञा सद्गुरु है परंतु यह गुरु अंतिम जन्म में ही मिलता है वह भी अनेक जन्मों के निष्काम जप तप व्रत–उपवास और निष्काम सेवा से। ऐसा गुरु ही ब्रह्मदाता व ज्ञानदाता होने से ब्रह्म वैवर्त पुराण के अनुसार मंत्र दाता

हजारों गुरुओं से भी उत्तम सर्वोत्तम और श्रेष्ठ है। (ज्ञानदाता गुरुणां......) यही श्रीमद्देवीभागवत महापुराण की देवी गीता में लिखा है कि मात्र ब्रह्मनिष्ठ गुरु ही ब्रह्म से एकाकार होने से परमात्मा ही है वही मुक्ति और शाश्वत सुख का माध्यम होने से परमात्मा ही जाना जाए। श्रीकृष्ण भागवत में भी तीन प्रकार के गुरुओं में ब्रह्मनिष्ठ ही सर्वोत्तम है। और शिव पुराण विद्येश्वर संहिता अध्याय अठारह तो इन साधारण गुरुओं को छोड़कर श्रेष्ठ ज्ञानी पुरुष को गुरु मानकर सेवा की ही बात करता है यह भी वेदव्यास जी ने ही कहा है इसका प्रमाण याज्ञवल्क्य, निमि और बालक शुक्राचार्य इन तीनों के गुरुत्याग की कथा है।

आज इस गुरु माहात्म्य पुस्तक के माध्यम से यह अक्षयरुद्र यथार्थ संभाषण करके यही कहना चाहता है कि उपनिषदों को व शास्त्रों को समय समय पर पढ़ते जायें उससे आपको सम्यक् भूमिकाओं का ज्ञान होता जायेगा। जिससे आप आगे बड़ सकोगे अन्यथा ज्ञान की लॉअर केटेगरी के गुरु को ही आप अपरोक्ष ज्ञाननिष्ठ अभिन्नभावी समझकर मारे जाओगे।

आपको समझ न आये तो मात्र शिव पुराण विद्येश्वर संहिता अध्याय 18 की एक बात ही पढ़ लो कि – मुक्ति (अपरोक्षता) ही जीवन का लक्ष्य है अतः गुरु से भी अधिक श्रेष्ठ कोई ज्ञानी पुरुष मिल जाये तो उसकी ही सेवा और उनके ही महावाक्यों का अभ्यास करें अन्यथा पुनर्जन्म सुनिश्चित जानें। और समझ न आये तो गुरुगीता के सात प्रकार के गुरुओं को इसी पुस्तक (गुरु माहात्म्य में पढ़े। सातों प्रकार के गुरुओं की सेवा का अलग अलग फल है। यदि ऐसा न होता तो मात्र स्वर्ग या सालोक्य मुक्ति तक ही सब लोग सीमित न होते वे भी सारूप्य या सामीप्य अथवा सायुज्य प्राप्त कर लेते या अभिन्नभाव से वही हो जाते।

यह मुक्ति (सामीप्य मुक्ति) बकवास नहीं अपितु इष्ट के पास सदा के लिए रहने का नाम मात्र है।

और यह सारूप्य मुक्ति को भी मूर्ख लोग बकवास बना बैठे जबकि सारूप्य मुक्ति का तात्पर्य यह है कि मरने के बाद परम भक्त सदा के लिए इष्ट के पास उनके ही समान रूप धारण करके वहीं रहता है। पर कुछ भक्तों ने ग्रंथों में छेड़छाड़ करके इस सारूप्य या सामीप्य मुक्ति को ही कचरा

या बकवास रूप में प्रस्तुत कर डाला। जबकि ये दोनों मुक्तियाँ तो परम भक्त के दो फल मात्र है जो देह त्याग के बाद पात्रता देखकर दिये जाते हैं।

कोई परम भक्त मरकर हरि की समीपता पाता है इसे सामीप्य मुक्ति नाम से अलंकृत किया है वेदव्यास जी ने और कोई भक्त मरकर उनका रूप भी (चतुर्भुजी या शिवरूप) पा लेता है और वहीं रहता है इसे सारूप्य मुक्ति या सारूप्य पद कहा है। पर अपरोक्ष ज्ञाननिष्ठ इन दोनों मुक्तियों से भी उत्तम मुक्ति पाता है। शिवगीता और ब्रह्म वैवर्त पुराण में अनेक प्रकार की मुक्तियों की बात है।

इनमें से चार प्रकार की मुक्ति (में से कोई एक) अनन्य भक्त को ही मरने पर मिलती है। वैकुण्ठ में चार प्रकार से रहने की जीव की अवस्था ही चार तरह की मुक्ति है। बस ...

इति श्री मुक्ति ज्ञान संपूर्णम्

*****

अध्याय–15

सहस्त्रों बार जन्म लेते हैं रूप अवश्य ही अन्य

सद्गुरू अपने श्रृद्धालु और निश्छल शिष्यों के कल्याण करने के लिए सहस्त्रों बार जन्म लेते हैं रूप अवश्य ही अन्य होता है पर आत्मा साक्षात् वही होता है जो पूर्व में था, वस्तुतः सर्वमय मात्र एक ही परमसत्ता है दूजे नाम की कल्पना मात्र व्यवहार के लिए है तत्वतः यथार्थ में सब अभेद ही है। अतः अपने हृदय से मात्र छल कपट हटा दो शेष भक्ति मुक्ति आदि गुरु पर छोड़ दो। ,शिष्य चाहे गुरु को मानता हो या छोड़ देता हो पर सद्गुरु ने एक बार जिसका हाथ पकड़ लिया या जिस पर स्नेहभरी दृष्टि पड़ गयी वो शिष्य बिना संदेह के, बिना परिश्रम के मुक्त होगा ही।

स्कंद पुराण –

हे पार्वती!

सद्गुरू के चरणों में ब्रह्मबुद्धि कर सेवा या स्मरण करने वाला भक्त यदि किसी कारण वश पराविद्या को आत्मसात न भी कर पाये तो वह कालांतर में बिना ज्ञान के भी मुक्त हो जाता है इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है।

निष्पाप कौन है ?
ब्रह्मानन्द से युक्त , अपरोक्ष ज्ञाननिष्ठ ही निष्पाप है। और शेष परिभाषाएं मात्र उनकी हैं जो ज्ञान की पहली से तीसरी भूमिका तक लटके और अटके हैं

*****

अध्याय–16

गुरु प्रदत्त विद्याओं पर परम विश्वास

हे मानवों! यहाँ के जितने सुख हैं, वे सभी अनित्य हैं अतः उन्हें भी दुःखोंकी ही श्रेणीमें रखे। गीता 5.22 यह सब स्पष्ट कहता है। भक्त को चातक की भाँति होना चाहिए उसे मात्र परमगुरु और गुरु के मंत्र व गुरु प्रदत्त विद्याओं पर परम विश्वास होना चाहिए। फिर चाहे मेघ या स्वर्ण बरसे या न बरसे पर समस्याओं से परेशान होकर न तो पाप करना चाहिए न ही किसी सिद्धि अथवा चमत्कार के पीछे भागना चाहिए। शरणागत शिष्य और परब्रह्म के भक्तों को कभी इहलोक और परलोककी चिन्ता नहीं करनी चाहियेय क्योंकि इहलोकके जितने भी सुख भोग हैं, वे पूर्वजन्ममें किये हुए कर्मोंके अनुसार प्राप्त होते हैं। चमत्कार के आगे पीछे न भागें, जितना प्रारब्धमें होगा, उतना अपने–आप मिल जायगा और जो प्रारब्ध में नहीं उसे केवल अपने सद्गुरु ही दे सकते हैं जगत का आसक्त और अज्ञानी मनुष्य नहीं और जो परलोकका सुख है, उसे तो भगवान् स्वयं ही पूर्ण करेंगे। अतः मनुष्यको इहलोक और परलोकके सुखोंके लिये किये जानेवाले प्रयत्नका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये।

हे नारद! सब प्रकारके उपायका परित्याग करके अपनेको प्रभु का सेवक समझकर निरन्तर उन्हींकी आराधनामें संलग्न रहना चाहिये। जैसे पतिव्रता स्त्री चिरकालसे परदेश गये हुए अपने पतिके लिये सदा दीन बनी रहती है, प्रियतममें अनुराग रखती हुई केवल उसीसे मिलनेकी आकांक्षा रखती है, निरन्तर उसीके गुणोंका चिन्तन, गायन और श्रवण करती है, उसी प्रकार शरणागत भक्तको भी सदा प्रभु के गुण तथा लीला आदिका स्मरण, कीर्तन और श्रवण करते रहना चाहिये । परन्तु यह सब किसी दूसरे फलका साधन बनाकर (सकाम भाव से) कदापि नहीं करना चाहिये। कल्याणकामी भक्त विरक्त होकर संसार की वासनाओं और शेष सभी कामनाओं से अलग हो जाय और संसार–बन्धनसे छूटनेके लिये उपायों का विचार करेय साथ ही सर्वोत्तम

सुखकी प्राप्तिके साधनोंको भी सोचे तथा पूर्ण शान्त बना रहे। नाना प्रकारके कर्मोंका ठीक– ठीक सम्पादन बहुत कठिन है, ऐसा समझकर परम बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह अत्यन्त चिन्तित होकर वीतरागी, अनासक्त और परम भक्त से ही युगल मंत्र लेकर उन श्रीगुरुदेव की शरण में ही रहे ।

अब गुरु के लक्षण सुनों –

लक्षण इस कारण बता रहा हूँ क्योंकि जिस गुरु में राग, लोभ, आसक्ति, काम, क्रोध, ईर्ष्या–द्वेष तथा लोकेष्णा की भूख है वह स्वयं ही मरकर मुक्त नहीं होगा और न ही वह जीवन्मुक्त होगा फिर उसका शिष्य किस प्रकार मुक्त हो सकता है।

अतः वैष्णव जनों को किस प्रकार का गुरु खोजना चाहिए वह सुनों –

1. जो शान्त हों,
2. जिनमें मात्सर्यका नितान्त अभाव हो,
3. जो श्री महादेव या श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त हों,
4. जिनके मनमें श्री प्रभु की प्राप्ति के सिवा दूसरी कोई कामना न हो, न ही सिद्धि की कामना हो न ही कीर्ति की अन्यथा पद प्रतिष्ठा और यश कीर्ति में ही वह गुरु लिप्त रहता है ।
5. जो महादेव या श्रीकृष्ण सुमिरन और श्रीकृष्ण ध्यान से ही संतुष्ट हो ।
6. जो भगवत्कृपाके सिवा दूसरे किसी साधनका भरोसा न करते हों,
7. जिनमें क्रोध और लोभ लेशमात्र भी न हों, जो
8. श्रीकृष्णरसके तत्त्वज्ञ हों।
9. जो महादेव व श्रीकृष्ण मन्त्र की जानकारी रखनेवालों में श्रेष्ठ हों, जिन्होंने युगल मन्त्र का ही आश्रय लिया हो, वे गुरु ही सर्वोत्तम (उच्च स्तरीय) गुरु हैं क्योंकि युगल मंत्र का सेवक ही इसी जन्म में भवरोग से मुक्त होता है शेष जप और तप करने वाले कितना भी भजन करें 100 जन्मों तक भी मुक्त नहीं हो सकते। यदि वे किसी पुण्य या हरिमंत्र से परमधाम को प्राप्त हो भी जाएं तो भी वे युगलहीन पुनः भवरोग में निश्चित ही आते हैं।

10. जो सदा मन्त्रके प्रति श्रद्धा–भक्ति रखते हों, सर्वदा पवित्र रहते हों, प्रतिदिन सद्धर्मका उपदेश देते और लोगोंको सदाचारमें प्रवृत्त करते हों, ऐसे कृपालु एवं विरक्त महात्मा ही गुरु कहलाते हैं। पर शिष्य को भी ऐसा ही गुणी होना चाहिए अन्यथा वह वीतरागी गुरु से भी विशेष लाभ नहीं ले पाता।
11. तमोगुण और रजोगुण की अधिकता वालों को गुरु में श्रृद्धा और विश्वास अधिक नहीं होता इस कारण वीतरागी गुरु का कर्तव्य है कि वह शिष्यों की एक से चार वर्ष तक परीक्षा लेकर ही युगल मंत्र प्रदान करें साधारण मानव की साधना सकाम ही होती है अतः जटिल प्रारब्ध वश
12. यदि उस शिष्य की कामना पूर्ण नहीं होती तो वह गुरु और प्रभु श्रीकृष्ण में आस्था कम (अल्प) कर देता है जिससे उसके अध्यात्म की हानि होती है अतः वीतरागी महात्मा जितना संभव हो दीक्षा से बचे। अथवा विशेष जिज्ञासु और मुमुक्षु अथवा रसिक भक्तों को ही दीक्षा दे।
13. दीक्षा और संन्यास एक साधारण क्रिया नहीं यह सामान्य और स्त्रीलम्पट मानवों के लिए नहीं है।
14. साधारण मनुष्य कामकामी होते हैं वे यदि वीतरागी गुरु का त्याग कर दें तो गुरु के प्रति महाअपराध ही करते हैं।
15. निषिद्ध गुरु के त्याग की आज्ञा तो शास्त्रों में है पर वीतरागी, अनासक्त, निर्मोही भक्त और भगवान श्रीकृष्ण के भक्तों का त्याग करने की आज्ञा किसी भी प्रकार से उचित नहीं। अतः शिष्य भी ऐसा उत्तम होना चाहिये, जिसमें प्रायः उपर्युक्त गुण मौजूद हों। इसके सिवा उसे गुरुचरणोंकीसेवाके लिये इच्छुक, गुरुका नितान्त भक्त तथा मुमुक्षु होना चाहिये। जिसमें ऐसी योग्यता हो, वही शिष्य कहलाता है। प्रेमपूर्ण हृदयसे भगवान् श्रीकृष्णकी साक्षात् सेवाका जो अवसर मिलता है, उसीको वेद– वेदांगका ज्ञान रखनेवाले विद्वानोंने मोक्ष कहा है।

शिष्यको चाहिये कि वह गुरुके चरणोंकी शरणमें जाकर उनसे अपना वृत्तान्त निवेदन करे तथा गुरुको उचित है कि वे अत्यन्त प्रसन्न होकर बारम्बार समझाते हुए शिष्यके सन्देहोंका निराकरण करें, तत्पश्चात् उसे मन्त्र (युगल अथवा उसकी मनोदशा देखकर पुरुष रूप) का उपदेश दें। एक

बात याद रहे कोई भी साधना बिना गणपति जी के अनुग्रह के तथा बिना स्वाहा देवी के फलीभूत नहीं होती अतः पहले श्री गणेश जी की कृपा का रहस्य जानें।

वह है श्रीसंसारमोहन कवच, अतः सुनें–

श्री'संसारमोहनस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः । ऋषिश्छन्द्रश्च बृहती

देवो लम्बोदरः स्वयम् ॥ धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः ॥
सर्वेषां कवचानां सारभूतमिदं मुने।

ॐ गं हुं श्रीगणेशाय स्वाहा में पातु मस्तकम् ।

द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रो ललाटो मे सदाऽवतु ॥

ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं गमिति च संततं पातु लोचनम् ।

तालुकं पातु विघ्नेशः संततं धरणीतले ॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीमिति च संततं पातु नासिकाम् ।

ॐ गौं गं शूर्पकर्णाय स्वाहा पात्वधरं मम ॥

दन्तानि तालुकां जिह्वां पातु मे षोडशाक्षरः ॥

ॐ लं श्रीं लम्बोदरायेति स्वाहा गण्डं सदाऽवतु।

ॐ क्लीं ह्रीं विघ्ननाशाय स्वाहा कर्णं सदाऽवतु ॥

ॐ श्रीं गं गजाननायेति स्वाहा स्कन्धं सदाऽवतु ।

ॐ ह्रीं विनायकायेति स्वाहा पृष्ठं सदाऽवतु ॥

ॐ क्लीं ह्रीमिति कङ्कालं पातु वक्षःस्थलं च गम् ।

करौ पादौ सदा पातु सर्वाङ्गं विघ्ननिघ्नकृत् ॥

प्राच्यां लम्बोदरः पातु आग्नेय्यां विघ्ननायकः ।
दक्षिणे पातु विघ्नेशो नैऋत्यां तु गजाननः ॥

पश्चिमे पार्वतीपुत्रो वायव्यां शङ्करात्मजः ।
कृष्णस्यांशश्चोत्तरे च परिपूर्णतमस्य च ॥

ऐशान्यामेकदन्तश्च हेरम्बः पातु चोर्ध्वतः।
अधो गणाधिपः पातु सर्वपूज्यश्च सर्वतः ॥

स्वप्ने जागरणे चैव पातु मां योगिनां गुरुः ॥
इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम् ।

संसारमोहनं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥
श्रीकृष्णेन पुरा दत्तं गोलोके रासमण्डले ।

वृन्दावने विनीताय महां दिनकरात्मज ॥

(दिनकर के पुत्र शनि देव को भी विष्णुजी ने महा गणपति जी का रक्षा कवच देकर निर्भय किया था)

*****

अध्याय–17
'मैं' ही समस्त प्राणियों के रूप में हूँ

जब जीव निज स्वरूप को भूल जाता है, तब वह अपने को अलग मान बैठता है इसी से वह संसार के चक्कर में पड़ता रहता है और जन्म पर जन्म मृत्यु पर मृत्यु पाता रहता है, यही शिव तत्त्व, यही नारायण तत्त्व और यही तत्त्व का भी तत्त्व है यहाँ तक कि इसे तत्त्व नाम देना भी एक प्रकार से मात्र समझने के लिए ही है अन्यथा यह तो नाम से भी परे है। यह परम ज्ञान दाता मात्र परमगुरु ही है और तो सब बर्बाद करने में लगे हैं। यह मनुष्य योनी ज्ञान और विज्ञान का मूल स्रोत है, जो इसे पाकर अपने आत्म स्वरूप परमात्मा को नहीं जान लेता उसे कहीं भी किसी भी योनी में शांति नहीं मिल सकती।

यदेतद्विस्मृतं पुंसो मद्भावं भिन्नमात्मनः।
ततः संसार एतस्य देहाद्–देहो मृतेर्मृति।।
लब्ध्वेह मानुषीं योनिं ज्ञानविज्ञान सम्भवाम्।
आत्मानं यो न बुद्धयेत न क्वचिच्छममाप्नुयात्।।

जीवन भोग के लिए नहीं मिला अपितु निष्पाप, निस्पृह, शांत और अक्षय आनन्द से युक्त होकर मुक्ति के लिए ही मिला है और न ही द्वैत के कारण छोटा या लघु समझकर डरने के लिए। जब सब कुछ एक है तो कौन स्वामी और कौन दास। जबरदस्ती सेवा चाकरी कराने की आज्ञा यथार्थ प्रभुत्व नहीं। प्रभुत्व तो उपनिषदों के महावाक्य देकर एकरूप की सच्चाई बताने में है।

अहम् ब्रह्म शाश्वतम्
अहम् ब्रह्म शाश्वतम्
अहम् ब्रह्म शाश्वतम्
अहम् ब्रह्म शाश्वतम्

अध्याय–18
इन सबको पूरी तरह विस्मृत कर दो

शास्त्र पढ़कर निचोड़ निकालना ही शास्त्र सार है अतः जब तक निचोड़ समझ न आये तब तक स्वाध्याय करना ही चाहिए। पर शास्त्र पढ़कर भी व्यक्ति अपनी बुद्धि के अनुसार ही समझता है अतः समझकर उस निचोड़ का सार कुछ संतों की वाणी से मैच कर लेना चाहिए यदि सही हो तो बस उसी सार रूप (अभिन्नता) को समझकर अध्ययन भी छोड़ा जा सकता है। परंतु संतों की वाणी तभी सार्थक मानी जाए जब कि उपनिषदों से युक्त हो आजकल तो भगवाधारियों में वस्त्र ही अधिक दिखते हैं न कि सम्यकता।

पर जनहितार्थ शास्त्रों के अमृत वचनों का प्रसार भी उत्तम ही है।

इसी कारण हमनें लाइब्रेरी की व्यवस्था भी यहां की है।

और सब अपने स्तर से गीता और भागवत आदि का प्रसार करते हैं।

पर ऐसा भी न हो कि शास्त्र अध्ययन हेतु किसी स्थान पर ग्रंथ न मिले तो विक्षेप होने लगे।

विक्षेप होने का तात्पर्य यह है कि आप अभी भेदज्ञ जीव हो और यथार्थ मर्म नहीं समझा कि यथार्थ परमतत्व क्या है ।

और यथार्थ ज्ञान का मूलभूत अवधूतत्व (सम्यकता) है जो श्री हरि ने अवधूत गीता में और जीवन्मुक्त गीता में कहा है तथा

देवी ने हिमालय संवाद में कहा है और शिव जी ने शिव गीता में तथा राम जी ने राम गीता में। पर यह ज्ञान इन गीताओं में परोक्ष रूप में मिलता है चिंतन व विचार से ही अपरोक्ष होता है फिर इन गीताओं को पढ़ने की भी आवश्यकता नहीं रह जाती और वह जीव जीव न होकर ब्रह्म स्वरूप व परात्पर ब्रह्म कहलाता है । वह तद्रूप और तद्भावी हो जाता है ।

यहीं पर अयमात्मा ब्रह्म और सोऽहम् की यथार्थता उस पर लागू होती है मात्र महावाक्यों को चिल्लाने से (कंस या रावण की भाँति अहम् ब्रह्मास्मि चिल्लाने से) कुछ नहीं होने वाला।

इनके अलावा सारा ज्ञान साधक के स्तर का है न कि यथार्थ मुक्त पुरुष का।

आचक्ष्व शृणु वा तात नानाशास्त्राण्यनेकशः।

तथापि न तव स्वास्थ्यं सर्वविस्मरणादृते॥ 1 ॥

शिव गीता के उस श्लोक को सिद्ध करने वाले परम गुरु ही हैं।

अर्थ–

हे प्रिय! अनेक प्रकार के शास्त्र हैं। उन्हें कितनी बार भी पढ़ लो या सुन लो, पर तुम्हें शांति प्राप्त नहीं होगी। यथार्थ शांति तभी प्राप्त होगी, जब इन सबको पूरी तरह विस्मृत कर दोगे।

अर्थात जगत और शास्त्र दोनों का ध्यान न हो तो ही मुक्ति है ।

जो लोग जगत की नारी, धन, प्रतिष्ठा में मन लगाये हैं उस मन को सत्यता से जोड़ने के लिए ही शास्त्र अध्ययन किया जाता है पर यथार्थ जुड़ाव होकर ईश्वर और जीव का मूल ब्रह्मस्वरूपता आ जाये तो कैसा शास्त्र और किसकी उपासनाय ब्रह्म के लिए किसी देवपुरुष की सत्ता ही नहीं।

परिपूर्ण अवस्था के लिए यह ग्रंथ या स्तोत्र या साधु संगति एक

उत्तम माध्यम है पर मंजिल नहीं।

मंजिल तो आत्म साक्षात्कार है।

पर आत्म साक्षात्कार करने वाले समाधिस्थ रहते हैं।

एकत्व में रहते हैं । ब्रह्म भाव में ही सतत् रहते हैं।

साधना में नहीं ।

वही अवस्था योगवसिष्ठ में सर्वोच्च कही गई है।

बाँकि सबका अपना स्तर है पूजा, पाठ का।

सीधे ही आत्मसाक्षात्कार भला किसका हुआ है।

माध्यम अनिवार्य पर ।

पर उत्तम माध्यम ब्रह्मनिष्ठ गुरु हैं जो इतनी आसानी से नहीं मिलते ।

उनकी प्राप्ति के लिए स्तोत्र या मंत्र जप अनिवार्य है।

चित्रकेतो! मुझे पहचानो 'मैं' ही समस्त प्राणियों के रूप में हूँ, तुम भी मैं अर्थात् वही परम तत्व हो। मैं ही साक्षात् परम व सबका आत्मा हूँ, शब्दब्रह्म (वेद और श्रवण से प्राप्त अभिन्नता युक्त वाक्य या परोक्ष ज्ञान) भी मैं हूँ,

अपरोक्षता से मात्र एक ब्रह्म का अद्वितीय अनुभव और स्वयं में आत्मसात तथा सर्वमय **परब्रह्म भी मैं हूँ,** सोया हुआ पुरुष जिसकी सहायता से अपनी निद्रा और उसके अतीन्द्रिय सुख का अनुभव करता है वह ब्रह्म मैं ही हूँ और उसे (मुझे साक्षात्) ही तुम अपनी आत्मा (स्वयं तुम) जानों और भय, संकोच, बंधन, दुःख, मुमुक्षा की इच्छा से भी रहित होकर तत्क्षण मुझ परमात्मा से अभिन्नता पाकर एकाकी और मुक्त हो जाओ।

आगे इस **अनंत गीता** में चित्रकेतु को उपदेश दिया गया उससे स्पष्ट हो जायेगा कि जीव किस दिशा की ओर मुख करके दोड़ रहा है उधर, उस दिशा में देखता भी नहीं कि वहाँ लक्ष्य नहीं अपितु गहरी खाई है जिसमें डूबना सुनिश्चित है। सुने–

हे राजन! सांसारिक सुख के लिए जो चेष्टायें की जाती हैं, उनमें श्रम है, क्लेश है और जिस परम सुख के उद्देश्य से वे की जाती है, ठीक उसके विपरीत परम दुःख देती हैं किंतु कर्मों से निवृत्त (होकर मात्र अध्यात्म को अंगीकृत करके परमात्मामय) हो जाने पर किसी भी प्रकार का भय नहीं, यही सोचकर बुद्धिमान को चाहिए कि वह किसी भी प्रकार के व्यर्थ सारहीन कर्मों को त्यागकर, भोगों की दूषित कामनाओं को त्यागकर और फलों का संकल्प भी न करके अपने ब्रह्म भाव में स्थित रहकर जीवन सफल करे।

जो मनुष्य अपने को बहुत बड़ा बुद्धिमान मानकर कर्म के पचड़ो में पड़े हुये हैं उनको विपरीत फल ही मिलता है; क्योंकि इस मार्ग पर सुख नहीं मात्र दुखों का पुंज ही है पर भ्रांति के कारण ही जीव इसको सुख का मूल जानकर दलदल में गिर जाता है और फिर बचाने वाला कोई भी नहीं मिलता; क्योंकि ये बंधन तोड़ पाना उसी तरह कठिन है जैसे कि साधारण मानव को नागपाश का बंधन, हे चित्रकेतो! महादेव ने एक बार ब्रह्मा जी से कहा था कि हे ब्रह्मा! लोहे की जंजीरों में जकड़ा व्यक्ति एक बार उस बंधन से मुक्त हो सकता है पर इस कर्मबंधन और खासकर प्रवृत्ति मार्ग में बंधकर उसकी मुक्ति दुर्लभ है कोई पूर्व जन्मों का पुण्य ही उसे बचा सकता है अथवा ब्रह्मवेत्ता सद्गुरु पर यह इतना आसान नहीं।

जो कुटुम्ब के लोग हैं वे नाम के ही कुटुम्बी होते हैं किन्तु कर्म साक्षात् भेड़ियों और गीदड़ो के समान होते हैं, वे सब मात्र उस मुखिया के धन या वस्तुओं अथवा सुविधाओं को हड़पने के लिए ही आगे पीछे घूमते हैं और जैसे

ही उस स्वामी के पास कुछ भी नहीं बचता उसकी सेवा करना उसी क्षण से बंद करके उसे असहाय छोड़कर अपनी पत्नि, अपने उस हड़पे हुये धन में या बच्चों में ही लिप्त हो जाते हैं।

इस प्रकार इच्छा न होने पर उस धन को भविष्य में निःसंदेह उन षडयंत्र कारियों को रो रोकर देना ही पड़ता है, यह ठीक वैसे ही होता है जैसे कि भेड़िये गड़रियों से सुरक्षित भेड़ो को उठा ले जाते हैं फिर आंसुओं के सिवाय कुछ भी शेष नही रहता और इस बात को वृद्धावस्था में तो हर पुरुष भलीभांति समझ ही लेता है पर उस मूर्ख को देखो कि सबकी कहानी पता होने पर भी वह पराये लोगों को इकट्ठा करने में ही लगा रहता है अहो कितना बड़ा आश्चर्य है।

अथ च यत्र कौटुम्बिका दारापत्यादयो नाम्ना कर्मणा वृकसृगाला एवानिच्छतोऽपि कदर्यस्य कुटुम्बिन उरणकवत्संरक्ष्यमाणं मिषतोऽपि हरन्ति।।

जगत गूढ़ अविद्यात्मक मायारूप है और इस माया रूपी जगत में यह पंचभौतिक शरीर अज्ञान के कारण ही उत्पन्न होता है, हे चित्रकेतु! विचार करो जो शरीर स्वयं ही अज्ञान का पर्याय है उसको भोगने से परिणाम में कौन सुखी हो पाया है, एक क्षण के भोग का परिणाम यदि 8पहर के दुःख का कारण बने तो बुद्धिमान उन सुखों को त्याग देने में ही हित समझते हैं, रात्रि में दही भक्षण या अधिक आहार से जैसे जिव्हा को क्षणभंगुर सुख मिलता है पर परिणाम में वो विष का ही कार्य करता है बैसे ही यहाँ देहभोग का फल जानना ही चाहिए और इस देह को इष्ट सेवा, संतसेवा में लगाकर जीवन सफल कर लेना चाहिए (जबकि भौतिक दृष्टि से ही उसके अलग अलग अंगों में और नव द्वारों में नख शिख तक विकार ही विकार भरा पड़ा है मल मूत्र विष्टा, रक्त, कफ, थूक, लार आदि के अलावा इस शरीर में है ही क्या, जिस मुख से छींक का एक छींट या खांसी के कारण एक लारांश भी भोज्य पदार्थ पर गिर जाये तो उसके खाने वाले लोग रोगों से ग्रसित हो जाते हैं फिर उस शरीर का भोग किसको सुख दे सकता है अर्थात् किसी को नहीं... इस सत्य से भला कौन अनभिज्ञ है, फिर शूकरों जैसा भाव क्या शूकर योनी का प्रदायक सिद्ध नहीं होगा जो पूर्णतः मल और अज्ञान से आच्छादित हो)

उस नाशवान माँस पिण्डों का स्मरण करने से भी परिणाम क्या होगा, मात्र मोह की बेड़ियाँ ही प्राप्त होगी जिससे बार बार पुनर्जन्म होगा... अतः हे वत्स! जो जैसा होता है वैसा ही फलदायी जानकर आत्मा में रमण करो ।

इस माया के प्रपंच से दूर हो जाओ और अपने मूल स्वरूप में प्रतिष्ठित होकर अभिन्न भाव से तदाकार होकर उस अमृत से भी श्रेष्ठतर आनंद का रसपान करो जिसके पान के लिए सारे ब्रह्माण्डों के देवता भी लालायित हैं।

श्रीमद्भगवद् गीता के अध्याय 5 के 22वें श्लोक में भी साक्षात् श्रीकृष्ण भी यह स्पष्ट करते हैं कि हे अर्जुन!

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ।।

जो ये इन्द्रिय तथा विषयों के संयोग से उत्पन्न होने वाले सब भोग हैं, यद्यपि विषयी पुरुषों को सुखरूप भासते हैं तो भी दुःख के ही हेतु हैं और आदि अंत वाले अर्थात् अनित्य हैं इसलिए बुद्धिमान पुरुष उनमें नहीं रमते (नहीं रमते, नहीं रमते, नहीं रमते)

साक्षात् तो क्या कल्पना और स्वप्न में भी इन भोगों को दुःख का परिणाम जानकर विष्टा की तरह त्याग देते हैं और मात्र जिस लक्ष्य के लिए जन्में हैं उसी लक्ष्य पर पूर्णतः ध्यान केन्द्रित करके अपना जन्म सार्थक कर लेते हैं।

जो लोग भ्रांतचित्त वाले हैं या जिन पर किसी जीव का कोई ऋण शेष है मात्र उनकी बुद्धि ही विपरीत लिंगी के शरीर की ओर आकर्षित होती है अन्यथा उस मांस पिंड पर भोगभाव असंभव है, बात यदि वंश परम्परा की हो तो भी वो बुधः (बुद्धिमान) पहले या तो कर्दम ऋषि की भांति तप करके हरि दर्शन करता है और पतिवृता स्त्री व कपिल जैसे पुत्र का वरदान लेता है या शिलाद की भांति अयोनिज नंदीश्वर को ही मांगता है और मांगकर जैसे ब्रह्मवेत्ता में श्रेष्ठ कर्दम जी ने संतान उत्पत्ति के बाद आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन किया बैसे ही वो हरिमय हो जाता है, शेष तो मात्र भोगियों या अल्पज्ञों की ही बारात निकलती हैं या उनको विपरीत लिंगी का भोग प्यारा होता है जिसे पूर्वपापों का कुछ ऋण उतारना हो, अथवा कोई प्रेयसी यदि किसी को पाने के लिए यम नियम संयम का पालन कर रही हो तो भी वो ज्ञानी ध्यानी इस प्रणय सूत्र में बंधकर भी सदा अलिप्त ही होता है, क्योंकि बिना भोगेच्छा

वाला साक्षात् रुद्र स्वरूप ही होता है जिसको पाने के लिए कोई भोगी स्त्री तप और जप नहीं कर सकती अपितु शक्ति ही तप की अग्नि में स्वाहा होने को तत्पर होती है

अपने आपको योगी या सुखी कहने से कोई भी व्यक्ति सुखी या योगीराज नहीं हो जाता उस योग (यथार्थ एकत्व जहाँ जीव और ब्रह्म एक हो जाते हैं) से युक्त होकर ही योगसिद्ध कहा जा सकता है कहने और करने में तथा होने में अवश्य ही अंतर होता है।

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः।।

अर्थात् हे अर्जुन! जो इस शरीर में, शरीर का नाश होने से पहले ही काम और क्रोध से उत्पन्न होने वाले वेग को सहन करने में समर्थ हो जाता है वही पुरुष योगयुक्त है और केवल वही अखंड आनंद से परिपूर्ण परम सुखी है इसके अलावा अन्य सब बाते हैं और किसी पूर्वजन्मों के सकाम कर्म या सकाम साधना का परिणाम जो इस लोक में पद, कीर्ति और ऐश्वर्यों की विविधता दिलवा रहा है अन्यथा कोई भी विशेष रहस्य नहीं।

इस संसार में जो निष्पाप हो गया, जिनको अब कुछ भी जानना और समझना शेष नहीं रहा, जो संपूर्ण प्राणियों के हित में (अहेतु भाव से मात्र विश्वकल्याण के लिए बिना लोभ के, बिना मोह के) रत है, जिनका जीता हुआ मन निश्चलभाव से परमात्मा में ही एकमात्र स्थित है जो काम और क्रोध से रहित है, जिसे सब ओर (स्वयंमय तो अनिवार्य है ही अन्यथा द्वैतवादी को कैसा आनंद और कैसी विश्रांति और कैसी ब्रह्मानुभूति) शांत परब्रह्म ही नजर आता है मात्र वही अष्ट पाशों से मुक्त ब्रह्मवेत्ता है वही ब्रह्मज्ञानी है और वही परम शिवमयी, वही परम गुरु शेष तो कंचन और कामिनी से मदमस्त सकामी या अज्ञान की परतों से आच्छादित स्वयं भी पतित हैं और ओरो को भी अपनी दूषित भ्रममयी आज्ञा में बांधकर उनका जीवन भी खराब कर रहे हैं, जिसकी कामनायें अभी शेष हैं जिसका चित्त विश्रांत नहीं वो पहले एकांतवासी होकर निष्काम साधना या अपने शांतचित्त ब्रह्मवेत्ता गुरुओं की शरण में वर्षों तक (कम से कम द्वादश वर्षों तक ब्रह्मचर्य और पवित्रता के साथ सेवा शुश्रूषा करके) कृतकृत्य हों तब ही जीवन सफल होगा।

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाण मृषयः क्षीणकल्मषाः।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः।।
कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम्।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम्।।

इन काम और क्रोध आदि विकारों से युक्त व्यक्ति गुणातीत नहीं हो सकता, इस गुणातीतता के लिए श्रीमद्भगवद् गीता के अध्याय 14को समझना अनिवार्य है, जिसके अनुसार "जो सच्चिदानंदघन परमात्मा में एकीभाव से स्थित रहता है एवं उस स्थिति से विचलित नहीं होता, जो निरंतर आत्मभाव में स्थित सुख और दुःख को समान समझने वाला है, मिट्टी, पत्थर और स्वर्ण में समान भाव वाला (अर्थात् इनसे अनासक्त) ज्ञानी, प्रिय को पाकर हर्षित नहीं होता और अप्रिय में घृणात्मक दृष्टि नहीं रखता व प्रिय के वियोग भी जिसे विचलित नहीं करते, जो मान और अपमान में सम है, मित्र और वैरी के पक्ष में भी शांत और सम है तथा कर्तापन के अभिमान से रहित है वही पुरुष गुणातीत है।

त्रिगुणमयी माया से उत्पन्न हुये चारों अंतःकरण के सहित इंद्रियों का अपने अपने विषयों में विचरना ही गुणों का गुणों में बरतना है।

संसार में कितना सुख है इस बात को सभी जानते हैं, इस संसार में वह कितने दिनों तक भोगों को भोगकर सुखी हो सकता है, लगभग 284 युगों (71 चतुर्युगी) तक भोग भोगने वाला इंद्र भी जब तृप्त नहीं हो सकता तो तुम मात्र एक कलियुग के 60वर्षों में कितना भोग भोग लोगे... नहीं न फिर क्यों इतनी छोटी सी आयु में भोगों के पीछे पड़कर अरण्य रोदन कर रहे हो। आगे जो प्रसंग अनंत गीता का था अब पुनः हम उस पर आते हैं।

हे चित्रकेतो! सभी जीव अपने अपने कर्मों के फलों के कारण कभी स्त्री शरीर धारण करते हैं, कभी पुरुष तो कभी पशु पक्षी या जड़योनी, मानव योनी का चक्रण आते ही उस जीव को लाखों बार मनुष्य बनाया जाता है पर वह फिर भी वासना, मोह, लोभ, मद और मत्सरता में ही अपने जीवन को नष्ट कर देता है, वह संतों की संगति से दूर भागकर स्त्रियों के स्पर्श सुख के लिए भागता है और जन्म जन्मांतरो तक साथ निभाने के लिए उस स्त्री देह वाले जीव से वचन मांगता है जबकि वह जीव वास्तव में स्त्री है ही नहीं जो हर जन्म में अपने अपने कर्मों से अलग अलग रूपों में आभाषित हो रही है

(पुरंजन की भांति जो अगले जन्म में स्त्री बन कर पतिव्रता स्त्री का अभिनय भी निभा चुका है और स्त्री बनकर अपने को पतिव्रता के रूप में अति सौभाग्यशाली भी समझने लगा था.... अहो विधाता की ये माया तो देखो) यह सब कर्मों का फल मात्र है जो भोगने के लिए जीव के चित्त को दास बना लेता है पर इससे छुटकारा इतना कठिन भी नहीं।

उसी माया की भ्रांति से मुक्ति के लिए ही मैंने जप तप ध्यान, तीर्थादि सेवन, माता पिता की सेवा, अतिथि सेवा, संतों की आज्ञा, व्रत नियम और यम आदि की आज्ञा देकर जीव को मूल स्वरूप में पुनः आने का अवसर भी दिया है अन्यथा मैं क्यों किसी जीव को कठोर परिश्रम की आज्ञा दूँ और इसी कारण जब मानव को दृढ वैराग्य, भक्ति, मुमुक्षा अथवा भक्ति की पराकाष्ठा विज्ञान प्राप्त हो जाता है तो शास्त्र उसे सारे बंधनों से और ऋणों से मुक्त कर स्वतंत्र कर देते हैं।

286 युगों तक भोग भोगने वाला इंद्र भी भोगों को भोग भोगकर तृप्त नहीं होता तो कोई भी साधारण मानव 40–50 वर्ष के भोगों को भोगकर किस प्रकार भोगेच्छा को समाप्त कर सकेगा और कैसे जीतेन्द्रिय हो सकेगा ताकि सतत् रूप से अध्यात्म को अंगीकृत कर सके, जैसे अग्नि का घृत द्वारा अभिषेक से अग्नि बुझ नहीं सकती अपितु बढ़ती ही जाती है वैसे ही कामाग्नि देहभोग को सहस्त्रों बार भोगने के बाद भी शांत नहीं हो सकती।

इस कारण मनुष्य को क्षणभंगुर इंद्रियों के सुखों में लिप्त न होकर मात्र अपने परम लक्ष्य की सिद्धी के लिए ही सतत् प्रयास करना चाहिए।

यह सब जानकर इस लोक में देखे और परलोक के सुने हुये विषय भोगों से विवेकबुद्धि के द्वारा अपना पिण्ड छुड़ा लें और मेरा भक्त हो जाये।

दृष्टश्रुताभिर्मात्राभिर्निर्मुक्तः स्वेन तेजसा।
ज्ञानविज्ञानसन्तुष्टो मद्‌भक्तः पुरुषो भवेत्।।

राजन्! यदि तुम मुझ अनंत के इस उपदेश को सावधान होकर श्रद्धाभाव से धारण करोगे तो ज्ञान और विज्ञान से संपन्न होकर शीघ्र ही परम सिद्ध हो जाओगे।

त्वमेतच्–छ्रद्धया राजन्नप्रमत्तो वचो मम्।
ज्ञानविज्ञानसम्पन्नो धारयन्नाशु सिध्यसि।।

सुनकर चित्रकेतु अश्रू बहाते हुये उन सहस्त्रशीर्षा भगवान् की स्तुती करते हुये बोले—"हे अनंत आप संपूर्ण जगत के आत्मा हैं भगवन्! पृष्ठ जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय आपके लीला विलास मात्र हैं, विश्वनिर्माता ब्रह्मा भी आपके अंश के भी अंश हैं, फिर भी वे पृथक पृथक अपने को जगत का कर्ता मानकर झूठमूठ एक दूसरे से स्पर्धा करते रहते हैं, आपकी सीमा का किसी को भी पता नहीं इसलिए आपको अनंत कहते हैं, हे प्रभु! आपको कोटी कोटी नमन्।

हे नाथ! जो नरपशु केवल विषयभोग ही चाहते हैं, वे आपका भजन न करके आपके विभूति स्वरूप एक मंवंतर तक के शासक इंद्र, वरुण कुबेर आदि को ही इष्ट मानकर उनकी ही उपासना करते हैं, भगवन्! जैसे राजकुल का नाश होने पर उसके अनुयायिओं की जीविका भी जाती रहती है और उनका नाश हो जाता है वैसे ही आपको छोड़कर क्षुद्र उपास्यदेवों की भक्ति करने वाले नाश को ही प्राप्त होते हैं, हे नाथ! आपका मूल स्वरूप वास्तव में सत् चित् आनन्दघन है आप साक्षात् परब्रह्म हैं हे पुरुषोत्तम आपकी ही अध्यक्षता में सारे जगत की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होते हैं, कुयोगीजन भेददृष्टि के कारण आपका वास्तविक स्वरूप नहीं जान पाते मैं चित्रकेतु आपको बार बार नमस्कार करता हूँ, हे प्रभु ! हे गुरुवर! आपके द्वारा दिये गये इस ज्ञान से मेरे अज्ञान का पूर्णतः नाश हो चुका है **मैं पुनः आप सहस्त्रशीर्षा भगवान् को बार बार नमस्कार करता हूँ।**

नमस्तुभ्यं भगवते सकलजगत्—स्थिति लयोदयेशाय। दुरवसितात्मगतये कुयोगिनां भिदा परमहंसाय।। यं वै श्वसन्तमनु विश्वसृजः श्वसन्ति यं चेकितानमनु चित्तय उच्चकन्ति। भूमण्डलं सर्षपायति यस्य मूर्ध्नि तस्मै नमो भगवतेऽस्तु सहस्रमूर्ध्ने।।

इस प्रकार हे शिव! आप ही हरि और आप ही अनंत हो आप ही सहस्त्रशीर्षा मूर्ति धारण कर अपने अनन्य भक्तों के परम गुरु होकर अंधकार का छेदन करने वाले एक मात्र सर्वव्यापी सर्वेश्वर हो और सभी यथार्थ ज्ञाननिष्ठों की वाणी के माध्यम से शब्द रूप में प्रकट होते हो, प्रकट होकर ज्ञान देने वाले भवसागर के नाशक और परम कैवल्या का हेतु हो।

श्रीराम प्रभु ने हनुमान जी के दुख को दूर करने के लिये भी यह अद्वैत वचन वचन कहे थे ;क्योंकि रामजी ने कैलास से वीर हनुमान जी से एक

शिवलिंग मंगवायी थी परंतु मुहूर्त निकल जाने के कारण ब्राह्मणों की आज्ञा पर सीता मैया द्वारा पूजित बालूमयी शिवलिंग की स्थापना करवा देते हैं। इससे बहुत समय बाद वापस आने पर ....श्रीरामदूत नाराज हो जाते हैं। वहाँ कैलास पर इनको शिवलिंग नहीं मिली तो तपस्या करना पडा इस कारण देर हो गई। इनको

श्रीरामउवाच– वानर श्रेष्ठ! तत्त्वज्ञानमें बाधा उपस्थित करनेवाले द्वैतमयी शोकको अपने मनमें क्यों स्थान देते हो । तत्त्वज्ञानमें ही सदा स्थित रहो। यह आत्मा स्वयंप्रकाश है, तुम सदा आत्मा के इसी स्वरूपका चिन्तन करो।

हे वीर हनुमान! सब कुछ प्रभु रामेश्वरम् की इच्छा से ही हुआ है ऐसा जानकर शान्ति धारण करो।

देह आदि में ममता त्यागकर आत्मा के भाव में स्थित रहो।

सदा धर्मका आश्रय लो,

साधु पुरुषोंका सेवन करो,

सम्पूर्ण इन्द्रियोंका दमन करो।

पल प्रतिपल का सदुपयोग करो

दूसरों के दोषों की चर्चासे दूर रहो ।

शिव और क्षीरसागर के आनंद दायक विष्णु आदि देवताओंकी सदा पूजा करो।

सर्वदा सत्य बोलो,

'परम विश्रांति के लिए' शोक छोड़कर आत्मा और परमात्माकी एकताका अनुभव करो।

हे अंजनिपुत्र!

इस संसारमें भ्रम भी यथार्थकी भाँति प्रतीत होता है, कहीं शोभनमें अशोभनका भ्रम होता है और कहीं अशोभनमें शोभनका।

यह सब मोह के वैभवसे ही होता है। भ्रान्त मनुष्यों का विभिन्न विषयोंमें राग हो जाता है। राग और द्वेषके बलसे बँधकर वे धर्म और अधर्मके ही वशीभूत होते हैं तथा उन्हींके अनुसार देव, तिर्यक् मनुष्य आदि योनियोंमें तथा नरकोंमें पड़ते हैं।

चन्दन, अगर और कपूर आदि पदार्थ अत्यन्त शोभन हैं, परंतु जिसके स्पर्शसे ये भी मलरूप हो जाते हैं, वह शरीर सुख स्वरूप कैसे माना जा सकता है?

हे वायुनन्दन ! मुझसे परमार्थकी बात सुनो।

यह संसार एक गड्ढे के समान है। इसमें कुछ भी सुख नहीं।

यहाँ पहले तो जीवका जन्म होता है, तत्पश्चात् उसकी बाल्यावस्था रहती है, फिर वह जवान होता है। उसके बाद वह बुढ़ापा भोगता है। तदनन्तर मृत्युको प्राप्त होता है और मृत्यु तक ज्ञाननिष्ठ न हो पाया तो पुनः जन्मका कष्ट भोगता है।

*****

अध्याय–19

गुरुसेवा का फल ज्ञान

विनयफलं शुश्रूषा गुरुशुश्रूषाफलं श्रुतं ज्ञानम्।
ज्ञानस्य फलं विरतिः विरतिफलं चाश्रवनिरोधः।।

भावार्थः

विनय का फल सेवा है, गुरुसेवा का फल ज्ञान है, ज्ञान का फल विरक्ति (स्थायित्व) है,

और विरक्ति का फल आश्रवनिरोध (बंधनमुक्ति तथा मोक्ष) है।

किमत्र बहुनोक्तेन शास्त्रकोटि शतैरपि।
दुर्लभा चित्त विश्रान्तिः विना गुरुकृपां पराम् ।।

भावार्थः

बहुत कहने से क्या ? करोडों शास्त्रों से भी क्या ? चित्त की परम् शांति, गुरु के बिना मिलना दुर्लभ है।

*****

अध्याय–20
कंचन और कामिनी के बंधन से दूर

अभिन्नता ही परमपद है, अभिन्नता ही परमधाम है, अभिन्नता ही शाश्वत सत्य और सब कुछ है यही एकमात्र जानने के योग्य है परंतु पहले कंचन और कामिनी के बंधन से तो दूर हो जाओ। कैवल्या पद ही मनुष्य का लक्ष्य है अतः इस पद की प्राप्ति के लिए ही मानव को यथार्थ गुरु की खोज करके उनके महावाक्यों को आत्मसात कर लेना चाहिए। फिर चाहे इसके लिए आजीवन ब्रह्मचर्य पूर्वक रहो या जो गृहस्थ हैं वे 50–55 की आयु में घर छोड़कर संध्या, मनसा और तुलसी की भाँति किसी तीर्थ में जाकर परम तप करो ।

इस संसार के लोग आपको इंद्रजाल में उलझाने वाले हैं अतः सावधान सावधान सावधान। एक भी पल का दुरुपयोग न करो अन्यथा जीवन व्यर्थ हो जाएगा। देखिए एक अद्‌भुत और वीतरागी पुत्र का यथार्थ कथन–

शुकदेवजीने कहा– पिताजी!

1. बिना ईश्वर के दर्शन किये यह घर गृहस्थी मात्र माया का बंधन है,
2. अतः जो श्रीहरि के दर्शन करना चाहे उसे पहले तो जप तप और अखंड ब्रह्मचर्य का ही पालन करना चाहिए।
3. अज्ञानी मानवो को गृहस्थाश्रम सदा कष्ट देनेवाला है और महाकष्ट तो उस समय होता है जब उसे दर्शन तो हुए ही नहीं और पत्नी उसकी तमोगुण से युक्त व महत्वाकांक्षी हो।
4. अतः मैं परब्रह्म परमेश्वर के साक्षात्कार के लिए ही सतत् प्रयास करूँगा।
5. मेरे लिए प्रभु के साक्षात्कार का ध्येय ही इस अवधि में माता है वही पिता है। मैं इस गृहस्थ आश्रम को स्वीकार नहीं करूँगा।

6. जिसकी दैहिक वासना है वही इस आश्रम को स्वीकार करे पर मैं नहीं जाऊँगा। अथवा पहले कर्दम जी की भांति तपस्या करूंगा और दर्शन के बाद विचार।
7. शिकारमें जानवरों को फँसानेवाली फाँसीकी तुलना करनेवाले इस आश्रमसे सम्पूर्ण प्राणी निरन्तर बँधे रहते हैं।
8. पिताजी! परिवार के लिए धन की चिन्तामें आतुर मनुष्यों को सुख कहाँ दिखायी देता है? हाय हाय करके वह आजीवन विलाप करता रहता है मात्र परिवार के पेट के लिए ही उसका संघर्ष होता है,न चाहकर भी उसे संतों की सेवा व मध्याह्न की साधना अथवा मध्याह्न के 5 घंटे के स्वाध्याय से दूर रहना पड़ता है ऐसे में हे पिताजी! उस आश्रम में उसे मुमुक्षा की प्राप्ति हो जाये तब तो वह पिंजरे के तोते की भाँति पिजड़े में ही घूम घूमकर घुटता हुआ नष्ट हो जाता है।
9. गार्हस्थ्य की मुमुक्षा और गार्हस्थ्य का वैराग्य दुखदायक है बेचारा 55 तक स्वतंत्र नहीं हो पाता।
10. जो उसे संत सान्निध्य से दूर होने के कारण व हरि की सतत कथासुधा से दूर होने पर जल बिनु मत्स्य की भाँति पीड़ादायक सिद्ध होता है।
11. और इस आश्रम में धन ,पतिव्रता स्त्री व आज्ञाकारी संतान न हो तो यह आश्रम साक्षात श्मशान ही मानने योग्य है इसी कारण हे पिताजी! आपके गुरु सनत्कुमार जी व नारदजी भी अखंड संयमी हैं।
12. इस आश्रम में निर्धन प्राणी अत्यन्त लोभमें आकर अपनेमें ही मार–काट मचाया करते हैं। हे पूज्यनीय! इन्द्रको भी वैसा सुख नहीं मिलता, जैसा एक निःस्पृह भिक्षुकको प्राप्त होता है। संतत्व ही चित्त विश्रांत होने का मूल मंत्र है और मुक्ति के लिए किसी भी प्रकार के आश्रम की आवश्यकता है भी नही। उपनिषदों के अनुसार मुक्ति के लिए न तो नारी की आवश्यकता है न ही संतान की। मुक्ति के लिए तो अपरोक्ष ज्ञान ही अनिवार्य है।

13. त्रिलोकीकी संपूर्ण सम्पत्ति मिल जानेपर भी इस जगत्में दूसरा कोई वैसे आनन्दका अनुभव नहीं कर सकता। जैसा अनुभव एक एकांतवासी और जितेन्द्रिय भिक्षुक करता है ।
14. जिसको स्त्री के तन को भोगकी कामना हो वह उससे सुख ले, जिसकी कीर्ति की कामना है वह लोकेष्णा में लिप्त हो ;मुझे तो प्रभु और उनका परम धाम ही चाहिए। और कुछ भी नहीं चाहिए। वैसे मेरा विशुद्ध आत्मा ही सत् चित् और आनंद स्वरूप है इस आनंद का हेतु भला भार्या 'पत्नि' या वंश कहां से हो सकता है।
15. महाभाग! आपका मैं औरस पुत्र हूँ, यह बात जानते हुए भी सदा दुःख देनेवाले अत्यन्त अन्धकारपूर्ण इस संसारमें मुझे आप क्यों ढकेल रहे हैं?
16. पिताजी! मैं अब संसार नहीं चाहता और मेरी इच्छा तो अब पतिव्रता स्त्री की भी नहीं अब तो सदा के लिए समाधि में चिरकाल का शाश्वत सुख चाहता हूँ।
17. हे पिता श्री!भोगियों के लिए भी भोगों को भोगने से वासना का क्षय कभी भी नहीं होता अपितु भोगकर कुछ काल के बाद पुनः दैहिक वासना का उदय हो जाता है और कभी वासना में विघ्न उपस्थित हों तो क्रोध का जन्म तत्काल प्रभाव में ले लेता है अतः संपूर्ण दुःख देने वाले इस आश्रम में मेरी अभिरुचि तनिक भी नहीं।
18. अथवा आप उत्तम कन्या और अतुलनीय संपदा भी दें तो भी मैं अपने निजानंद का त्याग नहीं करूँगा।
19. जन्मके समय, बुढ़ापेमें, मृत्युकाल उपस्थित होनेपर तथा विष्ठा एवं मूत्रसे व्याप्त गर्भमें रहनेपर बारम्बार दुःख–ही दुःख तो भोगने पड़ते हैं। न चाहकर भी तृष्णा और लालचसे होनेवाला दुःख इससे भी अधिक कष्टप्रद है। मानद! मरणसे भी बढ़कर दुःख वह है, जो किसीसे याचना की जाय। और अधिक सदस्य हों तो भिक्षुक बनकर, सम्मान खोकर रो रोकर मांगना पडता है।
20. पिताजी! बड़ा परिवार हो जानेपर स्त्री, पुत्र और पौत्र आदि सभी परिजन दुःखकी पूर्तिके ही साधन होते हैं फिर अद्भुत सुख कहाँ है?

21. पिताजी! सुखी बनानेवाले योगशास्त्र एवं ज्ञानशास्त्र हैं। उन्हीं की व्याख्या मुझे सुनाइये। पर विवाह संबंध में कुछ भी नहीं । विस्तार के लिए श्रीमद् देवीभागवत पढे।
22. अनेकों कर्मकाण्ड हैं परंतु उनमें मेरा मन कभी नहीं लगता।
23. जो सकामी हैं या ग्रहस्थ वे चाहें तो कर्मकांड में लगे रहें और दुख दूर करने के लिए धन संपदा या तप से युक्त होकर सिद्धियाँ पाये। पर मुझे यह सब कुछ नही चाहिए।

त्याग दे हे नर!
काहे पड़ा है
बंधन में
जन्म जन्म के
भोगों से
फिर से तू
यहीं खड़ा है।
त्याग दे
क्षणिक सुख को
कुछ भी इसमें
सार नहीं
काहे रे तू
हठ पर अड़ा है।
काम है सभी का
एक मात्र शत्रु
जीतने वाला
इससे लड़ा है।
बांहे पसारे
क्यों खड़ा है।
अपनी पर
तू क्यों अड़ा है।
कितनी बार तुझे
यह अंशभूत समझा

समझा कर हार गया।
पर जिद्द पर तू
क्यों चड़ा है।
मान ले प्यारे
अब तो मेरी
आ मेरे मार्ग पर
हो जा निवृत्त
मेरे पास मुक्ति का
धन गड़ा है।
हर जन्म में भोगा तूने
जो भी कुछ
तुच्छ समझकर
छोड़ दे तू
देहसुख नहीं
ब्रह्मसुख बड़ा है ।
मान ले प्यारे
हे नर !
चार दिन की
चाँदनी
फिर अंधेरी रात
फिर भी
क्यों तू
गंदगी में पड़ा है ।

1. गर्भवास और पुनर्जन्म की पीड़ाओं से बढ़कर दूसरा कोई नरक नहीं है।
2. गर्भवाससे भयभीत होकर मुनिलोग कठिन तपस्यामें तत्पर हो जाते हैं।
3. सदा के लिए भवरोग से मुक्त होने या इष्ट की प्राप्ति के लिए वे राज्यभोग, धनभोग, स्त्रीभोग और उत्तम कीर्तिभोग का परित्याग

करके वन में तक चले जाते हैं या एकांत या गुरु की शरण में जानेकी प्रवृत्ति इसीलिये मनस्वी और महान विवेकी जनों के मनमें हो जाती है।

4. और आखिर में वे आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन और तप ध्यान आदि करके सदा के लिए मुक्त हो जाते हैं अथवा गार्हस्थ्य आश्रम न चाहते हुये भी प्रारब्ध वश प्राप्त हो जाये तो भी वे प्रायः जितेन्द्रिय ही होते हैं जो ग्रहस्थ की अवधि के बाद तो परिवार से ही पूर्णतः मुक्त हो जाते हैं और मात्र प्रभु को आत्म समर्पण कर देते हैं।

नोट–

यदि कोई 25 साल (ब्रह्मचर्य की अवधि) तक क्षणिक सुख के लिए एक बार भी
जानबूझकर अपने वीर्य का नाश कर चुका या स्त्रीभोग की चाह रखता है तो उसको ग्रहस्थ ही अनिवार्य है।
100 बात की एक बात यही है।
और शादीशुदा भी संतान न चाहकर हर चार पाँच दिनों में वीर्य नाश करता है तो वह बिन्दुनाशी वाला पाखंडी होता है भक्त नहीं अतः हर अविवाहित अपना परीक्षण कर ले यदि संयम न रख पाये तो
होशियार न बने। संन्यास के लिए पात्रता विकसित करे।
जनक जी ने देवीभागवत और नारद पुराण में भी यही कहा था कि

1. मुमुक्षु
2. वीतरागी
3. जितेन्द्रिय
4. ज्ञानी

इनको गार्हस्थ्य की बाध्यता नहीं।एक एक पल भी बिना शिवसुमिरन के बिताना ही महान हानि है। विद्या पढ़कर या धन मिलने पर अथवा विरासत में पाकर यदि मनुष्य दुराचारी व अहंकारी हो गया तो उसका सम्पूर्ण जीवन व्यर्थ है। श्रीचिंतामणि, श्रीशंकराचार्य जी तथा एक ज्ञानी ने बहुत ही गहराई से जीवन का सार बताया है अतः ध्यान से देखे।

भज गौरीशं
भज गौरीशं
गौरीशं भज मन्दमते।

हे मन्दबुद्धिवाले ! तू सदा गौरीश (शंकरभगवान्) का भजन कर। संसाररूप दुस्तर सागरसे पार लगानेवाले, भगवान् शिवके ही चरणका ध्यान कर, संसारसे उद्धार पानेका दूसरा कोई उपाय ही नहीं है यह सत्य जानय सदा शंकरके नामका ही गान किया कर। सदा गौरीपति भगवान् शिवको भज ।

स्त्री, सन्तान, क्षेत्र, धन, शरीर और गृह– ये सब अनित्य हैं, गर्भविकारके परिणामभूत इस संसारको सारहीन तथा स्वप्नवत् असत्य समझकरसबकी उपेक्षा कर दे हे मन्दमते! सदा गौरीपति भगवान् शिवको भज।

मलभूत संसारके रूपपर मोहित होनेसे पुनः संसारमें लौटना पड़ता है, फिर माताके गर्भसे उत्पत्ति होती हैं, अतः पुनः आशासे व्याकुल हुए अपने चित्तसे तू कह दे कि रे चित्त ! क्यों नहीं इस पेटकी चिन्ताको छोड़ता है ?

हे मन्दमते ! तू सदा गौरीपति भगवान् शिवको भज । अरे, यह सारा प्रपंच मायासे कल्पित इन्द्रजाल हैं, इसका विकार प्रत्यक्ष देखा गया है, इसे कदापि सत्य न जान, तत्त्वज्ञान हो जानेपर सब कुछ असार ही ठहरता है, इसलिये विषयोपभोगका विचार कभी न करय हे मन्दमते ! सदा गौरीपति भगवान् शिवको भज ।

जैसे रज्जुमें भ्रमसे सर्पका आरोप होता है, उसी प्रकार शुद्ध ब्रह्ममें जगत का आरोपमात्र है, यह माया–मोहका विकार असत्य है, इस बातको तू बारम्बार मनमें विचार हे मन्दमते! सदा गौरीपति भगवान् शिवको भज ।लोग करोड़ों यज्ञ करते हैं, स्नानार्थ गंगाजी जाते हैं, इन्द्रियोंको दमन करनेवाला योग करते हैं, परन्तु यह सबका सिद्धान्तमत है कि ज्ञानहीन जीव सैकड़ों जन्ममें भी मुक्त नहीं हो सकताय इसलिये हे मन्दमते! तू सदा गौरीपति भगवान् शिवका भजन कर ।जब सम्पूर्ण इन्द्रियाँ विषयोंसे निवृत्त होकर आत्मामें लीन हो जाती हैं उससमय ऐसा भान होने लगता है कि मैं ही वह परमात्मा हूँ, मैं शुद्ध ब्रह्म ही हूँ तथा इन पंचभूतोंसे पृथक् शुद्ध अद्वैत आनन्दस्वरूप हूँय हे मन्दमते ! सदा गौरीपति भगवान् शिवका भजन कर । हे शिवके सेवक! तू चिन्ता न कर, क्योंकि जो पुरुष इस गौरीशाष्टकस्तोत्रका शुद्ध भक्तिसे नित्य

पाठ करता है, वह ब्रह्ममें लीन हो जाता है, यह सत्य बात हैय इसलिये हे मन्दमते ! तू सदा गौरीपति भगवान् शिवको भज।

रात और दिन , प्रातःकाल और सायंकाल और शिशिर और वसन्त बार बार आते हैं यऔर जाते हैं इसी प्रकार कालकी लीला होती रहती है और आयु बीत जाती है, किन्तु आशारूपी वायु छोड़ती ही नहींय अतः हे मूढ ! निरन्तर प्रभु को ही भज।

बालक तो खेल–कूदमें आसक्त रहता है,

तरुण स्त्रीमें आसक्त हो जाता है और वृद्ध भी नाना प्रकारकी चिन्ताओंमें मग्न रहता है, परब्रह्ममें तो कोई संलग्न नहीं होता होगा भी क्यों जटिल प्रारब्ध और रति का घर्षण सुख नचा रहा है मूर्खों को । अब तो तू चिता के समीप जाने को है हे जीव!

अरे मूढ ! अब तो तू सदा प्रभु को भज।

मृत्युके समीप आने पर यह नारी तन मुक्ति नहीं देगा और तो और गंभीर रूप से बीमार हो गया तो थारी पत्नि भी तोसे दूर भागेगी। ये सब स्वस्थ तन की वासना के कीड़े मकोड़े हैं अतः तू तो प्रभु को ही भज।

इस संसारमें पुनः पुनः जन्म, पुनः पुनः मरण और बारंबार माताके गर्भमें रहना पड़ता है, अतः हे जीव इन सब झंझटो से मुक्ति के लिए

श्रीत्रिलोचन और श्रीकृष्ण ! को भज।

यह कंचन और काया की रंगीनियाँ मात्र छलावा और चार रात का सुख है। अतः अपने अनमोल समय को प्रभु की कथाओं में उपयोग कर और भज प्रभु को। इस दुस्तर और अपार संसारसे पार होने के लिये

जिसका चिंतन किया जाता है वह प्रभु है योनी नहीं इस प्रकार अरे मूढ ! तू सदा प्रभु को ही भज।

दिन रात , पक्ष, मास, अयन और वर्ष कितनी ही बार आये और गये तो भी लोग ईर्ष्या और आशाको नहीं छोड़ते, अतः अब चिता देख और अब तो छोड़।

अरे मूढ! 65–70 का हो गया !!!!

अवस्था ढलनेपर काम–विकार कैसा ?

जल सूखनेपर जलाशय कैसा ? तथा धन भी उतना नहीं बचा फिर कैसा परिवारिक सुख ये लोग अब तेरी सेवा नहीं करने वाले (मजबूरी हो

या न हो वे तेरी सेवा केवल इसी कारण करते थे हे मूर्ख! क्योंकि तू उनकी जेब भरता था उनकी कामनाएं पूरी करता था अब तू उनकी इच्छा पूरी नहीं कर पायेगा तो वे महत्वाकांक्षी क्यों तेरी चाकरी करेंगे। पतिव्रता और श्रवण सा सुत दुर्लभ है अतः तू इस फेरे में न पड़ और सात फेरे की मत सोच हे मूर्ख! प्रभु को ही भज। शिव को भज ।

25से 60 मात्र 35साल एक बार तो भगवान को अर्पित कर । बार बार हर जन्म में तू दैहिक सुख के चक्कर में हरि से दूर है अब ऐसा न कर । हे मूर्ख प्रभु को ही भज।

तत्व ज्ञान के लिए नारी की नहीं संतों की ओर देख । नारी से काम जागता है और संतों से राम ।

तत्त्वज्ञान होनेपर संसार कहाँ रह सकता है ? अतः हे मूढ ! सदा शिव को भज , हरि को भज, क्योंकि मृत्युके समीप आनेपर प्रभु ही बचायेंगे।
हे भोलेनाथ! हे हरिकेश, हे उपमन्यु ! हे वामदेव हे दधीची जी

1. हे हरि प्रिय श्री प्रह्लाद, हे श्रीनारद, पराशर, पुण्डरीक, व्यास, अम्बरीष, शुक, शौनक, भीष्म, दाल्भ्य, रुक्मांगद, अर्जुन, वसिष्ठ और विभीषण जी ! हे वाल्मीकि, सनक, सनन्दन, तरु, व्यास, वसिष्ठ, भृगु, जाबालि, जमदग्नि, कच्छ, जनक, गर्ग, अंगिरा, गौतम, मान्धाता, ऋतुपर्ण, पृथु, सगर, धन्यवाद देनेयोग्य दिलीप और नल, पुण्यात्मा युधिष्ठिर, ययाति और नहुष जी आप हमको प्रभु की भक्ति प्रदान कीजिए और सभी विकारों का नाश कीजिए हमें आपकी भाँति विशुद्ध कर दीजिए।
2. बहुत प्रयास करके, माता पिता का हृदय दुखाकर निम्नवर्ण की सुंदर चमडी वाली कन्या से प्रेम विवाह करके या विवाह में लाखों नष्ट करके क्लेश उठाकर जो पत्नी प्राप्त की गयी, वह यदि कटुवादिनी निकली या हमारे ही किसी पूर्व मित्र के साथ रतिभोग करने वाली निकल जाये तो वह कुलटा स्त्री भी व्यर्थ है।
3. कष्ट उठाकर जो कुआँ बनवाया गया, उसका पानी यदि खारा निकला तो वह भी निरर्थक है।
4. जितेन्द्रिय होने पर भी वृद्धावस्था में सेवा की अपेक्षा से विवाहोपरांत संतान पैदा करने के बाद जो कष्ट माता व पिता ने 30–40 साल

तक पुत्र के लिये सहन किया यदि कालांतर में बेटा ही सेवा न करे और भार्यालम्पट होकर पिता और माता को घर से निकलने पर विवश कर दे अथवा तपोनिष्ठ, ज्ञानी या संन्यासी भी न हो............. तो भी पुत्र पालन व्यर्थ ही हुआ।

प्रभु को छोडकर नाशवान मांस पिंड को प्राप्त करने की स्पृहा से जीवन व्यर्थ हो जाता है। कभी बवंडर के समान आँखों में धूल झोंक देनेवाली स्त्री (पराई नार धन या कीर्ति के लोभ से)उस पुरुष को गोद में सुला लेती है तो तत्काल रागान्ध–सा होकर सत्पुरुषों की मर्यादा का भी विचार नहीं करता, उस समय नेत्रों में रजोगुण की धूल भर जाने से बुद्धि ऐसी मलिन हो जाती है कि अपने कर्मों के साक्षी दिशाओं के देवताओं

और तिथियों या पर्व जयंतियों आदि को भी भुला देता है। कभी कभी उसके द्वारा कष्ट देने पर आत्महत्या को कंठ का आभूषण बना लेता है तो कभी कुछ पुण्य उदय हो जायें तो ईश्वर को पाने के लिए मर्कट वैराग्य जागृत हो जाता है और घर छोड़कर भाग जाता है पर काम पीड़ा होने पर या तो वापस लौटकर स्त्री को मनाता है या जल्दी जल्दी में संन्यास ले लिया हो तो वहाँ शिष्याओं के उपभोग हेतु प्रयास कर संन्यास आश्रम नष्ट करता है।

अर्थात् पूर्व काल के कुच मर्दन और योनी सेवन को न भूलने से वह (अपने–आप ही एकाध बार विषयों का मिथ्यात्व जान लेने पर भी) अनादिकाल से देह में आत्म बुद्धि औ भयंकर काम भाव रहने से पुनः विवेक बुद्धि नष्ट हो जाने के कारण, उन मरु मरीचिका तुल्य विषयों की ओर ही फिर दौड़ने लगता है।कभी प्रत्यक्ष शब्द करने वाले उल्लू के समान शत्रुओं की और परोक्ष रूप से बोलने वाले झींगुरों के समान राजा की अति कठोर एवं दिल को दहला देने वाली डरावनी डॉट–डपट से इसके कान और मन को बड़ी व्यथा होती है। कभी जिन बच्चों को उसने पैदा किया वे सेवा नहीं करते तो उनको ही शाप देकर नरक में शाप का दंड पाता है (विकारी मनुष्य की संतान पैदा केवल उसके कामभाव की दृढ़ता से होती है इसी कारण वह बेटी या बेटा भी भयंकर कामी या परगामी ही निकलते हैं जबकि अविकारी मनुष्य पत्नि के मासिकधर्म के बाद महाऋतुकाल के आने पर ही ब्रह्मा की सृष्टि के लिए

उत्तम तिथि में संभोग करके भक्तों या राष्ट्र सेवकों या जितेन्द्रिय संतानों को जन्म देते हैं वे योनीलम्पटता के कारण बच्चे पैदा नहीं करते अपितु ऋतुकाल के संभोग काल में स्त्री की योनी को यज्ञवेदी मानकर वीर्य रूपी बीज की आहुती देते है ताकि फल रूप में राम सा बालक प्रकट हो। जो संतान सेवा नहीं कर रहीं उनका कारण पिता और माता का कामभाव से संभोग मात्र है न कि विशेष प्रायोजन। अधिकांश घरों में तो दशमी की रात में या अक्षय तृतीयाको फेरा पड़ते हैं और एकादशी को या चतुर्थी की रात को ही कामाहुति दे दी जाती है फिर भले ही समझकर पत्नि इंकार करे और पति लोग काम के वशीभूत होकर मात्र यही कहते हैं कि चुप! मैं तेरा पति ही परमेश्वर हूँ और परमेश्वर को पाप कैसा.......फिर सोचो परिणाम में बिच्छु , केंकडे और जहरीले कीड़े ही पैदा होंगे न)

हाँ भाई अंशभूत शिव यह सच कहता है कि संयम ही सुखी जीवन का यथार्थ आधार है। ये काम विभाग भयंकर ही है जो सारा जीवन रुलाता है अतः इससे बचने के लिए कामारी महादेव की उसी रूप में पूजा करें जिस रूप से वह भस्म हुआ था या शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी को कामदेव और रति की पूजा करें। या अनन्य भक्तिभाव अथवा ज्ञान भाव में रत रहें । अन्यथा मात्र एक बार का बीजक्षय आपको नष्ट कर सकता है। नारी की योनी व स्तनों जिसमें मांसपिण्ड मात्र भरा है उसी से आकर्षण खत्म नहीं हुआ तो पराविज्ञान का परमज्ञान कैसे प्रकट होगा।

खैर.............. कहाँ थे और कहाँ आ गए। अब सुनें–

पूर्व पुण्य क्षीण हो जाने पर यह जीव जीवित ही मुर्दे के समान हो जाता है तथा जिसका धन मृत्यु पर इस लोक और परलोक दोनों के ही काम में नहीं आता वह कंजूस तो सच में जीते हुए भी मुर्दे के समान हैं। अतः धन हो तो गाय और गरीब लोगों या मंदिरों के जीर्णोद्धार अथवा संत कार्य में लगायें।

कल का क्या भरोसा। कहीं ऐसा न हो कि बैंक बैलेंस देखते देखते ही शवयात्रा निकल जाये। जिस धन को कमाया उसका 10 प्रतिशत परोपकार के लिए ही प्रयोग करना चाहिए शेष सदस्यों का भरण–पोषण 90 प्रतिशत धन

से करें और ऐसा भी नहीं कि छिपा छिपाकर कहीँ रखते जाओ और बाद में वह किसी काम का न रहे।

हर बार मनुष्य कृपणता के कारण भी दुख पाता है और कभी किसी जन्म में वह अन्य कृपण पुरुषों का आश्रय लेता है। कभी असत् पुरुषों के संग से बुद्धि बिगड़ जाने के कारण सूखी नदी में गिरकर दुःखी होने के समान इस लोक और परलोक में दुःख देने वाले पाखण्ड में फँस जाता है। कभी पाप फल से या दूसरों को सताने से उसे अन्न भी नहीं मिलता, तब वह अपने सगे पिता–पुत्रों को अथवा पिता या पुत्र आदि का एक तिनका भी जिनके पास देखता है, उनको फाड़ खाने के लिये तैयार हो जाता है। कभी दावानल के समान प्रिय विषयों से शून्य एवं परिणाम में दुःखमय घर में पहुँचता है तो वहाँ इष्टजनों के वियोगादि से उसके शोक की आग भड़क उठती है उससे सन्तप्त होकर वह बहुत ही खिन्न होने लगता है। यह सब सत्य बताने के लिए जड़ भरत जी के वचन व सार हम बता रहे हैं।

आगे जड़ताभाव वाले जड़ भरत जी ने कहा कि–राजन्! इस प्रवृत्यात्मक मार्ग में पूर्वोक्त विघ्नों के अतिरिक्त सुख–दुःख, राग–द्वेष, भय, अभिमान, प्रमाद, उन्माद, शोक, मोह, लोभ, मात्सय, ईर्ष्या, अपमान, क्षुधा पिपासा, आधि–व्याधि, जन्म, जरा और मृत्यु आदि और भी अनेकों विघ्न हैं।और संपूर्ण दुखों के दलदल का कारण मात्र स्त्री के शरीर को भोगने की अभिलाषा है (शंकराचार्य जी ने भी बृहदारण्यक उपनिषद के भाष्य में अध्याय 3 के ब्राह्मण 9 के श्लोक में यही लिखा है कि काम ही पुरुष का नाश कर डालता है स्त्री प्रसंग की अभिलाषा ही काम है अन्य कोई भी काम नहीं।

काममय पुरुष का देवता मात्र स्त्री है यदि वह स्त्री के प्रति देवी भाव रखे तो उस स्त्री से काम का उद्दीपन नहीं होगा जिससे उसका पतन नहीं होगा पर वह शंकराचार्यांश की सुनता ही नहीं और बार बार यही कहता है (जो रंभा ने शुकदेव से कहा था) कि यदि जीवन में स्त्री के सौन्दर्य का पान नहीं किया तो किया ही क्या अतः परिणाम चाहे जो भी हो पर सुंदर कटिप्रदेश और सुन्दर स्तनों के भार से युक्त बेला और चंपा सी सुगंधित व जिसके बिम्बोष्ठ का जिस नर ने सेवन नही किया उसका जीवन व्यर्थ ही गया.........और भी बहुत कुछ कह देता है पर मूर्खानंद परिणाम की चिंता नहीं करता लेकिन उसे फिर परिणाम से कौन बच पाता है पतंगा शायद जलने के

लिए ही जन्म लेता है पर किसी पुण्य कर्म से यदि शुकदेव मिल जाये (और बात मान जाये) तो ही बच पाता है अथवा गीता के अध्याय 5.22 से भी वह सुरक्षित हो सकता है अथवा राम चरित मानस के नारद–राम संवाद से भी वह बच जाता है वशर्तें मात्र दोहा चौपाई के आदेश को मानें तो ही (राम चरित मानस या भागवत रट्टा लगाने के लिए या पारायण के लिए प्रकट नहीं हुई अपितु उस समय प्रकट हुई है जब तुलसीदास जी ने आजीवन ब्रह्मचर्य का संकल्प ले लिया था और उनके हृदय में मात्र श्रीराम बस चुके थे तो सोचो भोगी मनुष्य उसके मर्म को कैसे समझ सकता है पर प्रयास तो करना ही चाहिए भाई। इस विघ्न बहुल मार्ग में इस प्रकार भटकता हुआ यह जीव किसी समय कामभाव के कारण देवमाया रूपिणी स्त्री का भूत (स्त्री प्रसंग की अभिलाषा होने पर हर स्त्री देवमाया का ही कार्य करती है और देवीभाव होने पर या पुण्योदय होने पर वह दुर्गा बनकर बंधन से मुक्त कर देती है) अर्थात काम का भूत सवार होने पर या परिणाम को विस्मृत करने पर वह स्त्री के बाहुपाश में पड़कर उसके अंगों का काम भाव से स्पर्श करके तत्काल विवेकहीन हो जाता है तब उसी की संपूर्ण कामनाओं की पूर्ति के लिये विहार..... भवन गाड़ी बंगला आदि बनवाने की चिन्ता में ग्रस्त रहने लगता है तथा उसी के आश्रित रहने वाले पुत्र पुत्री और अन्यान्य उस पत्नि की बहनों (सालियों)या पराई स्त्रियों के मीठे–मीठे बोल, चितवन और चेष्टाओं में आसक्त होकर उन्हीं में चित्त फँस जाने से यह इन्द्रियों का दास, वह..... बेचारा कामी मात्र योनी सेवी अपार अन्धकारमय नरकों में गिरता है। वह कामी अपने दाम्पत्य सुख की चरमता पर हरि को भूल जाता है क्योंकि काम है ही ऐसा भयंकर। इसी कारण वह काम एक बार रुद्राग्नि में भस्म किया जा चुका है। जितेन्द्रिय देवों में हनुमान जी ,सनत्कुमार ,सनक आदि जनलोक के प्रभु और नारद–देवल आदि धन्य हैं।

प्रश्न–पार्वती – हे स्वामी ! क्या गुरु से मंत्र लेकर उनको ही परब्रह्म मानकर शिष्य मुक्त हो सकता है ?

महारुद्र उवाच– हे पार्वती ! हरेक मंत्रदाता ब्रह्मनिष्ठ ही हो ऐसा तो मैने नहीं कहा यदि कालनेमि मेरे अंश हनुमान को मंत्र दे देता तो क्या हनुमान उसको

परब्रह्म मानकर उसी का सेवन करते और क्या वह ऐसा करके श्रीराम का कार्य सिद्ध कर लेते? हे शिवे ! इस विषय के लिए तुमको गुरु के प्रकारों को जानना होगा।

इस विश्व में ऐसे भी पापी हैं जो पेट भरने के लिए अथवा शिष्यों से धन हड़पने के लिए मंत्र की दीक्षा देना आरंभ कर देते हैं (गरुड पुराण के अनुसार ऐसा निषिद्ध गुरु होता है जो स्वयं ही कंचन और काम से युक्त होने से शिष्य को वीतरागी अथवा अपरोक्ष ज्ञाननिष्ठ नहीं बना पाने से अथवा यथार्थ संभाषण न करने से आचार्यत्व से हीन होने से अगले जन्म में बैल बनता है तो सोचो शिष्य भी अज्ञान की अवस्था में ही मर जाने से मुक्त कहाँ होगा बिना जीवन्मुक्त हुये परमधाम अथवा कैवल्यापद नहीं मिलता , जो इसी भूमि पर मुक्त हो चुका वही देहांत के बाद तत्काल ब्रह्मलीन होता है अन्यथा वह शिष्य भी अष्ट पाशों के कारण पुनः जन्म लेता ही है इनके गुरु भी निषिद्ध होने से पाखंडी व लोभी ही हैं) पर यथार्थ पराविज्ञान से उनका कोई भी संबंध नहीं होता इसी कारण मैने गुरुओं का भी वर्गीकरण किया है। (जो गुरुगीता में है)

मंत्र देने वाला भी यदि मंत्र का पुरश्चरण कर चुका है पर स्थितप्रज्ञ नहीं है, तद्भावित नहीं है तो भी मैने उसे बोधक गुरु की संज्ञा मात्र दी है वह भी परमपद नहीं दे सकता। ऐसे गुरु की सेवा भी तब तक ही की जाए जब तक कि कोई ज्ञाननिष्ठ पुरुष प्राप्त नहीं हो जाता, इसके विपरीत जो मूढ़ गुरु ने अपने ही मंत्रदाता गुरु के मंत्र का पुरश्चरण नहीं किया या जो संध्यापूत नहीं अथवा गायत्री का पुरश्चरण नहीं किया वह गुरु तो आज ही त्याग देना चाहिए और अन्य गुरु खोजना चाहिए। तथा यदि वह बगुले की तरह ठगने वाला हो, शाप का भय दिखाने वाला हो, अज्ञानी हो, उग्र हो, कामी, स्त्रीलम्पट हो तो भी उसका तत्काल त्याग कर देना चाहिए।

(●वर्जयेत्तान गुरुन् दूरे धीरानेव समाश्रयेत् ●)

प्रिये! (सुनों निम्नलिखित अवगुण जिनमें हों उस गुरु को साधारण मनुष्य ही मानें और त्याग दें वह परम गुरु नहीं होता)

पाखण्डिनः पापरता नास्तिका भेदबुद्धयः ।
स्त्रीलम्पटा दुराचाराः कृतघ्ना बकवृत्तयः ॥

कर्मभ्रष्टाः क्षमानष्टाः निन्द्यतर्कैश्च वादिनः ।
कामिनःक्रोधिनश्चैव हिंस्राश्चंडाः शठास्तथा ॥

ज्ञानलुप्ता न कर्तव्या महापापास्तथा प्रिये ।
एभ्यो भिन्नो गुरुः सेव्य एकभक्त्या विचार्य च ॥

*****

अध्याय–21

परम सुख अभिन्न सुख ही

अभिन्नता ही सूक्ष्म और परमसत्य का ज्ञान है जिसे अध्यात्म में विज्ञान की उपमा दी गई है इस विज्ञान की प्राप्ति ही परमतत्व की प्राप्ति है इस विज्ञान को ही परमतत्व कहा है शेष कोई भी परम नहीं और यही शिवत्व है, यही शिव तत्व है जिसके उदय होने पर अयमात्मा ब्रह्म की सत्यता का बोध होकर वह वही हो जाता है जो सत् चित् आनन्द है। शिव से अभिन्न भाव और तद्रूपता को प्राप्त कोई भी जीवात्मा अपने अज्ञान रूपी कल्मषों के समूल नाश के कारण साक्षात् शिव स्वरूप ही हो जाता है और यही अभिन्नता ही जीवंतमुक्ती, कैवल्या मुक्ति, अद्वैत सिद्धि, अपरोक्ष अनुभूति आदि नाम से संबोधित की जाती है।

आरंभ में परोक्ष ज्ञान ही प्राप्त होता है जो अभ्यास और चिंतन से अपरोक्ष होने में देर नहीं करता, पर इसके लिए उसे ब्रह्मवेत्ता की संनिधि, साथ में समयानुसार उपनिषदों " जो वेदों का अंतिम भाग ही" उपनिषदों के महत्वपूर्ण सूत्रों से रचित वेदान्त दर्शन का गहराई से चिंतन, और परम अवधूतों (अष्टावक्र, अवधूत दत्तात्रेय) की अमृत वाणी (अवधूत गीता, अष्टावक्र गीता, रुद्रगीता, शिवगीता) के भेद रहित महावाक्यों का आत्मसात अनिवार्य है। यह ज्ञाननिष्ठ पूर्णतः निस्पृही, असंग, अनासक्त और अभेदता की ही मूर्ति है पर इस शिवत्व प्राप्त ब्रह्मविद् को वज्रसूचिक उपनिषद में ब्राह्मण संज्ञा भी दी गई है जिसका संबंध न तो वर्ण से है न ही चारो आश्रमों से। पर यथार्थ में वो ब्राह्मण ,ब्रह्मचारी ,ब्रह्मविद् नाम से भी परे अनाम ही है,

एक ही है, पूर्ण ही है और इसे ही योगवाशिष्ठ में ज्ञान की सातवीं भूमिका पर स्थित पूर्ण शब्द की संज्ञा से अलंकृत किया गया है। यह सदा के लिये भवरोग से मुक्त ही है और देहांत के बाद वो निर्वाण को प्राप्त हो जाता है। सत्य केवल यही एकत्व है शेष अविद्या और माया के अंतर्गत ब्रह्म सर्वमय है उसी को मानव अलग अलग रूपों के कारण अलग अलग संज्ञा

देता है पर मेरा इष्ट बड़ा या तेरा छोटा मानने वाला मुक्त नहीं हो पाता क्योंकि वहाँ द्वैत भाव से ही हीनता या प्रभुता का लक्षण प्रकट होता है अभिन्नता सिद्ध होने के बाद नहीं। अद्वैत भाव के बाद कुछ भी शेष नहीं रह जाता क्रियायोग और शास्त्रों की आज्ञा भी उस ज्ञाननिष्ठ के लिए शेष नहीं रह जाती पर आरंभिककाल में मूर्तिपजा अनिवार्य ही समझें।

अवधूत कैसा होता है वह क्या करता है ?

क्या तुरीयातीत अवधूत क्षौर कर्म करता है ?

वह अपने आपको चारों वर्णों का क्यों नहीं मानता ?

क्या वह कटिसूत्र और दण्ड कमण्डलु आदि पहनता है ?

इस संदर्भ में ब्रह्मा जी ने प्रश्न किये। उसी संदर्भ में प्रभु नारायण ने जो भी कहा यह उपनिषद उसी वाक्यों का सम्मिलित रूप है। आईये मूल उपनिषद पर आते हैं।

(एक बार) समस्त लोकों के पितामह ब्रह्मा ने अपने पिता आदिनारायण के निकट जाकर उनसे पूछा–भगवन् तुरीयातीत अवधूत का मार्ग कौन सा है और उसकी कैसी स्थिति होती है?

भगवान् नारायण ने उनसे कहा–अवधूत पथ पर चलने वाले इस लोक में अति दुर्लभ हैं, वे बहुत नहीं होते, यदि एकाध होता भी है, तो वह नित्य पवित्र, वैराग्य मूर्ति, ज्ञानाकार और वेद पुरुष होता है (एक भी अवधूत के दर्शन साक्षात् ब्रह्म के ही दर्शन हैं , शिव गीता के अनुसार एक अवधूत ज्ञानाकार को मात्र आधा ग्रास अन्न खिलाने पर ही वह फल मिलता है जितना फल सहस्र कोटी दक्ष कर्मकांडी ब्राह्मणों को 56–56 भोग खिलाकर 100–100 स्वर्ण मुद्रा देने पर भी नहीं मिलता । यह सब ज्ञान विज्ञान की उच्च स्तरीय भूमिका का प्रताप है) ऐसा विद्वज्जन मानते हैं। ऐसा महापुरुष अपने चित्त को मुझ में अवस्थित रखता है और मैं उसी में स्थित होता हूँ। वह प्रारम्भ में कुटीचक होता है, तत्पश्चात् बहूदकत्व प्राप्त करके हंसत्व का अवलम्बन लेता है। हंस होकर फिर परमहंस बनता है। वह निजस्वरूप के अनुसन्धान द्वारा समस्त प्रपञ्चों के रहस्य को जानकर, दण्ड, कमण्डलु, कटिसूत्र, कौपीन, आच्छादन वस्त्र और विधिपूर्वक की जाने वाली नित्य क्रियाओं को जल में विसर्जित कर देता है और दिगम्बर होकर जीर्ण वल्कल

और अजिन (मृग) चर्म के भी परिग्रह को छोड़कर समस्त प्रकार का निषेध करके (अमन्त्रवत् होकर), क्षौर कर्म (केश–कर्तन–दाढ़ी बाल आदि बनवाने), अभ्यङ्ग स्नान (उबटन लगाकर स्नान करने) तथा ऊर्ध्व पुण्ड्र (मस्तक पर तिलक) लगाने को भी छोड़कर, वैदिक और लौकिक कर्मों का उपसंहार करके, सर्वत्र पुण्य और अपुण्य को भी त्याग कर ज्ञान और अज्ञान को भी छोड़ देता है। वह शीत–उष्ण (सर्दी–गर्मी), सुख–दुःख, मान–अपमान को भी जीत लेता है। वह शरीर की तीनों वासनाओं सहित निन्दा–अनिन्दा, गर्व, मत्सर, दम्भ, दर्प,इच्छा, द्वेष, क्रोध, लोभ, मोह, हर्ष, अमर्ष, असूया और आत्म संरक्षण आदि को (भावाग्नि में) जलाकर, अपनी काया को मुर्दे की तरह देखता हुआ, प्रयत्न और नियम के बिना लाभ और हानि को समान करके, गोवृत्ति से (गौ की तरह) जो कुछ मिल गया, उसी में सन्तोष करके प्राण धारण किए रहता है। वह सब प्रकार से लालचरहित होकर समस्त विद्याओं और पाण्डित्य को भस्मीभूत करके, अपने वास्तविक स्वरूप को छिपाते हुए, छोटे–बड़े के भाव को (बाह्य व्यवहार में) पूर्ववत् (अज्ञानी के समान) बनाये रखता है। सर्वोत्कृष्ट सर्वात्मक रूप अद्वैत की कल्पना करके उसका यह मानना होता है कि मेरे अतिरिक्त कुछ और नहीं है। वह देव रहस्य (गुह्य) आदि धन को अपने अन्दर समेट करके (अर्थात् देव रहस्यों को अपने में गोपनीय करके) ने दुःख में उद्विग्न होता है और न सुख में प्रसन्न होता है। वह राग में स्पृहा नहीं रखता और न शुभ–अशुभ किसी बात से स्नेह रखता है। उसकी समस्त इन्द्रियाँ उपराम को प्राप्त हो जाती हैं। वह अपने पूर्व के आश्रम, विद्या, धर्म, प्रभाव का स्मरण नहीं करता और वर्णाश्रम आचार की परित्याग कर देता है। दिन और रात के प्रति समान भाव रखने के कारण वह कभी सोता नहीं (अर्थात् सदैव जाग्रत् रहकर सावधान रहता है)। वह सतत सर्वत्र विचरणशील रहता है। उसका शरीर मात्र अवशिष्ट रहता है (अर्थात् वह सदैव ब्रह्मरूप होकर शरीर में रहता है और शरीर द्वारा व्यवहार करता है)। जलस्थल (सरोवर–कुप आदि) उसका कमण्डलु होता है। वह सदा अनुन्मत्त रहता है, किन्तु बाहर से बालक,उन्मत्त और पिशाच आदि के समान एकाकी विचरण करता हुआ किसी से सम्भाषण नहीं करता और अपने वास्तविक रूप के ध्यान द्वारा निरालम्ब का अवलम्बन लेकर अपनी आत्मनिष्ठा की अनुकूलता से (अर्थात् आत्मनिष्ठ होकर) सब को भुला देता है। इस प्रकार से जो

तुरीयातीत अवधूत के वेश वाला सतत अद्वैत निष्ठा परायण होकर 'प्रणव' भाव में निमग्न होकर शरीर का परित्याग करता है, वह कृतकृत्य हो जाता है, यही इस उपनिषद् का प्रतिपादन है।।

*****

अध्याय–22
भोगने के लिए सारा संसार

सुन्दर चमड़ी को भोगने के लिए सारा संसार पीछे पड़ा है पर यथार्थ नहीं दिखता कि वह वास्तव में कंकाल व गंदगी को ही भोग रहे हैं। परम आनंद का अमृतरस जिसे नहीं मिला वही गंदे तरल या तुच्छ पदार्थ का पान करता है। जिसे 56 भोग नहीं मिले वही सड़ी वस्तु को ही चरता है।

आत्मा ब्रह्म ही है (अयमात्मा ब्रह्म ही सत्य है।) अतः सभी ब्रह्मानंद में रत रहो।कोई भी नर नारी इस आनंद के कारक नहीं। किसी को भी भोगने से आत्मसुख नहीं मिलता। अतः शाश्वत सत्य को अपने अंदर ही पाओ। यही गुरुज्ञान ह। सुख के लिए किसी को माध्यम मत बनाओ, माध्यम नष्ट हो गया तो दुख होगा ही। तुम सत्यम् शिवम् और सुन्दरम् ही हो तुम ही परम प्रकाशित परम तत्व हो।

*****

अध्याय–23

धनवान बनें या गुरु सेवा से यथार्थ पराविज्ञानी

"अधिक धन आये ताकि अधिक दान करूँ।

यह न सोचे।"

जिनके पास धन नहीं वे प्रभु नाम से ही सारा पुण्य कमा लेते हैं।

पर पुण्य भी बंधन हैं।

और भगवान सबको दो वक्त की रोटी देंगे ही और जिनके नसीब में जितना है उतना उनको मिल ही जायेगा।

लायकों को ईश्वर दे ही देंगे।

और नालायको को आप दोगे तो वह धन नष्ट होगा और गलत जगह जायेगा।

अतः जो धनाढ्य है या ठीक ठाक। उनको ही धन का दान करने दो।

आप शान्ति से भजन में मन लगाओ।

जो अनिवार्य है वह सब आपको भी मिलेगा।

(माध्यम चाहे जो भी हो।)

आप साधु महात्मा परमगुरु आदि से सत्संग सुनकर प्रभु के अभिन्न भाव में डूब जाओ। सकाम अनुष्ठान में भी समय नष्ट न करो। सिद्धियों से प्रसिद्ध होने का भी मत सोचो। अन्यथा ध्रुव की भांति पुनर्जन्म हो जायेगा पूर्व जन्म में ध्रुव की भी यही कामना हो गई थी। जो इस जन्म में ध्रुव को विघ्न जान पड़ी। अतः निष्काम भाव से गुरु सेवा , संत सेवा , स्वाध्याय आदि से शीघ्र कल्याण पायें अपरोक्ष ज्ञाननिष्ठ बनने के लिए उनके महावाक्यों को श्रवण करें और आत्मसात। अन्यथा सब कुछ द्वैत प्रपंच और माया का खेल जानें। नाम जप और मंत्र के पुरश्चरण से भी अधिक आप अवधूत गीता या योगवसिष्ठ जैसे शास्त्रों के स्वाध्याय को या इस विषय वस्तु के श्रवण को

समझें। व्रत–उपवास भले ही न कर पाएं पर महावाक्यों का अनुसंधान और स्व पर फोकस अनिवार्य समझे।

व्रत–उपवास या पूजा तो एक मन्वन्तर या एक दो कल्प तक ईश्वर का लोक ही दे पायेंगे पर गुरुवाणी से सोऽहम् में स्थित होने पर आप साक्षात् ब्रह्मस्वरूप श्री कृष्ण और शिव ही हो जाओगे।

जो जो साधु संत अति धनाढ्य हैं उनके धन से भी गरीबी नहीं मिट रही। आप कैसे मिटा दोगे।

जनता इतनी अधिक हो गई है साधु का 100 करोड़ भी हर गरीब आदमी की दरिद्रता नहीं मिटा सकती इस कारण बस वे धनाढ्य साधु भी अपनी उत्तम योजनाओं में ही उस धन का सदुपयोग कर रहे हैं और करना भी चाहिए।

*****

अध्याय–24

गुरु कृपा से संन्यास

वैराग्यवान नर को ही संन्यास का अधिकारी है। आसक्त को नहीं। आसक्त नर को घर के त्याग से ग्रहों का दण्ड भोगना ही पडता है..........क्यों ....आप समझ ही गए होंगे। अनासक्त ही संन्यास धर्म का पालन कर पाता है कंचन व कामिनी का गुलाम नही। अनासक्त व अपने गुरु का परम सेवक ही अपरोक्ष ज्ञान पा लेता है। हालांकि कुछ गृहस्थ भी संन्यासी जैसे ही होते हैं पर हम यहां गृहहीन संन्यासियों का वर्णन कर रहे हैं।

साधारण संन्यासी कुटिचक्र होता है जो मंत्रादि की साधना भी करता रहता है। ये शिखा और यज्ञोपवीत (सूत्र) भी धारण करता है त्रिदण्ड, कमण्डलु, कौपीन (लंगोटी) और कन्था (कथरी) धारण करता है । झोली और पात्र भी रखता है। ये मिट्टी खोदने वाला खनती भी अपने पास रखते हैं। ये पराविज्ञानी नहीं होते अर्थात अपरोक्ष ज्ञाननिष्ठ नहीं होते। ये श्वेत ऊर्ध्व पुण्ड्र लगाते हैं।

ये गुरु के अलावा माता पिता की भी सेवा कर सकते हैं।

बहुदक संन्यासी – जनेऊ, चोटी (शिखा), दण्ड कमण्डलु लंगोटी, और कथरी के अलावा त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं।ये उत्तम सज्जन लोगों से ही आठ ग्रास भोजन ग्रहण करते हैं । एक ग्रास उतना ही होता है जो शान्ति से मुख में रखकर चबा सकें न कि बड़ा कौर।

हंस नमक भिक्षु

–हंस नमक भिक्षु किसी गांव में एक रात, नगर में पाँच रात और तीर्थ क्षेत्र में अधिक से अधिक सात रात निवास कर सकते हैं वे अपने आपमें ही मगन रहते हैं और स्वागत सत्कार से दूर रहते हैं। ये जटा जूट धारण करते हैं। ये

एक जगह अड़के नहीं बैठते इनको भोजन या आश्रम की सुविधाओं से कोई संबंध नहीं होता। ये 32से 48 ग्रास खा खाकर पेटूराम नहीं बनते। पेटूराम लोगों को अपने स्वास्थ्य की अधिक परवाह होती है अतः वे हंस नहीं होते । भिक्षुक उपनिषद के अनुसार इनका आहार गोमूत्र और गोबर होता है। पर नारद परिव्राजक उपनिषद के अनुसार ये मधुकरी (भिक्षा) से ही शरीर का पोषण करते हैं।

ये तीनों क्रमशः आश्रम वाले होते हैं अर्थात गृहस्थ जीवन काटकर फिर वानप्रस्थ भी स्वीकार करते हैं तदोपरान्त ही अपनी अवस्था के अनुसार कुटिचक्र या बहुदक अथवा हंस हो पाते हैं।

परम हंस –

परम हंस नामक संन्यासी शिखा और यज्ञोपवीत धारण नहीं करते ये मात्र 5 घरों से अन्न पाकर एक ही बार पाते हैं दूसरे समय भोजन नहीं पाते। ये बांस का दण्ड पास में रखते हैं। ये सम्पूर्ण अंगों में भस्म धारण करते हैं यही इनका वस्त्र है पर ये दिगम्बर हो भी सकते हैं नहीं भी एक लंगोटी और एक चादर अपने शरीर पर ओढ़ कर भी रख सकते हैं। परम हंस नामक संन्यासी वृक्ष के मूल, शून्य ग्रह अथवा श्मशान में रहते हैं। यज्ञशाला, नदीतट, गड्ढा, झोंपड़ी में भी रह सकते हैं।

इनको लाभ या अलाभ से कोई संबंध नहीं होता। इनको कोई स्वर्ण भी दे तो उसे मिट्टी या नाशवान समझकर स्वीकार नहीं करते । इनको शुद्ध द्वैत या अशुद्ध द्वैत से कोई भी मतलब नहीं होता ये पूर्णतः आत्माराम होते हैं ये ब्रह्म से अभिन्न होते हैं किसी भी नियम या कर्मकांड आदि से इनको कुछ भी संबध नहीं होता ये सदा ब्रह्मानंद से युक्त होते हैं। ये चाहे चाण्डाल के घर प्राण त्याग करें या काशी या मथुरा में ये मुक्त ही होने से परम निर्वाण को ही पाते हैं।

जड़भरत, श्वेतकेतु व शुकदेव लीलावश परमहंस हैं। और ये सभी वर्णों से भिक्षा ले सकते हैं इनको ब्रह्म के सिवाय कुछ नहीं दिखता स्वयं भी सर्वमय भी। मात्र देह के लिए ही ये किसी से भी भिक्षा ले सकते हैं।

तुरीयातीत संन्यासी – यह कभी किसी से कुछ भी नहीं मांगते। यदि स्वेच्छापूर्वक कोई दे दे तो ग्रहण कर सकता है अथवा ये देह के लिए मात्र तीन घरों से अन्नाहार मांग भी सकते हैं पर धन, वस्त्र और वस्तु नहीं मांगते। यह नग्न होते हैं।

अवधूत संन्यासी – ये अजगर वृत्ति से जीवित रहते हैं ये बंधन को मिथ्या मानते हैं इनके अनुसार तुमको किसी ने बंधन में नहीं डाला तुम तो मुक्त ही हो अपने अज्ञान के कारण ही तुम मुक्ति चाहते हो वास्तव में जो मुक्त है उसे किस प्रकार की मुक्ति चाहिए बस अज्ञान का नाश कर ले यही मुक्ति है। ये मंत्र और उपासना से रहित सोऽहम् भाव में (इससे भी अतीत) स्थित होते हैं ।

*****

अध्याय–25

आप यथार्थ में शिव ही हो

आप यथार्थ में शिव ही हो और ध्यान रहे शिव किसी मूर्ति या आवरण रूप का नाम नहीं अपितु परब्रह्म का पर्याय है। जो कभी सदाशिव तो कभी महेश या रुद्र विष्णु चोलों में लीलारत है और वही आप साक्षात। जैसे आटे को ही (तेल व अग्नि, वायु के संयोग से) कभी रोटी, कभी परांठा या पूरी आदि की संज्ञा मिल जाती है और स्वर्ण को कभी कंगन तो कभी कुण्डल की संज्ञा उसी प्रकार उस परम तत्व को ही अविद्या के योग से जीव की संज्ञा मिल जाती है पर वह वास्तव में ब्रह्म ही है। और उसका दुख से कोई भी संबंध नहीं। वह ब्रह्म दुख का अनुभव अज्ञान की परत के कारण करने लगता है जैसे ही वह परत ब्रह्मनिष्ठ के महावाक्यों के कारण नष्ट होती है वह तत्काल अपने मूल स्वभाव में आकर ब्रह्म भाव पाकर तद्भावित और तद्रूप हो जाता है और ब्रह्मानंद पाकर एक दूसरा शिव ही हो जाता है । अविद्या और माया से ही अज्ञान और भेद उत्पन्न होता है। अविद्या से वह अपने को जीव मानता है और ईश्वर की उपासना या आराधना से जब वह निष्पाप होता है तब महान ईश्वर परम प्रसन्न होते ही अपनी माया हटा लेते हैं और सत्य बताकर स्वयं ब्रह्म हो इस भाव में जगाकर कालान्तर में अपरोक्ष ज्ञाननिष्ठ बना देते हैं यही माया के बंधन का नाश कहा जाता है।

माया का बंधन हटते ही आराधना व उपासना का लोप हो जाता है। जिस प्रकार पराशक्ति किसी की उपासना नहीं करती उसी प्रकार वह ब्रह्मनिष्ठ उपासना नहीं करता।

स्कन्दोपनिषद् में कहा है कि – जीवः शिवः शिवो जीवः स जीवः केवलः शिवः।

तुषेण बद्धो व्रीहिः स्यात् तुषाभावेन तण्डुलः।।

अर्थात् जीव शिव है, शिव जीव है, वह केवल शिव है। जैसे भूसी से ढंके होने पर धान और भूसी न रहने पर तण्डुल कहा जाता है।

अध्याय–26

साधारण गुरु तो सभी को पुनरागमन ही देंगे

शिवपुराण विद्येश्वर संहिता अध्याय १८ का एक बहुत ही बडा प्रमाण लीजिए पहले–

गुरु से भी अधिक ज्ञानी पुरुष मिल जाये तो उसे गुरु मानकर और उसका शिष्य बनकर उस नवीन गुरु की ही सेवा आरंभ कर देना चाहिए। साधारण गुरु वाचक, बोधक या विहित मात्र होता है न कि अपरोक्ष ज्ञानी। तभी तो गुरुगीता में इन तीनों को परमगुरु की उपमा नहीं दी।

गुरोरपि विशेषज्ञं यत्नाद् गृह्णीत वै गुरुम्

सूत जी ने साफ साफ कहा है कि – हे द्विजों ! ध्यान से श्रवण करो । अज्ञान रूपी बंधन से छूटना ही जीवमात्र के लिए साध्य पुरुषार्थ है । अतः जो विशेष ज्ञानवान् है एकमात्र वही जीव को उस बंधन से छुड़ा सकता है। अतः प्रारब्ध वश यदि साधारण ज्ञान से युक्त गुरु का वरण हो जाये या वह निम्न स्तरीय ज्ञान भूमिका से युक्त हो तो बिना भय के उस नवीन ज्ञाननिष्ठ गुरुकी सेवा सूश्रूषा (पूर्व गुरु का अपमान न करते हुए) आरंभ कर देना चाहिए। मुक्ति को ही परम लक्ष्य मानना चाहिए न कि अज्ञानी या सामान्य गुरु की सेवा। लिंग पुराण में भी कहा है कि नाममात्र का गुरु नाममात्र की मुक्ति देता है।

सार– अंधविश्वास में आकर अपने गुरु (जो मात्र प्रथम से दूसरी या तीसरी ज्ञान भूमिका वाला ही हो) के ज्ञान को ही यथार्थ पराविज्ञान नहीं मान लेना चाहिए।

ज्ञान की सात भूमिकाओं तक की प्राप्ति तक गुरु को बदला जा सकता है ।

अंधविश्वास में आकर अपने गुरु से अधिक ज्ञानी पुरुष को साधारण समझना मूर्खता ही है। हे पार्वती ! तत्त्वमसि सोऽहम् आदि महावाक्यों के जो लक्ष्यार्थ हैं (तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम्...)उनको ही तुम परम गुरु मानों शेष गुरु तो जीव को भी पुनरागमन देते हैं और स्वयं भी गर्भ से बार बार जन्म लेते हैं और यदि वे साधारण भेदज्ञ गुरु यदि अपने से उच्च स्तरीय गुरु की शरण में नहीं जाने देते तो अगले जन्म में वे बैल की योनी भी पाते हैं। मौनी गुरु या मूर्ति में विराजमान (देहांत को प्राप्त) गुरु मौन रहने से अपने शिष्य को बहुत से बहुत अपनी पूजा का फल ही देते हैं पर जीवित गुरु अपनी महावाक्य मयी वाणी द्वारा शिष्य के घोर अंधकार का छेदन और भेदन करने वाले सिद्ध होते हैं। हे देवी ! शिष्य के धन का हरण कर अपने इष्ट को सर्वश्रेष्ठ बताकर अन्य रूप को गौण बताने वाले गुरुओं की भी इस लोक में कमी नहीं पर सम्यक् ज्ञान विज्ञान देने वाले और जीव भाव का नाश करने वाले गुरु इस भूमि पर अति दुर्लभ हैं। सप्त सागर पर्यन्त सभी तीर्थों में स्नान और दर्शन का जो फल है वह फल तो ऐसे गुरु के चरणोदक के पान के फल की तुलना भी नहीं कर सकता।

अहम् ब्रह्म शाश्वतम् में जगाने वाले ही परम गुरु हैं जो अवधूत भी कहे जाते हैं पर जिन लोगों का ज्ञान अधूरा है वे अपने शिष्य को बांधकर नष्ट करने वाले उनके पूर्व जन्म के शत्रु ही हैं।

*****

अध्याय–27
केवल ब्रह्मज्ञान होने तक ही सेवा

हे देवी! मुझ शिव की उपासना या विष्णु की उपासना अथवा देवी की सेवा केवल ब्रह्मज्ञान होने तक ही की जाती है तदोपरान्त भेद बुद्धि मिटने से वह एक रूप हो जाता है और एक ही एक का भजन भला किस प्रकार कर सकता है इसी कारण वह मेरे यजन से मुक्त साक्षात शिव ही के समान इस संसार के जीवभावियों द्वारा मेरे ही समान पूजनीय और सेवनीय है। सः च पूज्यो यथा ह्यहम् ।

*****

अध्याय–28
द्वैतवादियों का पतन

जो वैष्णव शिव में ब्रह्म बुद्धि नहीं रखता वह 100 कल्पों तक मेरी भक्ति से भी यथार्थ पराविज्ञान नहीं पा सकता। – श्रीहरि कृत शिव स्तोत्रों का सार

देखों अद्वैतवाद से तो तत् त्वमसि ही सत्य है आप भी वही हो फिर हे मूर्खों! हरि व शिव में भेद कहाँ से आ गया।

*****

अध्याय–29

तृतीय भूमिका मात्र

नवधा भक्ति में जो नाम संकीर्तन समूह गान या सामूहिक या अकेले में जप (शिव शिव या राम राम या राधा राधा , दुर्गा दुर्गा आदि या अथवा अष्टाक्षरी व पंचाक्षरी आदि गुरुमंत्र का बार बार जप या पुरश्चरण), स्मरण और ईश्वर की कथाओं का श्रवण या गान (कीर्तन) है वह ज्ञान की दूसरी भूमिका का आभूषण है। और कोई वीतरागी जपे तो यह ज्ञान की तृतीय भूमिका मात्र कहलाती है । और जीव भावी मानव इसे ही अमृत रस समझकर आजीवन जपते रहते हैं पर अनंत गीता, योगवसिष्ठ और अवधूत गीता तथा शिव गीता या श्रीराम की राम गीता व भगवान शेष की अनंत गीता में जिस चतुर्थ भूमिका का वर्णन है उसको कोई विरला ही जान व समझ पाता है।

इस दूसरी भूमिका के वे जीव भी नीच है जो एक नाम को दूसरे नाम की अपेक्षा घृणा या हीन भाव से देखकर अपने ही इष्ट को सर्वश्रेष्ठ व अन्य रूप को छोटा घोषित करने में लगे हैं। ऐसे सभी भगवाधारी अथवा पीताम्बरी या श्वेताम्बरी मानव ब्रह्मनिष्ठ के पैर की धूली का हजारवाँ भाग भी नहीं (वे हीन हैं यथार्थ को नहीं जानते इसी कारण सनातन ब्रह्म स्वरूप होते हुए भी वे अभी जीव कोटी के तथा पशु ही हैं जिनकी बस पूंछ नहीं)

महादेव ने भी इसी प्रसंग को गहराई से कहा है कि हे देवी ! देहांत से पूर्व यदि स्वरूप का बोध न हुआ और जप या कीर्तन में दक्षता भी प्राप्त कर ली तो भी पुनर्जन्म सुनिश्चित है और ब्रह्म वैवर्त पुराण में भी कहा है कि सहस्र कोटी तुलसीदल भी नित्य अर्पित किए जायें पर स्वयं के परिपूर्णतम तत्व का ज्ञान न हो पाये तो वह जीव कुछ मन्वन्तर तक क्षीरसागर में तुलसीदल का या बिल्वपत्र का फल भोगकर पुनः धराधाम पर जन्म लेता है और तब तक जन्म लेता रहता है जब तक कि वह ब्रह्मज्ञानी के महावाक्यों (महावाणी) को आत्मसात नहीं करता ।

नीचं शय्यासनं चास्य सर्वदा गुरुसंनिधौ।
गुरोस्तु चक्षुर्विषये न यथेष्टासनो भवेत।।

भावार्थः

गुरु के पास हमेशा उनसे छोटे आसन पर ही बैठना चाहिए। गुरु के आते हुए दिखाई देने पर भी अपनी मनमानी से नहीं बैठे रहना चाहिए। अर्थात गुरू का आदर करना चाहिए।

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

भावार्थः

उस महान गुरु को अभिवादन, जिसने उस अवस्था का साक्षात्कार करना संभव किया जो पूरे ब्रम्हांड में व्याप्त है।

धर्मज्ञो धर्मकर्ता च सदा धर्मपरायणः।
तत्त्वेभ्यः सर्वशास्त्रार्थादेशको गुरुरुच्यते।।

भावार्थः

धर्म को जाननेवाले, धर्म मुताबिक आचरण करनेवाले, धर्मपरायण, और सब शास्त्रों में से तत्त्वों का आदेश करनेवाले गुरु कहे जाते हैं।

जो परमात्मा के साथ अभिन्न होकर रात–दिन आनंदविभोर होकर सर्वत्र विचरते हैं, जो एकाकी (जिनकी बुद्धि में एक ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कुछ भी शेष नहीं वे), निःस्पृही और विशुद्ध अंतःकरण वाले, सभी विकारों से रहित शांत ही मुझमें प्रविष्ट होते हैं, मेरे भाव से भावित होने के अलावा उनमें कुछ भी नहीं होता, वे ही भवरोग से मुक्ति दिलाने वाले परम गुरु कहे जाते हैं शेष से परम कल्याण नहीं होता।

प्रभु ने पूर्व में पंचभैरवसूत्र के अंतर्गत भी कहा था, पर एक बार पुनः सुनो–जिसके पास जैसी सामर्थ्य, योग्यता और जैसी क्षमता होती है वह अपने शिष्य को वैसा ही बना सकता है, कल्पित की हुई व्यर्थ की कोरी कल्पना से

या अंधविश्वास से उस निषिद्ध गुरु में सदाशिव स्वरूप की कल्पना से मात्र पुण्य अवश्य ही प्राप्त किया जा सकता है पर अज्ञान रूपी अंधकार का नाश नहीं किया जा सकता। ऐसा पुण्य तो किसी भी पत्थर में कल्पना करते समय ही प्राप्त हो जाता है; क्योंकि परब्रह्म कहाँ नहीं है? जिसकी उपस्थिति का अहसास न किया जा सके अतः उत्तम आचरणों से परिपूर्ण गुरु की सेवा में ही रत रहना चाहिए। पूर्ण श्रद्धा से सतत् उनकी सेवा में ही तत्पर रहना चाहिए, परंतु 1 वर्ष तक पूर्णतः समर्पण भाव से सेवा करने के बाद भी चित्त विश्रांत न हो तो उस गुरु का त्याग कर देना चाहिए, ऐसा मैंने शिवपुराण में भी कहा है। एक शिला दूसरी शिला को पार नहीं ले जा सकती, अंधविश्वास के कारण ही तुम पूर्वजन्मों में मुक्त नहीं हो सके।

अवधूत गीता श्री कृष्ण गीता से अधिक गहराई लिये है –

दोनों गीता ही श्रीहरि ने कही हैं पर सामान्य पुरुष के लिए द्वैतमय भावों से युक्त श्रीकृष्ण गीता है और जिसकी श्रीकृष्ण गीता सिद्ध हो चुकी उसके लिए अवधूत गीता और श्रीराम गीता ही परम गहराई देगी।

ज्ञान के भी सात स्तर हैं। पर जो बात गहराई से श्री राम ने राम गीता में कही थी , जो बात अति गहराई से श्रीहरि ने दत्तात्रेय रूप में (अवधूत गीता में)कही थी वो बात श्री कृष्ण जी ने गीता में मात्र तीन चार जगह कही है इस कारण साधारण मनुष्य उस ज्ञान की गहराई तक इस गीता से नहीं पहुंच सकता। श्रीकृष्ण रूप के उपदेश से वह वैराग्यवान अवश्य हो सकता है सुख और दुख में समान अवश्य हो सकता है पर जो बात अवधूत रूप ने (श्री हरि ने) कही है वह बात कोई भी साधारण मनुष्य 18 अध्याय की गीता से नहीं समझ सकता।

यहाँ अर्जुन जैसा पात्र को उपदेश है पर अवधूत गीता का पात्र अर्जुन से भी श्रेष्ठ महापात्र था।

छुआछूत पाप कर्मों तथा अशुद्धि से

गुरु कृपा से पत्थर भी सोना हो जाता है वह फिर पुरस्कार के योग्य होता है न कि उसके लिए सामान्य सोच रखना चाहिए। वैसे छुआछूत पाप कर्मों तथा

अशुद्धि से होती है जो मनुष्य विशुद्ध कर्मों को करता है उसका स्पर्श किया जा सकता है फिर चाहे वह कोई भी क्यों न हो ? और जो कोई भी (सामान्य या उच्च वर्ण का) परस्त्रीगमन, व्याभिचार, चोरी, लूट, मदिरापान, माँस भक्षण, मित्र की पत्नी पर गलत दृष्टिकोण, शासन का जनहित का धन निजी कार्यों में लगाता है या माता पिता, संत, गुरु व गौ का घातक है या द्विज होकर भी संध्यापूत नहीं वह पापी ही है उसका स्पर्श निषेध है।

ऐसे पापी मनुष्य के दर्शन से गंगा स्नान से शुद्धि कही गई है।

पर जो भक्ति या वैराग्य से युक्त होकर शुद्ध हो गया हो, जितेन्द्रिय हो, दयासागर, सम्यक् ज्ञान से परिपूर्ण वह विजातीय जन्म वाला विलोमज भी हो तो भागवत 7/11/35 के अनुसार स्पर्श, सेवन, पूजन के योग्य साक्षात विशुद्ध ब्राह्मण के समान ही उसे माना जाए। और शिव पुराण में पूजा और सम्मान के योग्य पहले स्थान पर सोऽहम् महावाक्य से युक्त महावर्णी, दूसरे स्थान पर अखंड ब्रह्मचर्य पूर्वक रहना वाला जितेन्द्रिय व तपोनिष्ठ तथा तीसरे और अंतिम स्थान पर वर्ण को बताया है ।इसमें भी जन्म व धर्म दोनों होना चाहिए।

भले ही ब्रह्मविद् न हो, भले ही अखंड ब्रह्मचर्य पूर्वक न रहता है पर वर्ण उच्च हो तथा पाप न करता हो तब भी तीसरा स्थान दिया । अतः धर्म शास्त्रों में भेद नहीं।

माण्डूक्य उपनिषद में वैतथ्य रूपी झूठ का वर्णन–

माण्डूक्य उपनिषद के प्रथम आगम प्रकरण से भी परम सत्य को जाना जा सकता है और इसके द्वितीय प्रकरण से मिथ्यात्व अर्थात वैतथ्य रूपी झूठ (असत्यत्व) को जान लेना चाहिए । पर लोग इन एकमेवाद्वितीयम् इत्यादि श्रुतियों को न समझकर, न ही उपनिषदों को समझकर पशु तुल्य हो रहे हैं एकाध कोई ब्रह्मभावी प्रकट होता है तो उसे भी अपने मूल स्वरूप युक्त नहीं मानते और उसे भी स्वयं की भाँति जीव ही मानने लगते हैं बस इसी का नाम भी वैतथ्य है। जो पुनर्जन्म देता है। यह द्वैत माया मात्र है।

पहले प्रकरण में तो
भयंकर गहराई की बात
कही गई है कि शिष्य, शास्त्र और शासक (गुरु)
ये तीन नाम भी मात्र आरंभिक विकल्प हैं

यह भी ज्ञान से निवृत्त हो जाकर एक हो जाते हैं परम गुरु ही जब जीवत्वभावी शिष्य को ज्ञान देता तब ज्ञान देने के बाद वह उस शिष्य को यही सिखाता है कि मैं भी तुम ही हूँ शास्त्र भी तुम ही हो अतएव विकल्प या तीन चार नाम मात्र आरंभिक उपाधियाँ हैं हे अक्षयरुद्र यथार्थ पराविज्ञान पर कौन शिष्य और कैसा शास्त्र? मैं ही शास्त्र हूँ मैं ही गुरु और मैं ही अज्ञान के कारण शिष्य था। माण्डूक्य उपनिषद के आगम प्रकरण का श्लोक 18 यही भेद या विकल्प नष्ट करने का शंखनाद करता है । पर जगत को प्रेरणा देने के लिए शिष्य भी गुरु से औपचारिक भेदज्ञता (गुरु और शिष्य नाम संबंधी) की आज्ञा लेकर गुरुसेवा के

वचन कहकर कल्याण ही करता है क्योंकि आरंभ में सेवा और विचार से ही शिष्य सीख पाता है। देखें –

विकल्पो विनिवर्तेत कल्पितो यदि केनचित्।
उपदेशादयं वादो ज्ञाते द्वैतं न विद्यते।।18।।

यह विकल्प या भेद मात्र उपदेश के लिए है पर आत्मज्ञान होने पर द्वैत नहीं रह जाता। यह शिष्य आदि भेद विकल्प मात्र आत्मज्ञान से पूर्व उपदेश के निमित्त ही है। उसके बाद गुरु भी यही चाहता है कि मैं शिष्य रूप में (जो प्रत्यक्ष ब्रह्म हूँ) भी सदा ब्रह्मानंद में ही रत रहूँ अतएव शिष्य को वह आज्ञा देते हैं कि सदा और सर्वमय अद्वितीय अद्वैत के चरम पर ही रमण करना यही शाश्वत आनंद का मूल है। और मैं तुझे दोष से मुक्त करता हूँ क्योंकि परम ब्रह्मानंद अभेदता में ही है।

*****

अध्याय–30

परीक्षा

यद्यपि परम गुरु, शिष्यों को कम से कम 1 वर्ष तक परख कर ही दीक्षित करते हैं, परंतु शिष्यों का भी कर्त्तव्य है कि वह अपनी बुद्धि के अनुसार कम से कम उस गुरु का चुनाव करे जो धैर्यवान, क्षमाशील, अनिन्दक और वेदांत का ज्ञाता हो। आँखें बंद करके दीक्षा नहीं ली जाती; क्योंकि दीक्षा कोई वस्तु नहीं, जो कहीं से भी ग्रहण कर ली जाये परंतु हाँ, जिन मनुष्यों ने दीक्षा की महिमा का श्रवण करने के कारण जल्दबाजी में कल्याण की इच्छा के कारण दीक्षा ले ली हो, वह निषिद्ध गुरु का त्याग भी कर सकते हैं मैंने ऐसा गुरुगीता में भी कहा है, परंतु जो दीक्षारहित हैं उनको धैर्य पूर्वक गुरु का चुनाव करना चाहिए और गुरु भी परम विश्वास पात्र और श्रद्धावान को ही कम से कम 1 वर्ष बाद दीक्षा दे वह भी श्रद्धा, विश्वास के अलावा उसके भावों का व्यापक रूप देखकर; क्योंकि शिष्य के पापों का अंश गुरु को भोगना पड़ता है अतः **दीक्षा एक दिव्य प्रक्रिया है।** यदि शिष्य साधारण है और उसे अद्वैत वेदांत के विषय में कुछ भी ज्ञान नहीं तो आरंभ में वह कम से कम उत्तम धर्म, कर्म से युक्त तथा कंचन कामिनी की आसक्ति से रहित या उत्तम लक्षण देखकर दीक्षा प्राप्त कर सकता है इससे भी वह शिष्य भी कालांतर में, वह ऐसे नवीन गुरु को प्राप्त कर लेता है जो ज्ञान की उच्च भूमिका को प्राप्त हो फिर उसके सारे संशय कट जाते हैं। शिष्य को भौंरे के तरह होना चाहिए, जो एक नहीं हजारों पुष्प रूपी गुरु के चरणों में मंडराता रहे। उन संतों में से निश्चित ही कोई न कोई एक पूर्णतः निर्लोभी और ज्ञाननिष्ठ अवश्य ही प्राप्त होता है जिसको पाकर वह कृतकृत्य हो जाता है और उनके महावाक्यों को आत्मसात करके शिवत्व प्राप्त कर लेता है।

जिस प्रकार किसी पद पर पदस्थ योग्य व्यक्ति ही उस पद के सभी कार्यों को भलीभांति शांतिपूर्वक कर सकते हैं शेष नहीं। जिस प्रकार केवल माता ही बच्चे को गर्भ में धारण कर जन्म दे सकती है पिता नहीं, जिस

प्रकार बर्फ ही शीतलता दे सकता है अग्नि नहीं, उसी प्रकार केवल परम गुरु ही शिष्य को भवरोग से मुक्ति दिलाकर सदा के लिये दुःखों का निवारण कर सकता है, बंधन में पड़ा हुआ जीव नहीं। देखादेखी मंत्रदीक्षा देना आरंभ करके स्वयं को गुरु कहलवाकर, कोई गुरु नहीं बना जाता गुरु के लिए गुरुत्व अर्थात् अपरोक्ष ज्ञान का होना अनिवार्य है। स्मरण रहे आचार्य शब्द उत्तम आचरण तथा ज्ञान के कारण ही बना है।

*****

अध्याय–31
अष्टपाशों से युक्त जीवात्मा को मात्र पशु की संज्ञा प्राप्त है

अष्टपाशों से युक्त जीवात्मा को
मात्र पशु की संज्ञा प्राप्त है
गुरु (ब्रह्म) की नहीं,
जो आठों पाशों की बेड़ियों में जकड़ा है
वह किसको मुक्त करेगा?
जो अन्य गुरु की प्रगति या ईर्ष्या करके उसे
नीचा दिखाने का प्रयास करे, न कि सत्य कहे
जो दूसरे को हीन या छोटा समझकर स्वयं को ही सबसे श्रेष्ठ समझे,
जिसे अपरोक्ष ज्ञान नही वह परम गुरु नहीं।

प्रभु तो सभी में प्रत्यक्ष हैं इस कारण सभी तत्त्वतः समान हैं फिर वह छोटा या बड़े की कल्पना कैसे कर सकता है? और यदि अपना शिष्य किसी अन्य स्वरूप की शरण में चला गया तो भी वह परम गुरु अप्रभावी ही होता है; क्योंकि वह जानता है कि मैं वहाँ भी हूँ, मात्र इस शरीर में नहीं हूँ अपितु यथार्थ में देखा जाए तो सारे ब्रह्माण्डों का परम तत्त्व है और जो सबका आत्मा है वह केवल मैं ही हूँ, फिर अच्छा ही है कि कम से कम वह मेरा शिष्य (निजस्वरूप) अपने कल्याण में तो लगा है। यदि कुछ शिष्य किसी भ्रांति में आकर अपने परम गुरु **"जो अपरोक्ष ज्ञानी हो"** का त्याग करके निषिद्ध गुरु की सेवा में चला जाये तो वह पूर्व परम गुरु तो अपने ब्रह्मभाव में रमण करता ही है जिससे उसको कोई फर्क नहीं पड़ता, परंतु उस शिष्य का दुर्भाग्य ही समझना चाहिए; क्योंकि वह परम गुरु की शरण में होता तो उनके सान्निध्य से उसका परम कल्याण होता, परंतु निषिद्ध गुरु के पास जाने से वह अपने समय को ही नष्ट कर रहा है तथा यदि वह उस निषिद्ध गुरु के

दूषित संकल्प या सिद्धियों की इच्छा में लिप्त हो जाये तो पतन तो होना ही है इसी कारण गुरुगीता में कहा है कि परम गुरु का त्याग करने से शिष्य का अधोपतन हो जाता है।

परमकल्याण करने वाले व निर्मल पराविज्ञान वाले ही परमगुरु

यदि शिष्य को अपने गुरु में संशय हो कि पता नहीं यह ब्रह्मज्ञानी है या नहीं? फिर मैं क्या करूँ? तो इस प्रकार के द्वंद्व में भी उस शिष्य को उस गुरु से कटु वचन नहीं कहना चाहिए और चाहे तो यथासंभव अन्य गुरुओं (जिनके बारे में यथार्थ विश्वास हो कि हाँ वो ब्रह्मज्ञानी हैं या हो सकते हैं) की सेवा में भी तत्पर हो सकता है, परंतु यदि वह पूर्व गुरु किसी काल में शिष्य की पत्नि या अन्य स्त्री के साथ अनुचित व्यवहार करे या शिष्य पर मिथ्या आरोप लगा दे तब शिष्य जो चाहे वो कर सकता है; क्योंकि उस पूर्व गुरु ने अपने गुरुत्व का अधिकार प्रमाण देकर खो दिया है। हे वत्स! जो गुरु निषिद्ध हैं और यदि कोई अति श्रद्धालु शिष्य फिर भी उसकी सेवा में ब्रह्मभाव से सेवा कर रहा है तो मुझे उस शिष्य पर निश्चित ही दया आती है और मैं एक दिन प्रमाण सहित उस शिष्य को सारे रहस्य (सुनी सुनाई नहीं प्रत्यक्ष अपने साथ हुआ दुर्व्यवहार तथा अपनी बहन, बेटी के साथ काम विकार भाव या मिथ्या आरोप आदि) बताकर उस दूषित गुरु से मुक्त कर देता हूँ।

जो भलीभांति शांत और अक्षय आनन्द से ही तृप्त है जो कंचन और कामिनी के लिए लालायित न होकर उनकी स्पृहा से मुक्त है, जिसे अब अपने लिये कुछ भी पाना शेष नहीं, फिर चाहे इसी पल देहांत ही क्यों न हो जाये? वह वीतरागी और महावाक्यों का आत्मसात करके कैवल्या अवस्था से युक्त ही परमकल्याण करने वाला परमगुरु कहा जाता है। जो क्षमा, दया और करुणा का भंडार हो, जो अभयदाता हो और शाप या दंड के भय से शिष्य को दूर रखे, वह ज्ञानी ही परमकल्याण कर सकता है। हे वत्स! जो स्वयं तैरना नहीं जानता वह दूसरों को क्या तैरायेगा? जो स्वयं अंधा है वह किसको मार्ग दिखायेगा?

निर्मल मानस वाले में ही गुरुत्व शोभा देता है, कामकामी और अशांत तो पशु भावी जीवात्मा कहलाती है गुरु नहीं। हे भैरवांश! दूषित संकल्पों वाले

गुरु और उसका दूषित हिंसात्मक आज्ञा मानने वाला शिष्य दया और करूणा से बहुत दूर होते हैं वे इहलोक में कुछ सिद्धियों के बल पर थोड़ा बहुत धनार्जन ही कर पाते हैं और कुछ तामसिक तथा राजसिक वृत्तियों के शिष्यों से कुछ यश और दक्षिणा ही प्राप्त कर सकते हैं, इसके अलावा उनके अनुयायी न तो निष्काम भक्ति प्राप्त कर सकते हैं और न ही परम कल्याण की कैवल्यामय अवस्था।

जिसकी दृष्टि पावन हो, जो आठों पहर मात्र जनहित की योजनाओं में संलग्न हो, जो किसी अपने के मरणकाल में भी आत्मज्ञान के कारण दुःखी न हो और उसी क्षण ब्रह्म में प्रविष्ट होकर समाधिस्थ हो सके, वह परम पूज्यनीय और दर्शनीय परमगुरु है। अनेक जन्मों के पुण्यों के परिपक्व होने पर ही (अंतिम जन्म में ही) ऐसे महागुरु प्राप्त होते हैं जिनकी दृष्टि मात्र भी यदि उस शिष्य पर पड़ जाए तो ही उस शिष्य का जीवन सफल हो जाता है। हे वत्स! ऐसे गुरु देह में भी हो सकते हैं, देहान्त के बाद मेरे हिमालय क्षेत्र में अपने सूक्ष्म शरीर से तप कर रहे या स्वयं के ब्रह्मभाव में स्थित अन्य योगी भी।

तुम्हारा यह प्रश्न लोक के लिए परमकल्याण कारी सिद्ध होगा, सुनो–तुम स्वयं जब तक मेरी आज्ञा न हो तब तक किसी को भी शिष्य रूप में स्वीकार नहीं करना; क्योंकि साधारण जीव प्रवृत्ति के लोगों को उनके जीवन में विशुद्धि आने तक दीक्षा नहीं देना चाहिए, शिष्य में भी दम्भ, क्रूरता हानिकारक है। जब तक शिष्य की परीक्षा न कर ली जाए, तब तक दीक्षा नहीं देना चाहिए; क्योंकि यह परम संस्कार है जो योग्य शिष्य को ही दिया जाता है।

गुरु यदि अपने अहंकार में आकर शिष्य का शोषण करने का प्रयास करे या शाप आदि का भय दिखाए अथवा सेवा करने के बाद भी ज्ञान न दे तो याज्ञवल्क्य और राजा निमि की भांति उस गुरु का त्याग करने में ही परम धर्म है। याज्ञवल्क्य ने गुरु का त्याग करने के बाद आदित्य पुत्र विवस्वान की आराधना की, वह नित्य अपने द्वारा रचित स्तुति से सूर्य की आराधना करते थे तथा अपने मन की इच्छा से शास्त्रों से प्राप्त सूर्य मंत्र को लेकर नित्य साधना करते थे इस कारण कालांतर में प्रभु सूर्य ने उन पर अनुग्रह किया और उनको माँ शारदे का मंत्र दिया जिससे याज्ञवल्क्य को वह ज्ञान प्राप्त हुआ जो ज्ञान

उनके गुरु के पास भी नहीं था.......। सद्गुरु के विषय में और भी सुनें–

वास्तविक तीर्थ तो सद्गुरू देव के चरण कमल ही हैं। अन्य तीर्थों का फल मात्र इतना ही है कि वे आपको यह सूचना दें कि–"हे भक्तो! अब अनन्य भक्ति, विज्ञान आदि की प्राप्ति हेतु केवल गुरूदेव की चरण सेवा करो।" इस कथन की प्राप्ति के बाद हम यदि सद्गुरू की शरण (साक्षात् सेवा या साक्षात् सान्निध्य फल) छोड़कर अन्यत्र (तीर्थादि में) भ्रमण या यात्रा करते हो तो हमको कुछ भी फल प्राप्त नहीं होगा, चाहे कोटि बार नाक ही क्यों न रगड़ो, चाहे अरबों खरबों बार पद यात्रा करते रहो। यह ठीक वैसा ही है जैसे कि घर में माँ बीमार है और आप उनको छोड़कर पड़ोसी की स्वस्थ माँ की देखरेख हेतु भागादौड़ी करते हो। ऐसा करके तुम वास्तव में माँ की कब्र खोदने की ही तैयारी कर रहे हो। अन्य कुछ सोचते हो तो मूर्खता है। स्मरण रहे सद्गुरू देव तो अजर–अमर शाश्वत आत्म–सुख में स्थित हैं, यदि हम उनका सान्निध्य फल नहीं पाते तो उनको तो कोई हानि नहीं, अपितु स्वयं ही पतन का मार्ग प्रशस्त करते हैं। खैर जो भी है ठीक है।

धर्म का कार्य केवल समझाना है। आगे आपकी इच्छा कल्याण या पतन जो भी चाहिए वैसा ही करो। मानव वैसे भी स्वतन्त्र है, किसी पर दबाब देने से तो वह समझ नहीं सकता। उसे जो अच्छा लगता है, वही धर्म समझता है। **इसी कारण इस विश्व के 99% व्यक्ति (आत्मा का व्यक्त रूप) दुःखी हैं।** कोई देह त्याग (आत्महत्या) का शिकार हो रहा है तो कोई मानसिक पीड़ा झेलते हुए जीवन काट रहा है, तो कोई पत्नि, पुत्र या पति से परेशान होकर अन्यत्र आश्रय ढूँढ़ रहा है, परंतु इतना अवश्य सत्य है कि जब तक वह गुरूदेव की छत्रछाया में नहीं जाता, उसे शीतल प्रसाद नहीं मिल सकता। जीवन को जैसे–वैसे काटने से शान्ति नहीं मिलती। शान्ति हेतु हमें ज्ञात होना चाहिए कि आत्मा (मैं स्वयं, तुम स्वयं) अजर, अमर, अविकारी व सत्य सनातन है। वह किसी भी काल में नष्ट होने वाली नहीं। इसी कारण कोई जीवन को जैसे–वैसे काटने के विषय में न सोचे; क्योंकि आप सदा तक रहोगे। इस देह के शव बन जाने के बाद भी आपका अस्तित्व खत्म नहीं होगा। श्मशान में स्थूल शरीर भले ही जल जाए, पर मन, बुद्धि तथा अहंकार से बना हुआ सूक्ष्म शरीर कभी नहीं जलता, उसकी शुद्धता तो केवल सद्गुरू देव के द्वारा ही सम्भव है। यदि कोई इस भौतिक पिण्ड के क्षणों में ही सुखी

होना जान जाए तो ही देहान्त के बाद भी अखण्ड ब्रह्म रस का पान कर सकता है, अन्यथा दुःख निश्चित है।

एक आदर्श शिष्य ही कालान्तर में गुरूपद पर आसीन होता है, हालाँकि वह तो पूर्ण निःस्पृह होता है परंतु सांसारिक जीवों के कल्याण के लिए उसे गुरूपद स्वीकारना ही पड़ता है।

अन्य कारण में उपनिषद यह भी कहता है कि–"सद्गुरू के प्राण शिष्यों में और शिष्यों के प्राण सद्गुरू में बसते हैं। इस कारण शिष्य को कालांतर में गुरू प्रसाद जन–जन तक पहुँचाने हेतु गुरू पद स्वीकार करना ही पड़ता है,"

गुरूर्ब्रह्मा गुरूर्विष्णुः गुरूर्देवो महेश्वरः।
गुरूर्साक्षात्परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

यथार्थ में **उक्त महामन्त्र ही धर्म का सार, मोक्ष का मूल तथा जीवन में मुक्तावस्था हेतु एक मात्र अमृत वाक्य है।** गुरू के समान और बड़ा पद त्रिलोक में अन्य कोई नहीं; क्योंकि गुरू ब्रह्म स्वरूप आनन्द स्वरूप है आनन्द से बड़कर कुछ भी नहीं, इसीलिए गुरूदेव अर्थात् तत्त्ववेत्ता व कैवल्यामय को साक्षात् परब्रह्म का साकार स्वरूप कहा गया है। गुरु परब्रह्म का विशुद्ध स्वरूप ही है, उनके संतोष मात्र से धर्म, संस्कृति, वेद, शास्त्र, पुराण, उपनिषद् आदि सर्वरूप तृप्त हो जाते हैं।

त्रिविध तापों के शमन के लिए सर्वोपरी औषधि गुरूकृपा ही है। गुरूकृपा से उपर्युक्त तापों को जड़ से ही समाप्त कर दिया जाता है; क्योंकि भवरोग का सदा के लिए क्षरण हो जाता है अर्थात् दुःखालय रूपी इस भौतिक शरीर से सदा के लिए निजात प्राप्त हो जाता है।

गुरू बिन ज्ञान नहीं, ज्ञान बिन अद्वैत कहाँ।
अद्वैत बिन कैवल्या नहीं, कैवल्या बिना अभेद कहाँ।

अतः जहाँ तक हो हमें सद्गुरू (ब्रह्मनिष्ठ तत्त्वज्ञ) देव से दीक्षा लेकर उन्हीं की सेवा में जीवन का सदुपयोग करना चाहिए। **हम अनेक जन्म पत्नि, बच्चे और परिवार के अन्य सदस्यों के लिए बर्बाद कर चुके हैं, फिर भी वैसे के वैसे हैं। किसे शांति मिल रही है? कौन ब्रह्म से एकाकार है? कौन योगी**

है? बता दीजिए फिर भी व्यक्ति पुनः वही कृत्य किए जा रहे हैं जो हमेशा से करते आए हैं यह बड़े शर्म की बात है।

वही गर्भ कष्ट झेलना, चलने के लिए घुटने फोड़ना, स्कूल में मास्टर के डंडे, पास होने के लिए इतनी मेहनत कि प्रभु का स्मरण ही न हो पाए, कॉलेज की रंगरलियाँ, नौकरी, शादी, बच्चे। बच्चे न हो तो पत्नि को बांझपन का सद्मा, बच्चे हो तो कुपुत्र होने का डर, सुपुत्र हो तो संन्यासी होने का डर, उनकी शादी ब्याह के लिए धनार्जन करना। सूखी रोटी खाकर भी होने वाले दामाद के लिए गाड़ी महल की व्यवस्था करना, जैसे कि हमने उनका कर्ज खाया हो। पत्नि के देह का अन्त हो जाए तो पत्नि विरह में विधुर बनकर पागल होना, पति मर जाए (अर्थात् पति के शरीर का श्मशान में अन्त) तो विधवापन झेलकर तिरस्कार सहना। पत्नि, बच्चे सब जिन्दा रहे तो हर जन्म में पालन पोषण के लिए नित्य 8–9 घंटे कुत्ते–बिल्ली की तरह भागा दौड़ी करना, फिर शाम होने पर बच्चे पत्नि से मिलने के लिए तड़पड़ाना। पत्नि दुष्चरित्र हो तो पूरी जिन्दगी उसी के विषय में सोचकर घुटते रहना, पति पत्नि में से एक मोक्ष हेतु आध्यात्मिक होकर ब्रह्मचर्य का पालन करे तो दूसरे का बर्ताव व्यवहार भी गृहस्थी को श्मशान बना देता है। पुत्र को नौकरी न मिले तो तनाव, पुत्री को अच्छा वर न मिले तो परेशानी, जो धन संग्रह (समाज को दिखाने कि लिए) किया वह चोरी हो जाए या करोड़ों की फेक्ट्री, मिलें, लाखों के कारोबार में आग लग जाए तो दुःख, कोई पद प्राप्त हो गया हो तो उसके छिन जाने का भय, शत्रुओं का उपद्रव, फिर नाती–पोते के चेहरे देखने की आरजू, पूर्व पाप–पुंजों के कारण रोग, शोक और दुर्घटना हो तो वह दुःख; क्योंकि परिवार में व्यस्त रहने के कारण हमने गुरूदेव की सेवा तो की नहीं। क्रिया, तप, जप, अनुष्ठान तो किया नहीं, ध्यान की तो बात ही छोड़ दो; क्योंकि ध्यान के लिए एकाग्रता चाहिए। **पत्नि, पुत्र, धन, तथा कीर्ति की इच्छा होगी तो चित्त का एकाग्र होना सम्भव ही नहीं** अर्थात् करोड़ों महत्त्वाकांक्षाएँ हैं तो एकाग्रता कहाँ से होगी।

एकाग्रता ही नहीं तो ध्येय (शिव, राम, गुरू.......) पर सतत् चिन्तन कैसे होगा?.........फिर वृद्धावस्था की शारीरिक वेदना। अब **'भयंकर संघर्ष से'** जिस धन एवं पदार्थों का संग्रह (परिग्रह) किया था, उस पदार्थ (गाड़ी, महल आदि) के लिए उत्तराधिकारी ढूंढ़ने की चिन्ता हाय–हाय करके पूरी जिन्दगी (मनुष्य

योनि) ऐसे ही रोते बिलखते संचय करते निकल जाती है फिर अन्त में सोचते हैं–"अब तो शरीर बूढ़ा हो गया, पता नहीं कब देहान्त हो जाए अतः एक माला **हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।।** की जप लेते हैं, मोक्ष मिल जायेगा।" **अरे मूर्खो! भगवान क्या बिना रस का पिचका आम खाकर प्रसन्न होता है और क्या उस पिचके आम से पूरी कीमत तुम्हें मिल जाएगी, यह सोचना मूर्खता है। इन्द्रियों की शक्ति तो असंयम में नष्ट कर डाली, फिर प्रभु को कचरा अर्पित करने से क्या प्रयोजन?** हमने संसार को तो खूब चूना लगाया, परंतु प्रभु को नहीं लगा पाएंगे प्रभु तो परमेष्ठी, गुणातीत, सर्वज्ञ, अन्तर्यामी, चराचर में व्याप्त (सर्वमय), भक्त के साथ अभिन्न भावी, सबका कर्ता, भर्ता, हरता, साक्षी तथा पूर्ण है। उसको प्रत्येक पल की जानकारी है जो तुम छिप–छिपकर कुकृत्य करते हो, समय का दुरूपयोग करते हो वह भी प्रभु से अनभिज्ञ नहीं है। संसार से यदि तुम बच गये तो नरक की दण्ड आदि व्यवस्था से नहीं बच सकोगे।

ऐसी बात भी नहीं कि आपको आपकी माला का फल नहीं मिलेगा, मिलेगा अवश्य मिलेगा; परंतु 100–200 माला से अनन्य भक्ति प्राप्त नहीं हो जाती पूर्ण निष्पापता नहीं आ जाती। ठीक वैसे ही, जैसे कि मानो कोई 8 रोटी से तृप्ति का अनुभव करता हो और आप उसे गेहूँ का मात्र एक दाना खिलाकर याचना करते हो कि तृप्त हो जाओ, जरा विचार कीजिए यह कैसे सम्भव है?

तपस्वी, मुमुक्षु, वीतरागी, साधु, संत, ऋषि, मुनि आदि तो अनन्य प्रभु भक्ति, विज्ञान (पराविद्या), पराभक्ति, अपरोक्ष विज्ञान (मुक्तावस्था अर्थात् विज्ञानोदय) तथा केवल्य मुक्ति के लिए अपना पूरा जीवन समर्पित कर देते हैं, तो भी इसी जीवन में सभी को सद्गुरू की परम् कृपा का फल (अपरोक्ष–विज्ञान मय जीवन अर्थात् ब्रह्म के साथ अभिन्नता रूपी **अक्षय आनन्द** अर्थात् इसी पिण्ड के साथ मुक्ति फल) प्राप्त हो ही जाए, यह दुर्लभ है। फिर उनके विषय में क्या सोचना जो औपचारिक पूजादि कृत्य करते हैं अर्थात् सुबह शाम घण्टा बजाकर, दीपक जलाकर सोचते हैं कि बस प्रभु हमें निष्पाप कर देगा.........बहुत हो गया.......।

*****

अध्याय–32

बिना परम गुरु के ज्ञान किसे मिल सकता है।

इस मुक्ति लाभ (विज्ञानोदय) युक्त जीवन से ही परम सिद्धि अर्थात् केवल्य मोक्ष प्राप्त होता है।

श्रीमद्भगवद्गीता 8/15 में इसी परमगति के विषय में कहा है–

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः।।

अर्थात् ''परम सिद्धि को प्राप्त महात्माजन मुझको प्राप्त होकर दुःखों के घर एवं क्षणभंगुर पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होते,'' परंतु इस परम सिद्धि के लिए जो परम तत्त्व और अपरोक्ष भाव है वह अनिवार्य है। वह अनेक जन्मों के बाद प्राप्त होने की पुष्टि करते हुए प्रभु स्वरूप श्रीकृष्ण कहते हैं कि–

''बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।।''

अर्थात् बहुत जन्मों के अन्त के जन्म में तत्त्वज्ञान को प्राप्त पुरूष सब कुछ वासुदेव ही है–इस प्रकार मुझको भजता है, वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है। ध्यान रहे बिना परम गुरु के ज्ञान किसे मिल सकता है।

स्मरण रहे यह वचन साक्षात् भगवान श्रीकृष्ण जी के हैं अतः संदेह करने का विचार ही नहीं उठता। अतः सद्गुरू ही परम धर्म हैं, वही परम कर्त्तव्य हैं। **जो कोई अपने सद्गुरू देव को रिझा लेता है, वह समझे कि उसके ऐसे अनेक जन्म बिना भोगे कट चुके हैं, जिसमें कि साधना पथ की भयंकर तपस्याऐं थी जो उसने सहज ही पूर्ण कर ली।** अब तो मात्र अमृत फल का दिव्य स्वाद लेना ही शेष है। 'गुरू लाभात्सर्वलाभो' ही एक मात्र परम

मन्त्र है। सात करोड़ जो मन्त्र विद्यमान है, उनमें अनेकानेक महामन्त्र हो सकते हैं; परंतु परम् मन्त्र केवल गुरू मन्त्र ही है।

सद्‌गुरूनाथ दीक्षा समय यदि मात्र 'अ' कार (ऊँ प्रणव का पहला अक्षर) भी गुरू मन्त्र रूप में जपने के लिए कह देते हैं, तो इसी 'अ' में ही सम्पूर्ण मन्त्रों की शक्ति समा जाती है सम्पूर्ण वेद शास्त्रों का यह आश्रय होता है सभी ब्रह्माण्ड इसी ''अ'' में ही होता है इसीलिए सद्‌गुरू देव की सेवा अनन्य भाव से करना चाहिए।

स्कन्द पुराण में कहा गया है–

(1) एकाक्षर मन्त्र का उपदेश करने वाले तत्त्वज्ञ गुरू को, जो गुरू नहीं मानता वह (दीक्षित या अदीक्षित) 100 जन्मों में कुत्ता होकर फिर चाण्डाल की योनि में जन्म लेता है।

(2) सद्‌गुरू का त्याग करने से मृत्यु शीघ्र (व पीड़ादायी) होती है मन्त्र को छोड़ने से दरिद्रता आती है गुरू एवं मन्त्र का त्याग करने से रौरव नरक में भयंकर कष्ट मिलता है।

(3) शिव (परब्रह्म) के क्रोध से गुरूदेव रक्षण करते हैं लेकिन गुरूदेव के क्रोध से शिव जी रक्षण नहीं करते। गुरूदेव के अपमान से इष्ट तत्क्षण ही नाराज हो जाते हैं; क्योंकि तत्त्ववेता सद्‌गुरू (दीक्षा गुरू) साक्षात् इष्टमय (अभिन्न) होने के कारण प्रभु का ही हृदय है अतः सब प्रयत्न से गुरूदेव की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो सदा ही गुरूदेव की सेवा करना चाहिए।

वैसे तत्त्ववेत्ता सद्‌गुरू को किसी भी जीव (पशुत्वभावी आत्मा) की सेवा लेने की आवश्यकता नहीं होती; क्योंकि वह तो प्रभु (शिव) के पूर्ण भाव के कारण सदा ही **अक्षय–आनन्द**, विश्रांति एवं परम् सुख के समुद्र में गोता लगाते रहते हैं सदा ही ब्रह्ममय रहते हैं, परंतु ऐसे महापुरूष की सेवा तो वास्तव में होनी ही चाहिए, भले ही उनकी (शुद्ध अंशभूत शिव अर्थात् दुर्गा पुत्र) की कोई इच्छा न हो; परंतु हमें अपने ही कल्याण के लिए उनकी सेवा

अवश्य ही कल्पान्त तक करना चाहिए।

धर्म–शास्त्रों वेद तथा पुराणों के अनुसार–

"गुरू ही शिव, पराशक्ति, विष्णु, ब्रह्मा तथा अन्य देव हैं गुरू ही धर्म हैं गुरू में निष्ठा ही परम् तप है। गुरूभक्ति ही सब से श्रेष्ठ तीर्थ है, अन्य तीर्थ निरर्थक है। गुरू ही बन्धु, बान्धव, आत्मा और जीव हैं गुरू से अधिक और समान भी अन्य कुछ नहीं हैं।" इसीलिए हमें हमेशा सद्गुरू परमात्मा की ही सेवा को साधन, साध्य एवं साधना समझना चाहिए। गुरूदेव को ही ध्यान, ध्येय, और ध्याता समझना चाहिए सब कुछ केवल सद्गुरू देव ही हैं ऐसा समझना चाहिए, परंतु स्मरण रखना चाहिए कि **सद्गुरू किसी देह (शरीर, पिण्ड) का नाम नहीं, वह तो तत्त्व का नाम है। पराविद्या का नाम है साक्षात् शिव स्वरूप अंशभूत शिव ही का नाम है,** इसीलिए हमें गुरूदेव का स्मरण उनके असली रूप (शिव रूप) में ही करना चाहिए। सद्गुरू स्वयं ही अपनी बाहरी देह को शव तुल्य मानते हैं, परंतु हमें उन शिवजी की सेवा हेतु इसी परात्पर शरीर (बाहरी चोला) को माध्यम बनाना अनिवार्य है; क्योंकि परात्पर से ही पर तत्त्व तक पहुँचा जाता है।

पहली सीढ़ी पार किए बिना कोई भी अंतिम सीढ़ी पर नहीं पहुँच सकता। उनकी चरण पादुका, चरण अमृत, **चरण रज की सेवा भी** साक्षात् परमेश्वर समझकर करना चाहिए। साक्षात् गुरूदेव सेवा का अवसर दे तो बहुत बड़ी कृपा है। पद्मपुराण और श्री चैतन्य–चरितामृत मध्य 12/36–38 का सार है कि–प्रत्येक मनुष्य को साक्षात् सद्गुरू देव की सेवा करना चाहिए, परंतु लीलावश सद्गुरू (भौतिक या सूक्ष्म शरीर से) हमें न दिखें या विदेश यात्रा पर हों तो उनकी वस्तुओं (तदीय की सेवा) से ही हम परम् फल प्राप्त कर लेते हैं। यह वास्तव में गुरूदेव का महान अनुग्रह है, परंतु स्मरण रहे इस तदीय का प्रमुख अंग गुरूदेव का प्रिय ज्ञानी शिष्य ही है, जो उनकी परम् कृपा से साक्षात् उन्हीं के अपरोक्ष भाव में, परब्रह्म से एकाकार होकर है; क्योंकि उसकी सेवा से भी गुरूदेव वही विज्ञान फल देते हैं जो कि स्वयं की सेवा से प्राप्त होता है।

परम गुरु– जैसे एक दीपक दूसरे को प्रज्वलित करता है वैसे ही शिष्य में ब्रह्मभाव प्रकटाते हैं वो परम गुरु हैं न कि लौकिक रीतियों या मात्र धर्म के अंगों की शिक्षा देने वाले। यद्यपि ये धर्मांग भी ठीक हैं पर मात्र धर्मांग पालन स्वर्ग तक सीमित हैं और उनको निष्काम भाव से युक्त होकर करने पर मात्र ब्रह्मवेत्ता सद्गुरु मिलता है न कि सीधे ही कैवल्य.....। जिसके दर्शन से तत्क्षण ही आनंद की अनुभूति हो और भय का नाश हो जाये न कि भयभीत करे, जो वेदांत का मूल एकत्व का पक्षधर हो, जो अपनी देह को शव तुल्य मानता हो वो परम गुरु है। जो अतिशीघ्र निष्पापता के लिए गुप्तविद्या द्वारा (उस विद्या के भलीभांति क्रियान्वयन तथा चिंतन का प्रयास तो शिष्य को करना ही होगा) उसके शिष्यों के दुःखों का समूल नाश कर दे वही परम गुरु है।

वही अष्टमूर्ति शिव ही है। परलौकिक मुक्ति अलग बात है, महावाक्यों के दर्शन या उनको पढ़कर सोऽहम् सोऽहम् चिल्लाना अलग बात है और आत्मसात से अपरोक्षानुभूति अलग बात अतः सद्गुरू सब कुछ बताकर भी चिंतन और निर्विकल्प की ही आज्ञा देते है।

उठो जीव! शिव बन जाओ।

उठो जीव! शिव बन जाओ।
उठो जीव! शिव बन जाओ।
अपनी निजता पहचान जाओ।
व्यर्थ के संघर्ष में क्यों रमे हो,
अद्वैत तत्व में तुम रम जाओ।
उठो जीव! शिव बन जाओ।

अभिन्न मार्ग को आज सोचकर,
समय को तुम पावन बनाओ।
पंचक प्रकृति पराशक्ति के,
चिंतन से तुम युक्त जाओ।
उठो जीव! शिव बन जाओ।

'जान' जाने पर क्या सोचोगे
तत्क्षण जीव दरश तुम पाओ।
जीवन के परम लक्ष्य को,
आज ही तुम निश्चित पाओ।
उठो जीव! शिव बन जाओ।

सत्यम् शिवम् और सुंदरम् की,
दिव्य सरिता में बहते जाओ।
साधारण कर्मकांड की तोड़ श्रृंखला,
मीरा सा महान हो जाओ।
उठो जीव! शिव बन जाओ।

मनुष्य जनों के विभिन्न दु:खों से,
आस्तिकता को दृढ़ बनाओ।
पीड़ा–दु:ख को अनुभव करके,
भवरोग से मुक्त हो जाओ।
उठो जीव! शिव बन जाओ।

करते हुए पावन सुमिरण,
अंतःकरण को शुद्ध बनाओ।
सर्वजीव में परम को देखकर,
सर्वज्ञ महान तुम हो जाओ।
उठो जीव! शिव बन जाओ।

बुद्ध के आदर्श पाकर,
अहिंसा के रूप हो जाओ।
बलि–मदिरा का करके त्याग,
चराचर की दुआ तुम पाओ।
उठो जीव! शिव बन जाओ।

संकीर्णता की सोच–सोचकर,
जीवन को नहीं तुच्छ बनाओ।
अद्वैत ज्ञानदाता की सेवा से,
सोऽहं में तुम रम जाओ।
उठो जीव! शिव बन जाओ।

जगत में कौन दूजा दानी,
हे आशुतोष! दया दिखाओ।
अंशभूत के अश्रु देखो,
दर्शन दे दो हे कैलासी।
हे नाथ! अब तो न रूलाओ
हे शिव! अब न रुलाओ।

मात्र शब्द ब्रह्म परम मुक्ति नहीं देता, परब्रह्म ही मुक्ति देता है और यह परब्रह्म संज्ञा कुछ पुराणों में "अपरोक्षता" को ही कहा है।

संसार रुपी वन में प्रवेश करने के बाद जब शांति और आनंद का कोई मार्ग नहीं दिखाई देता, उस समय जो आत्म ज्ञान देकर **अक्षय आनन्द** की अनुभुति कराते हैं वे ही परम गुरु हैं।

गुरुगीता कहती है कि–

करुणाखड्गपातेन छित्वा पाशाष्टकं शिशोः।
सम्यगानन्दजनकः सदगुरु सोऽभिधीयते।।

हे देवी उमा! करुणारूपी तलवार के प्रहार से शिष्य के आठों पाशों को काटकर निर्मल सम्यक् आनंद के जनक होने से उस **अक्षय आनन्द** का प्रदाता होने से ही वे सद्गुरु कहे जाते हैं अर्थात् ऐसे आनंद देने वाले को सद्गुरू कहा जाता है।

गुरुकृपा से ही अष्ट पाशों का नाश होता है निंदा का स्वभाव नष्ट, सांसारिक जगत के व्यर्थ के संशयों का नाश और आध्यात्मिक जिज्ञासाओं का समाधान करके उन जिज्ञासाओं का अंत भी। सम्यकता से भय का नाश, प्रतिष्ठा की आकांक्षा नष्ट, कुल का द्वैतमयी अभिमान नष्ट, संपत्ति का अहं दूर ये सब गुरुकृपा ही तो है।

आगे सुनें–

महादेव कहते हैं कि हे स्कंदमाता! जिन कल्पपर्यंत या कल्प के चौदहवाँ भाग पर्यंत तक भोग भोगने वाले देवताओं को जो मानव मना रहे हैं वे देवता भी भोगकाल के बाद नष्ट हो जायेंगे अर्थात् पुनर्जन्म पायेंगे ही, पर वे भी परम अभिन्न भावी ब्रह्मनिष्ठों की सेवा के बिना परम पद नहीं पा सकते, फिर मानव उनकी सेवा से कौन सा ज्ञान पा लेंगे? पर हाँ, उनका सेवन भौतिक सम्पति अवश्य ही दे सकता है पर आत्म बोध नहीं।

आगे कहा है कि–

काशी क्षेत्र, अवंतिका, हिमालय में जाकर रहने से, कठोर तप करने से और जप करने से और उन तीर्थों में नित्य स्नान और त्रिकाल संध्या करने से भी जिस फल की प्राप्ति होती है वो सारा फल और उसका सहस्त्रों गुना मात्र ब्रह्मवेत्ता सद्गुरु के श्रीचरणों के ध्यान से आधी से भी आधी घड़ी में ही मिल जाता है।

हे शिवे! गुरु कोई शरीर नहीं, वो अपरोक्षता के कारण साक्षात् निराकार, निर्गुण और गर्भनाशक गुणातीत परब्रह्म है उनकी सेवा ही तीर्थराज गया की सेवा है और उनका शरीर अक्षय वटवृक्ष, उनके श्रीचरण साक्षात् वैकुंठ के नारायण महाविष्णु के चरण ही हैं वहाँ लगाया हुआ मन तदाकार हो जाता है।

गुरुसेवा गया प्रोक्ता देहः स्यादक्षयो वटः।
तत्पादं विष्णुपादं स्यात् तत्र दत्तमनस्ततम।।

अतः केवल परम वीतराग मुनित्व धारक और ज्ञाननिष्ठ की ही सेवा में तत्पर रहें उन परम गुरु की प्राप्ति के लिए ही सारी चेष्टायें करें।

हे देवी! यदि निषिद्ध गुरु का सेवन किया तो वो शिष्य अपने दुष्ट संकल्प और भेदमयी अज्ञान से कल्प–कल्पांतरों तक नरक में दंड पाता है। पितरों को परम तृप्ति मात्र गुरुचरणों की सेवा से ही मिलती है, सच में गुरुदेव (विशुद्ध ब्रह्म) की सेवा ही गया की सेवा है उनका शरीर ही अक्षय वटवृक्ष है।

अपने ज्ञानदाता या वैराग्यदाता या मंत्रदाता गुरु के चरणों में जाकर वहाँ उनको प्रेम से कुछ समय सेवा अवश्य ही करें। शायद लोगों को पता नहीं कि गुरु क्या होता है, पुनः सुन लीजिए–जो साक्षात् शिव जी की वाणी गुरुगीता में है।

1. तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सर्वसंगविवर्जितः। विहाय शास्त्रजालानि गुरुमेव समाश्रयेत्।।
2. गुरुर्देवो गुरुर्धर्मो गुरौ निष्ठां परं तपः। गुरोः परतरं नास्ति त्रिवारं कथयामि ते।।
3. काशीक्षेत्रं निवासश्च जाह्नवी चरणोदकम्। गुरुर्विश्वेश्वरः साक्षात् तारकं ब्रह्मनिश्चयः।।
4. शिवपूजारतो वापि विष्णुपूजारतोऽथवा। गुरुतत्वविहीनश्चेत्तत्सर्वं व्यर्थमेव हि।।

अब क्या चाहिये? सभी तीर्थों की आत्मा साक्षात् गुरु है, संपूर्ण मंत्रों का प्राण गुरु है। गुरु पूजन से सभी लोक–परलोक के देव और त्रिदेव, गोलोक और सदाशिव लोक के इष्ट, मणिद्वीप की माँ, पंचक प्रकृति, अष्ट मातृकायें, दस महाविद्या, नवदुर्गा, सभी सहस्त्रों ऋषि, संत, भक्त तृप्त हो जाते हैं, विश्वास न हो तो कोई बात नहीं, भविष्य में परलोक में पुनः कोई यही कहेगा, परंतु तब बहुत देर हो चुकी होगी। खैर......

हे बंधुओं! संसार के सारे तीर्थों का महापुण्य (चाहे जिस उद्देश्य से हो) गुरु की सेवा–सुश्रूषा करके प्राप्त हो जाता है। अपने माता–पिता का परम कल्याण चाहो, पितरों का कल्याण चाहें तो भी

गुरुमेव समाश्रयेत्
गुरुमेव समाश्रयेत्
गुरुमेव समाश्रयेत्
ऊँ गुरवे नमः.........।

सच मानें तो यथार्थ कल्याण रूपी ब्रह्मभाविता के लिए ही सद्गुरु की ही आवश्यकता होती है अन्यथा शेष गुरु तो मात्र लौकिक शिक्षा या कीर्ति के लिए उपाय ही बताते फिरते हैं। सांसारिक कष्टों से मुक्ति के लिए मंत्र साधना के लिए सविधि अनुष्ठान भी करा सकते हैं और ऐसे ऐसे तरीके भी बता सकते हैं जिनको अपना कर सहस्त्र कोटी मंवंतरों तक स्वर्ग में भोग प्राप्त होता रहे.......पर पुण्य क्षय होने पर आपको कभी न कभी तो फिर से उस पुरुष के माध्यम से पैदा किया जायेगा, जो संसार का प्राणी है और किसी स्त्री के गर्भ के माध्यम से आपको पुनः संसार में आने पर विवश कर देगा। इस कारण ही जिसकी स्पृहाओं का अंत हो गया, मात्र और मात्र वही आपको परम गति दे सकता है शेष बकवास है और मात्र औपचारिकता को ही निभाना है।

सोचो, पूर्व कोटी कल्पों से आप भटक रहे हो किसी चतुर्युगी में आप अनेक बार चक्रवर्ती राजा बने थे, किसी मंवंतर में इंद्र भी, कभी शतसुतों के पिता और परम से भी परम बलिष्ठ स्वरूप......पर चिता में फिर भी बार–बार आपकी देह को जलना ही पड़ा न और आज देखो......मुक्त नहीं हुये, अब फिर भी मंत्रज्ञों, कर्मकांडियों, सिद्ध तंत्रज्ञों से मात्र चमत्कारिक सिद्धियाँ ही चाह रहे हो न कि पराविज्ञान की अपरोक्षता हेतु प्रार्थना.... कितना बड़ा आश्चर्य है! ब्रह्मवेत्ता सद्गुरु के अवतार स्थल से आधे कोश का मंडल शिव क्षेत्र कहलाता है जहाँ यदि शिष्य की मृत्यु हुई हो तो वो सायुज्य मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

और यही महिमा और दूरी 12ज्योतिर्लिंगों की भी है पर ऋषि स्थापित लिंग से कोश के चौथे भाग की दूरी का मंडल भी मृत्यु पर सायुज्य मुक्ति देता है इसके लिये शेष योग्यता अनिवार्य नहीं, मात्र दीक्षा तो अनिवार्य है ही पुरुषों के लिए।

*****

अध्याय–33

गुरू सान्निध्य का फल अमृत तुल्य

गुरु बिन गति नहीं होती, गुरु आनंद का मूल है। गुरु की शरणागति के बिना सभी तीर्थों में निवास से भी कैवल्य मुक्ति नहीं मिलती, सप्तसागर पर्यंत के सारे तीर्थों (सप्तपुरियों) में निवास से भी, उनकी सेवा से भी और सहस्त्रों बार स्नान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है वही फल ब्रह्मवेत्ता सद्गुरू के चरणोदक की मात्र एक बूँद पान कर लेने से ही शिष्य प्राप्त कर लेता है और पतिव्रता नारी अपने पति (गुणी, अवगुणी कैसा भी पर भागवतजी के अनुसार पातकी न हो) के चरणोदक से भी यही फल पा लेती है परंतु इस बात को न भूलें कि–

पाखण्डिनः पापरता नास्तिका भेदबुद्धयः।
स्त्रीलम्पटा दुराचाराःकृतघ्ना बकवृत्तयः।।

अर्थात् पापरत की गुरुरूप में सेवा न करें, सात प्रकार के गुरु और उनके ग्रहण या त्याग संबंधी महादेव की वाणी स्कंद पुराण में स्पष्ट ही लिखी है सुनें–

हे देवी! गुरु कई प्रकार के होते हैं।

जिन्हें मात्र अपर विद्या रूपी शास्त्रों का शाब्दिक ज्ञान है पर अनुभव से युक्त नहीं अर्थात् यथार्थ ज्ञान, अनुभव से हीन और वैराग्य से हीन, मुमुक्षा से हीन तथा ब्रह्मज्ञान से हीन, परम वाक्यों का अंतःकरण में पूर्णतः प्रवेश नहीं हुआ, न ही तद्रूप हुये, मात्र ग्रंथों का पाठन मात्र किया है या उन शब्दों को अपनी बुद्धि की क्षमता से याद कर लिया है। वे मात्र लौकिक शिक्षा दाता सूचक है।

वाचक गुरु–इन्हें भी शाब्दिक ज्ञान होता है पर जाति और वर्ण के बंधन में जकड़े रहते हैं इस कारण ही मात्र वर्ण या आश्रम देखकर अपना ज्ञान देते हैं आत्मभावी नहीं होते। ये भी आत्मज्ञान से शून्य होते हैं इसी कारण सर्वमय ब्रह्म की अपेक्षा बाह्य औपचारिक वर्ण के अनुसार ही इनका व्यवहार होता है।

इस कारण भी इनकी अपेक्षा, यदि भविष्य में कोई सर्वमय ब्रह्मभाव से भावित अपरोक्षानुभूति वाले परमोत्तम आध्यात्मिक परमगुरु ब्रह्मवेत्ता की प्राप्ति हो तो (शिवपुराण के अनुसार भी) उनकी ही सेवा और महावाक्यों के आत्मसात हेतु ही प्रथम प्रयास होने पर ही कल्याण संभव है; क्योंकि ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार भी सभी प्रकार के गुरुओं में यह ब्रह्मज्ञानी गुरु ही परमोत्तम, सबका गुरु और परम राजा हैं।

बोधक गुरु द्वैतमय मंत्रो को ही जाप के लिए देने वाले होते हैं ये मात्र मंत्रों को ही दीक्षा में देते हैं पर शिष्य को आत्मा, वैराग्य, मुमुक्षा अथवा निवृत्ति मार्ग का अनुसरण नहीं करा सकते, न ही ये जन्म और मृत्यु से शिष्य को सदा के लिये मुक्त कर सकते हैं इनको मात्र बोधक गुरु कहा जाता है। ये सामान्य लोग मात्र मंत्र देकर गुरु बनना ही स्वीकार कर लेते हैं परंतु परमगुरु ही सभी ग्रंथों में परम पूज्यनीय है। यही परम सत्य है। कामी, क्रोधी, भेदज्ञ व आसक्तगुरु पूजा व दर्शन के योग्य नहीं।

यस्सकृदुच्चारणः संसारविमोचनो भवति।
सर्वपुरुषार्थसिद्धिर्भवति।
न च पुनरावर्तते
न च पुनरावर्तत इति।

गुरु ''परमब्रह्मविद् रूपी अपरोक्ष ज्ञानी'' शब्द का एक बार भी उच्चारण कर लेने से संसार सागर से मुक्ति प्राप्त हो जाती है, गुरु के उच्चारण से चारों पुरुषार्थ सिद्ध हो जाते हैं, फिर वह कदापि इस संसार से पुनरागमन नहीं करता कभी पुनरावर्तन नहीं करता, यह सत्य है......बार–बार सत्य है.....।

जिसके द्वारा निर्दोष विशुद्ध, निर्मल तथा एकरुप परमात्मा के स्वरूप का साक्षात्कार अथवा बोध होता है उसी का नाम ज्ञान है। "नारद पुराण पूर्वभाग द्वितीय पाद के अध्याय 46 के अनुसार" और इस ज्ञान को जो शिष्य अपने तद्रूप गुरु से आत्मसात कर के एकरूप हो गया हो उस शिष्य का द्वैत भी अद्वैत में बदल जाने से वो परम गुरु ही हो जाता है कारण भेद कहीं भी नहीं जो जगत की यथार्थ सच्चाई बताकर ईश्वर की ओर शिष्य के चित्त को मोड़ने का प्रयास करे वही परम गुरु है।

गुरू सेवा, गुरू सान्निध्य का फल अमृत तुल्य एवं अनन्त है। ऐसे सद्‌गुरू जिनकी महिमा का गान करने में वेद भी नेति–नेति कहकर थक जाते हैं, भला ऐसा कौन मूर्ख होगा? जो अपने सिर को उन परमदेव के चरणों में रखना नहीं चाहेगा। ऐसा कौन होगा? जो उन सर्वोच्च सत्ता की कृपा रूपी अमृत वर्षा में भीगना न चाहे, **ऐसा कौन है? जो उनकी सेवा को छोड़कर 30–40 वर्षों के क्षणिक भोगों की प्राप्ति हेतु संघर्ष कर अपना जीवन बर्बाद कर सके** अर्थात् सांसारिक पद (डॉक्टर, इंजीनियर, तहसीलदार, न्यायाधीश से लेकर राष्ट्रपति पद तक का सफर) एवं क्षणिक कीर्ति की प्राप्ति हेतु जो गुरूसेवा को छोड़ते हैं, वह मनुष्य पूर्व पापपुंजों के कारण निःसंदेह दुर्घटना ग्रस्त होकर 84 लाख योनियों के बन्धन में पड़ते हैं अतः लक्ष्य केवल प्रभु और गुरू ही समझो।

गुरूकृपा के बिना कुछ भी सम्भव नहीं। यदि किसी पर गुरूकृपा नहीं है, तो उसको प्राप्त सारी भौतिक सम्पदाएँ तुच्छ हैं और यदि किसी के पास मात्र गुरूकृपा प्रसाद है, तो वही यथार्थ में परम् धनवान, परम् भाग्यशाली है वही एक मात्र युग पुरूष है, साक्षात् परात्पर ब्रह्म ही है। ऐसे **सत् शिष्यों से ही भूमि पावन होती है, मेघ जल बर्षाते हैं, वृक्ष फल देते हैं, वायु प्रवाहमान होती है, खेत हरे भरे होते हैं। यद्यपि सब कुछ तत्त्ववेता गुरूदेव की कृपा से होता है परंतु सत् शिष्य को महिमावान बनाने में ही गुरूदेव को आनन्द की प्राप्ति होती है** इसीलिए सत् शिष्य के परिवार को भी सहज ही दुर्लभ मोक्ष भी सुलभ होता है।

ब्रह्मवेता सद्‌गुरू तो सम्पूर्ण विश्व को, सभी ब्रह्माण्डों को अपना परिवार मानते हैं इस कारण पृथ्वी पर उनकी उपस्थिति मात्र से उनके परिवार (वसुधैव कुटुम्बकम्) का कल्याण हो सकता है परंतु गुरूदेव की आज्ञा मात्र यही है कि–''जहाँ सत् शिष्य हो मैं केवल उसी के परिवार (जिसमें कि उस शिष्य का सान्निध्य प्राप्त कर्ता कुछ सदस्य रहते हैं या उन सत् शिष्यों की आज्ञा का जो पालन करता है) को ही शीघ्र ही विश्रांति तक, बिना कठिन प्रयास के ही पहुँचा देता हूँ।'' कहने का तात्पर्य है कि जहाँ तक हो हमें सद् गुरूदेव की सेवा और महिमा को अपने जीवन का अंग बनाना चाहिए, तभी कल्याण सम्भव है।

संहारकर्ता महारूद्र प्रभु ने अपने वचन में स्पष्ट ही कहा है कि, ''हे प्रिये पार्वती! वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास आदि मन्त्र, यन्त्र, मोहन, उच्चाटन आदि विद्याएँ शैव, शाक्त आगम और अन्य सर्व मत–मतान्तर, ये सब बातें गुरूतत्त्व (कि वे साक्षात् शिव स्वरूप ही हैं और सम्पूर्ण जगत शिवमय ही है) को जाने बिना, गुरू सेवा किए बिना, भ्रांत चित्त वाले जीवों को पथभ्रष्ट करने वाले हैं और जप, तप, व्रत, तीर्थ, यज्ञ, दान आदि सारे कर्मकाण्ड व्यर्थ हो जाते हैं। इसीलिए हे देवी! शिष्य या अन्य मनुष्य को सर्वप्रथम सद्गुरू नाथ को प्रसन्न करने की ही चेष्ठा करना चाहिए। हे देवी! आत्मा में गुरू बुद्धि के सिवाय कुछ भी सत्य नहीं है **ब्रह्मा, विष्णु, रूद्र, महेश, सदाशिव सहित समस्त ब्रह्माण्ड गुरूदेव में ही समाया है। यही सत्य है यही महासत्य है यही परम सत्य है।** गुरूदेव के समान और अधिक भी अन्यत्र कुछ भी नहीं माता का कुल, पिता का कुल, बन्धु बान्धव, नाते–रिश्तेदार, पत्नि, बच्चे सब कुछ गुरू ही हैं उन्हीं की कृपा से हृदय की ग्रन्थि छिन्न होकर सब संशय कट जाते हैं और सर्व कर्म नष्ट हो जाते हैं'' और शिष्य गुणातीत–रूपातीत भाव को प्राप्त होकर एकाकी, निःस्पृह, शान्त, चिन्तारहित, **अक्षय–आनन्द** से युक्त, सर्वमय, अभिन्न भावी, सदा आत्मा में रमण करने वाला आत्मज्ञानी, सर्वोऽहमस्मि के कारण समद्रष्टा होकर मुक्तावस्था (सर्वज्ञ, ब्रह्मज्ञानी, अपरोक्ष विज्ञानी) प्राप्त करता है, इसीलिए मनुष्यों को सदा सद्गुरू (ब्रह्मरस का धनी दिव्य अंशभूत शिव) देव की सेवा ही प्रधान रूप से करनी चाहिए। सर्वप्रयत्नों से अनासक्त होकर शास्त्र की मायाजाल छोड़कर सद्गुरू प्रभु के चरणों का सान्निध्य प्राप्त करने के लिए ही हर पल प्रयास करना चाहिए यही धर्म का एकमात्र सार है।

*****

अध्याय–34

शीघ्र कल्याण का उपाय (गुरूभक्ति)

आगे शिव शम्भु कहते हैं कि–''हे महेश्वरी! शीघ्र कल्याण करने का जो यह उपाय (गुरूभक्ति) है, वह परमेश्वर की दिव्य कृपा से, अनेक जन्मों के पुण्य प्रसाद से एवं निष्काम भक्ति से ही जीव को प्राप्त होती है और इस रहस्य को अपनाकर जीव शीघ्र ही शिवभाव को प्राप्त कर जीवभाव नष्ट कर लेता है तथा वह परमेश्वर के साथ एकत्व स्थापित कर कृतकृत्य हो जाता है। अतः अपने आश्रम, जाति, कीर्ति आदि को विशेष महत्त्व न देकर सदा गुरूमय होना चाहिए। यही शिव का आदेश है..... यही शिव का आदेश है.....यही शिव का आदेश है....।''

संतों एवं प्रभु की निम्नलिखित वाणियों में भी शीघ्र कल्याण का उपाय मात्र गुरू भक्ति ही बताया है; क्योंकि धर्म की एक मात्र आज्ञा एवं रहस्य मात्र सद्गुरू (मार्गदर्शक और प्रत्यक्ष कृपा करने वाली सत्ता) तत्त्व ही है।

स्वामी विवेकानंदजी कहते हैं : भगवान से मिलने की इच्छा करने वाले मुमुक्षु के नेत्र श्रीगुरू ही खोलते हैं गुरू और शिष्य का सम्बन्ध पूर्वज और वंशज के सम्बन्ध जैसा ही है। श्रद्धा, सच्चाई, नम्रता, शरणागति और आदरभाव से शिष्य गुरू का मन मोह ले तो ही उसकी आध्यात्मिक उन्नति हो सकती है। विशेष रूप से ध्यान में रखने की बात यह है कि **जहाँ गुरू–शिष्य का नाता अत्यन्त प्रेम और आत्मभाव से युक्त होता है, वहीं प्रचण्ड आध्यात्मिक शक्ति के महात्मा उत्पन्न होते हैं।**

स्वानुभूति ज्ञान की परम सीमा है वह स्वानुभूति ग्रन्थों से नहीं प्राप्त हो सकती। पृथ्वी का पर्यटन कर चाहे आप सारी भूमि पदाक्रांत कर डालें, हिमालय, काकेशस, आल्प्स पर्वत लांघ जायें, समुद्र में गोता लगाकर उसकी गहराई में बैठ जायें; तिब्बत देश देख लें या गोबी (अफ्रीका) का मरूस्थल छान डालें, स्वानुभव का यथार्थ धर्म–रहस्य इन भटकनों से, श्रीगुरू के कृपा–प्रसाद के बिना किसी भी काल में ज्ञात नहीं होगा इसीलिए भगवान की

कृपा से जब ऐसा भाग्योदय हो कि श्रीगुरू दर्शन दें, तब सर्वान्तःकरण (मन, बुद्धि, चित्त) से श्रीगुरू की शरण लो, उन्हें ऐसा समझो जैसे यही परब्रह्म हों, उनके बालक बनकर अनन्यभाव से उनकी सेवा करो, इससे आप धन्य होंगे। ऐसे परम् प्रेम और आदर के साथ जो श्रीगुरू के शरणागत हुए, उन्हीं को और केवल उन्हीं को सच्चिदानन्द प्रभु ने प्रसन्न होकर अपनी परम् भक्ति दी है परम् विज्ञान से ओतप्रोत किया है और अध्यात्म के अलौकिक चमत्कार दिखाये हैं।

स्वामी विवेकानंदजी आगे कहते हैं कि–

''सैकड़ों कोस चलकर जाने से भी यदि सत्पुरूष के दर्शन मिलते हों तो मैं पैदल चलकर जाने के लिए तैयार हूँ; क्योंकि ऐसे ब्रह्मवेत्ता महापुरूष के दर्शन से कैसा आध्यात्मिक लाभ मिलता है, वह मैं अच्छी प्रकार से जानता हूँ।''

देवकी पुत्र श्रीकृष्णजी उद्धव को समझाते हुए अमृत–वाक्य कहते हैं कि–

"हे उद्धव! तुम गुरूदेव की उपासना रूप पराभक्ति के द्वारा अपनी ज्ञान की कुल्हाड़ी को तीखी कर लो और उसके द्वारा धैर्य एवं सावधानी से जीवभाव को काट डालो, ताकि चित्त सदा विश्रांत रहे।" स्मरण रहे जब उद्धव जी ने गोपियों की विरह दशा देखी थी तब न तो उद्धव जी अनन्य भक्त थे न ही यथार्थ ज्ञानी, इस रहस्य को न जानकर जो भी ज्ञान के विषय में मूढ़ता दिखाकर कहता है कि ''उन्होंने ज्ञान–विज्ञान को लघु समझकर भक्ति का आश्रय लिया।'' वह मूर्ख है; क्योंकि पराम्बा के अनुसार ज्ञान तो भक्ति का ही परम् फल है फिर यह भक्ति से लघु कैसे हो सकता है? इसी कारण तो श्री कृष्ण प्रभु अर्जुन को समझाते हुए कहते है कि–

''**हे अर्जुन! जिसके मन में गुरूभक्ति के लिए अनुराग होता है, जिसके हृदय में गुरूभक्ति के लिए उत्कंठा होती है, जिसे गुरूसेवा के सिवाय और कुछ भी अच्छा नहीं लगता केवल वही भक्त तत्त्वज्ञान का आधार है और वह ज्ञानी भक्त प्रत्यक्ष परात्पर देवता ही है।** हे सखा! ज्ञानी भक्त पराभक्ति, अभिन्न (अद्वैत) भाव, सर्वमयभाव के कारण साक्षात् मेरा ही स्वरूप है; क्योंकि ''मैं'' जो और जितना भी हूँ वह अच्छी तरह से जानता है। हे प्रिय! चारों

प्रकार के भक्तों में यही गुरूभक्ति करने वाला तत्त्वज्ञानी भक्त ही मुझे परम् प्रिय है समूचे ब्रह्माण्ड में उस शिष्य से बड़कर मेरे लिए अन्य कोई भी नहीं; क्योंकि वही इस मृत्युलोक के जीवों की प्यास शान्त करने वाली परागंगा है।'' यही प्रभु श्रीकृष्ण का वास्तविक सार है, जिसको स्वीकार कर कोई भी अपना जीवन सफल कर सकता है।

कबीरदासजी ने तो यहाँ तक कहा है कि यदि सिर देकर भी सद्गुरू देव की प्राप्ति होती है तो भी यह बहुत सस्ता सौदा है–

यह तन विष की बेलरी, गुरू अमृत की खान।
सिर दीजे सद्गुरू मिले, तो भी सस्ता जान।।

*****

अध्याय–35

जगत मिथ्या गुरु ही सत्य

विश्व तो विश्व है कोई भी ब्रह्माण्ड जो दिखाई दे वह भी असत्य है एक मात्र परब्रह्म ही सत्य है। जो समय के अधीन हो वह रूप भी परब्रह्म नहीं, जिन वस्तुओं में समय के साथ परिवर्तन हो जाए उनको भी यह अक्षयरुद्र सत्य नहीं मानता, सत्य कभी भी नहीं बदलता यह जगत नेत्र, चक्षुशक्ति और प्रकाश इन तीनों की उपस्थिति में दिखाई देने के कारण दृश्यात्मक तो है पर इसमें विक्षेपण होता रहता है सदैव परिवर्तन होता रहता है इस कारण यह सत्य नहीं, जो बदले वो मिथ्या है परम सत्य नहीं, इस कारण हम स्वयं जिन रुपों का नाश होना है उसको इष्ट भी नहीं मानतेय पर हाँ वह प्रेम का माध्यम अवश्य ही बन सकता है और उन रूपों से व्यवहारिक जगत भी चलता रहता है पर वो रूप भी परब्रह्म की संज्ञा नहीं पा सकता। जो रूप पहले नहीं था, बीच में धारण किया गया और महाप्रलय आने पर फिर क्षय (नष्ट) होगा वह भला किस आधार पर परब्रह्म कहलायेगा, वह मूर्ति की संज्ञा तो पा सकता है पर ब्रह्म नहीं।

अथवा यदि वह कभी भी नष्ट न हो तो ब्रह्म की उपमा इस अक्षयरुद्र के अनुसार प्राप्त कर सकता है। पर यदि उसमें भी विकार आ जाये या उसकी भी आयु हो तो वह रूप न तो सत्य है न ही परब्रह्म। उपासना मार्ग से वह रूप महान विशुद्ध होने से पाप नष्ट तो कर सकता है पर ब्रह्म की संज्ञा नहीं पा सकता पर हाँ जिस चौतन्य शक्ति का वह रूप है वह परम अजन्मा और अमर चौतन्य निश्चित ही परब्रह्म कहने के योग्य है। वेद अथवा शास्त्रों की परिभाषाओं का क्या है वेदों को स्वयं अपर विद्या घोषित किया है वे ब्रह्म लोक तक के फल देने वाले हैं और उनके पाठ से पाप नष्ट होकर कालांतर में (अपरोक्ष ज्ञान प्राप्त न हो पाए तो) पुनः भूलोक पर जन्म होना सुनिश्चित है एक बड़ा कारण सुनिए–

उनमें जिन इंद्र, वरुण आदि का प्रसंग आया है वे इंद्र स्वयं मात्र एक पद है जो अपना कार्यकाल समाप्त करके स्वयं ही बेचारे गर्भाधान संबंधित नियमों में बंध जाते हैं अर्थात उन देवताओं की आत्मा भी किसी के वीर्य में प्रवेश करके गर्भ में बेचारी भ्रूण बनती है। अतः इस कारण अपने आपको परम ज्योति और ब्रह्म स्वरूप मानकर तद्भाव पा लेना चाहिए न कि शब्दों में उलझना चाहिए।

अष्टावक्र जी ने कहा है कि–

यदि विश्व सत्य होता तो सुषुप्तिमें भी उसकी प्रतीति होनी चाहिये थी किन्तु उस समय इसकी कुछ भी प्रतीति नहीं होती इसलिये यह स्वप्नके समान असत् और मिथ्या है। यदि यह जगत् सत्य हो तो आत्माकी अनन्ततामें दोष आता है और श्रुति अप्रामाणिक हो जाती है तथा ईश्वर (भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र) भी मिथ्यावादी ठहरते हैं। ये तीनों ही बातें सत्पुरुषोंके लिये शुभ और हितकर नहीं हैं।परमार्थ–तत्त्वके जाननेवाले भगवान् कृष्णचन्द्रने यह निश्चित किया है कि श्न तो मैं ही भूतोंमें स्थित हूँ और न वे ही मुझमें स्थित हैं।.................. अतः कहा जा सकता है कि हमें महास्वप्न रूपी नाशवान संसार में प्राप्त होने वाली क्षणिक कीर्ति, पत्नि–पुत्रादि की आसक्ति को त्यागकर सदा गुरूभक्ति हेतु तत्पर रहना चाहिए ताकि भवरोग से सदा के लिए निजात प्राप्त हो सके; क्योंकि दुःखों का एक प्रमुख कारण स्थूल और सूक्ष्म शरीर धारण करना भी है। वैसे भी कल्प के आदि से अभी तक हमने अनगिनत कीर्तियाँ प्राप्त की हैं, अनगिनत भोग भोगे हैं, फिर भी हमें मोक्ष न मिलकर वक्त के थपेड़े ही प्राप्त हुए हैं एकाध जन्म साधना गुरूभक्ति में लगाकर अवश्य देखें चित्त अवश्य विश्रांत होगा। एक संत ने सही कहा है कि–मन के शिकंजे से छूटने का सबसे सरल और श्रेष्ठ उपाय यह है कि आप किसी समर्थ सद्गुरू के सान्निध्य में पहुँच जायें। जिसके मुख में गुरूमन्त्र है उसके सब कर्म सिद्ध होते हैं, दूसरे के नहीं। दीक्षा के कारण शिष्य के सर्व कार्य सिद्ध हो जाते हैं।

1. नारद बचन न मैं परिहरऊँ। बसउ भवनु उजरउ नहिं डरऊँ।। गुर कें बचन प्रतीति न जेही। सपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेही।। –जगन्माता पार्वतीजी

2. **चाहे कितना भी जप–तप करे, यम नियमों का पालन करे, परंतु जब तक सद्गुरू सूर्य का आत्म प्रकाश नहीं मिलता, तब तक सब व्यर्थ है।**
   –स्वामी रामतीर्थ
3. 'गुरू' भक्तों के लिए वात्सल्य मूर्ति (माँ) हैं वे भक्तों के चित्त पर कृपा–अमृत की धाराएँ बरसाने वाली कामधेनु गाय है–संत ज्ञानेश्वरजी महाराज
4. यदि तुम गुरूवाक्य पर बालक की भाँति विश्वास करो तो भगवान का पा जाओगे भगवान पूर्णतः तुम्हारे अन्तःकरण में प्रवेश कर जायेगा। –श्रीरामकृष्ण परमहंस सद्गुरू
5. गुरु बिना मोक्ष प्राप्ति हो यह कल्पों के अन्त में भी सम्भव नहीं है। –समर्थ रामदास स्वामी
6. सत्गुरशाह तारया श्रद्धा वारा लख। –स्वामी साहिब 7.
7. वह तू है, वह तेरा है, वह तुझसा है। तू वही है तू उसी का हैतू उसी जैसा है।। यह गुरू कृपा से ज्ञात होता है। –स्वामी रामानन्द जी , अतः तन, मन, बुद्धि और वाणी के साथ अनन्य गुरूभक्ति ही उत्तम है परम् कल्याण का एक मात्र रहस्य गुरूसान्निध्य के सिवाय और कुछ नहीं।
8. मुनिवर सयन कीन्हीं तब जाई। लागे चरन चापन दोऊ भाई।
9. ऐसे गुरूदेव का ऋण मैं किस प्रकार चुका सकता हूँ जिन्होंने मुझे फिर से जन्म नहीं लेना पड़े–ऐसी कृपा कर दी।–संत नामदेवजी महाराज
10. हे मुनिश्रेष्ठ! हे सद्गुरू नाथ! घोर संसार सागर में पड़े हुए मुझ दीन को दीक्षा देकर कृतार्थ कीजिए।–पीपा राव जी
11. गुरू ही शिव है, वही विश्व रूप है। उनके इस स्वरूप को जानने के लिए ही समस्त साधनाएं की जाती हैं सभी साधनाओं का फल गुरूतत्त्व की पहचान ही है।

*****

अध्याय–36

गुरु भव सागर से तारने के लिए जहाज

श्री गुरूगीता (जो कि स्कन्द पुराण में परम् संवाद है) में कहा गया है कि–

"विजानन्ति महावाक्यं गुरोश्चरणसेवया।
ते वै संन्यासिनः प्रोक्ता इतरे वेषधारिणः।।"

अर्थात् (हे दुर्गा!) "श्री गुरूदेव के श्रीचरणों की सेवा करके महावाक्य के अर्थ को जो समझते हैं वे ही सच्चे संन्यासी हैं, अन्य तो मात्र वेशधारी हैं।"

और श्रीकृष्ण गर्भ गीता में भी यह स्पष्ट ही कहा गया है कि–"हे अर्जुन! 'संन्यासी' चारों वर्णों द्वारा परम् पूज्यनीय है।" स्मरण रहे संन्यासी की उत्तम परिभाषा साक्षात् सदाशिव (जो कि भक्त वत्सल होने के कारण परम् वैष्णव भी हैं) तथा श्री हरि के अलावा अन्य कौन दे सकता है।

श्री रामचरित मानस के उत्तर काण्ड 43/4 में कहा गया है–

नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो।
सन्मुख मरूत अनुग्रह मेरो।।
करन धार **सद्गुर दृढ़ नावा।**
दुर्लभ साज सुलभ करि पावा।।

अर्थात् "यह मनुष्य का शरीर भव सागर से तारने के लिए जहाज है। मेरी कृपा ही अनुकूल वायु है। सद्गुरू इस मजबूत जहाज के कर्णधार (खेने वाले) है। इस प्रकार दुर्लभ साधन सुलभ होकर उसे प्राप्त हो गये हैं।"

आगे कहा गया है कि– "जो मनुष्य ऐसे साधन पाकर भी भवसागर से न तरे (तरने हेतु गुरू सेवा न करे) वह कृतघ्न और मन्दबुद्धि है तथा वह आत्महत्या करने वाले की गति को प्राप्त होता है।"

गुरू महिमा पर प्रकाश डालते हुए रा.च.मा. के अयोध्याकाण्ड 2/3 में कहा है कि–

''जो लोग गुरूदेव के चरणों की रज को मस्तक पर धारण करते हैं, वे मानो समस्त ऐश्वर्य को अपने वश में कर लेते हैं। इसका अनुभव मेरे (दशरथ जी के) समान दूसरे किसी ने नहीं किया। हे गुरूदेव! मैंने आपकी पवित्र चरण रज की पूजा करके सब कुछ पा लिया।'' **अनन्य गुरू भक्त निःस्पृह और विज्ञानी होता है दूसरों के द्वारा स्वयं की सेवा, पूजा हो ऐसी उसकी कामना तनिक भी नहीं होती। वह साक्षात् शिवरूप और कृष्णस्वरूप ही है।** वह अभिन्न भावी, सतत् गुरूमय अथवा सर्वोऽहम की स्थिति से युक्त होकर सदा प्रशान्त रहता है। इस कारण चारों वर्णों के जीवों को जाति के गर्व, पद और प्रतिष्ठा आदि के अहंकार को त्यागकर सदा उस ब्रह्मवेत्ता की तन, मन, वाणी, बुद्धि से (निष्काम भावी होकर) सेवा अर्चन करना चाहिए। स्मरण रहे कुलाभिमान नामक पाश से मुक्त होकर ही परम् श्रद्धा जाग्रत होती है। हालाँकि ब्रह्मवेत्ता दुर्लभ हैं, पर किसी को प्राप्त हो भी जाएं तो इन अंशभूत शिवों की पहचान कठिन है। पहचान (प्रभु कृपा से) हो जाए तो इन्हें ही अपनी नैया का नाविक (परम् माध्यम) समझो।

एक उपनिषद यह भी कहता है कि–

''आत्मज्ञान के जिज्ञासु और मुमुक्षु संसार को छोड़कर (अर्थात् परिवार की आसक्ति को त्यागकर) श्री गुरू के चरणों का सेवन करते हुए वर्षों तक सेवा रूपी साधना करके सत्य (ब्रह्मानन्द) का अनुभव प्राप्त करते हैं।''

सत्य ही है, वास्तव में गुरूदेव की कृपा पचाने वाला विरला ही होता है। वह अच्छी तरह से जानता है कि **वास्तविक तीर्थ तथा तीर्थ मूर्ति साक्षात् सद्गुरू ही हैं।** इस पृथ्वी मण्डल, आकाश तथा पाताल में जितनी भी तीर्थ मूर्तियाँ हैं, उन मूर्तियों में तीर्थत्व सद्गुरू के हाथ का स्पर्श करने के कारण ही प्रकट हुआ है। अन्यथा साधारण पत्थर किसी को भी सिद्धि नहीं दे सकता। शक्तिपीठों की बात करे तो तृतीय मूर्त्यात्मा महारूद्रजी की पत्नि (जो कि सती नाम से प्रसिद्ध थी) के शरीर के टुकड़ों से ही इनका निर्माण हुआ है। वह सती वास्तव में गुरू ही है जिनका शरीर भी आज तीर्थों का रूप

लेकर कल्याण कर रहा है। ज्योतिर्लिंगों को देखा जाए तो यह सभी ज्योतिर्लिंग भी ज्योति रूप में शिव (गुरू) के प्रवेश करने के कारण ही तीर्थत्व को प्राप्त हुए हैं, अन्य मूर्तियों को देखा जाए तो ज्ञात होगा कि यह मूर्ति संत तुलसीदास जी या अन्य संत के द्वारा पूजित थी, इसीलिए आज यह मूर्ति स्थल तीर्थों के रूप में प्रसिद्ध हैं। यह विचारने योग्य है। जब साक्षात् **सद्‌गुरू के स्पर्श मात्र से मिट्टी, पत्थर, धातु भी तीर्थों का रूप ले सकते हैं तो साक्षात् सद्‌गुरू (तत्त्व) में कितनी शक्ति होगी, उनकी कितनी महिमा होगी यह बताना किसी के वश की बात नहीं।** गुरू–महिमा तो विद्या की देवी (सरस्वती) भी अच्छी तरह से बखान नहीं कर सकती, फिर हम अन्य आत्माओं के क्या कहने। कारण स्पष्ट है; क्योंकि शारदा जी को भी गुरू कृपा से ही ज्ञान (विद्या), विज्ञान (पराविद्या) की प्राप्ति हुई है। फिर भला वे भी अनन्त ऐश्वर्यशाली, शक्तिशाली गुरूतत्त्व का पूर्ण रूपेण वर्णन कैसे कर सकती हैं। उन गुरूदेव की अनन्त महिमा एवं तत्त्वज्ञ पुरूष (गुरूमय परम् संन्यासी) की महामहिमा जानकर भी जो सद्‌गुरू/तत्त्वज्ञ को त्यागकर तीर्थादि में मिट्टी, पत्थर को प्रणाम करता है वह मूर्ख व्यर्थ ही मनुष्य योनि का दुरूपयोग करता है, तीर्थादि में धन, बल, समय तो खर्च होता ही है। काश उस धन, बल, समय का परम् उपयोग गुरूकार्य में किया जाए जिससे शीघ्र ही परमात्मा की कृपा प्राप्त हो। संसार के अधिकांश प्राणी सत्संग सुनते तो हैं परंतु उस अमृत वाणी का पालन नहीं करते इसी कारण वे पूर्व कर्मफलों के चक्रव्यूह में पिसते रहते हैं।

तीनों ही प्रकार के गुरूओं का पद

'गुरू सान्निध्य' फल से ही जीव तथा देह को परम् शुद्धि प्राप्त होती है। ब्राह्मण अपनी शुद्धि के लिए 24 लाख तो क्या 24 करोड़ भी गायत्री जप ले, परंतु यदि वह सद्‌गुरू की अनन्य भक्ति नहीं करता तो भी अशुद्ध ही समझने योग्य है तथा वह गुरू–भक्त (जिसका रोम–रोम गुरूमय है) की पादुका को स्पर्श करने के लायक भी नहीं है। फिर भले ही वह गुरू भक्त संसार की वर्ण व्यवस्था में सर्वाधिक निकृष्ट जाति का ही क्यों न समझा जाता हो। चैतन्य चरितामृत के अनुसार अनन्य गुरूभक्त तत्त्ववेत्ता (ब्रह्मज्ञानी) होने के कारण

साक्षात् संन्यासी ही है और संन्यासी चारों वर्णों का स्वामी कहलाता है, इसीलिए वह चारों वर्णों के लोगों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वेश्य तथा शूद्र) और संकर आदि को गुरूदीक्षा देने के योग्य भी है तथा सेवा करवाने के योग्य भी।

अन्य मत, मतान्तर (टिप्पणियाँ) तो भ्रांतियाँ हैं। जीवों को पथ भ्रष्ट करने वाली हैं इसीलिए सब प्रयत्न से अनासक्त होकर शास्त्र की मायाजाल छोड़कर केवल रूद्रवाणी की शरण अर्थात् अनन्य गुरूभक्ति की शरण लेना चाहिए अन्य सब वाणी वकबाद है। अज्ञानी बालक के वचन के समान मिथ्या है। वैसे भी भ्रांति नामक पाश गुरूकृपा के अभाव के कारण ही प्रभाव में ले सकता है। तत्त्ववेत्ताओं पर उसका प्रभाव किसी भी काल में नहीं होता।

श्री चैतन्य चरितामृत मध्य 8.128 के कथन का सार है कि–यदि कोई तत्त्ववेत्ता हो तो वह दीक्षा गुरू, शिक्षा गुरू तथा वर्मं प्रदर्शक गुरू तीनों ही प्रकार के गुरूओं का पद प्राप्त कर सकता है, फिर वह तत्त्ववेत्ता सांसारिक दृष्टि में भले ही जातिगत ब्राह्मण, आश्रमगत, संन्यासी या 7.11.35 मयी लौकिकताशूद्रसंज्ञक ही क्यों न हो। जाति को प्रधान समझने वाला गुरू वाचक गुरू कहलाता है, परंतु यह वाचक गुरू, शिष्य का शीघ्र ही कल्याण नहीं कर सकता। जिसने देह के भीतर की दिव्य आत्मा तथा आत्मा के ज्ञान विज्ञान को अनुभव नहीं किया, सभी में अभिन्न भाव को नहीं देखा। (अर्थात् कुत्ता, बिल्ली, चाण्डाल और गो आदि की आत्मा में भी समदृष्टि नहीं रखी) क्या वह शिष्य के चित्त को विश्रांत कर सकता है? कदापि नहीं। इसी कारण वैष्णवों में भी तत्त्ववेत्ता गुरू को चुनने की ही प्रधानता है। इसी कारण मीरा बाई के गुरू रैदास (तत्त्ववेत्ता) हुए। लव कुश के गुरू भी पूर्व नाममात्र के ब्राह्मण ही थे पर सनत्कुमार सनक आदि की कृपा से ब्रह्मज्ञानी होने पर गुरु ही हुए। लाखों ऋषियों के गुरू सूत जी (सर्वोऽहम में स्थित) हुए जिन्हें सांसारिक प्राणी विलोमज कहते थे। और पद्म पुराण में भी वर्णन है।

तमाम ऋषियों एवं देवताओं को प्रसन्न कर लिया

भविष्य पुराण में भी बताया है कि, नाम जप (वह भी उल्टा) के प्रभाव से एक पापी भी वाल्मीकि बन गये वे भी ब्रह्म के समान हो गये (वाल्मीकि भए ब्रह्म समाना.... हालांकि ये वर्ण से भी ब्राह्मण ही थे जो भविष्य पुराण के अनुसार अगले जन्म में वीरभद्र बन चुके है।)

कहने का सार है कि– गुरू सान्निध्य तथा गुरू मन्त्र के जाप से किसी का भी शरीर तथा आत्मा परम् विशुद्ध पूर्ण निर्मल हो सकता है ब्रह्म समान होने पर भी यदि कोई उसे (ज्ञाननिष्ठ महापुरूष को) पूर्व पाप या जाति या वर्ण के कारण हीन दृष्टि से देखता है या अवहेलना करता है तो यह समझना चाहिए कि वह (उपहास कर्ता) देश का सबसे बड़ा कलंक है फिर चाहे वह कोई भी क्यों न हो।

वज्रसूचिक–उपनिषद में ब्रह्मवेत्ताओं को वास्तविक ब्राह्मण बताया गया है।

पुराणों के स्वाध्याय पर सभी वर्णों का अधिकार है; परंतु अन्धविश्वास के कारण किसी–किसी जगह जात–पात के कारण (श्रद्धावान साधक होने पर भी) शूद्रों को स्वाध्याय करने से इंकार किया जाता है या यह कह दिया जाता है कि यह तुम्हारे लायक नहीं आदि आदि। (जो कि गलत है) किसी में दृढ मुमुक्षा ,श्रद्धा, भक्ति या जिज्ञासा होने पर उस पर कोई जाति नियम लागू नहीं होता। क्योंकि श्रद्धालु, जिज्ञासु एवं भक्त के हृदय में प्रभु सदा ही उपस्थित रहते हैं भागवत 7.11.35 के अनुसार तो उसे भी ब्राह्मण ही मानना चाहिये जो उपर्युक्त गुणों से युक्त हो।

जिसके हृदय में साक्षात् प्रभु (परम् कृपा के रूप में) विराजते हैं भला किसका साहस कि उससे ऐसा कह सके कि ''तू यह नहीं कर सकता, तू वह नहीं कर सकता।'' तत्त्ववेत्ता संयोगवश मिल जाए तो अहंकार और तर्क छोड़कर शुद्ध भाव से उनके ज्ञान का श्रवण करें । **तुच्छ अहंकार में कुछ नहीं रखा, जीवन बूँद के बुलबुले की भांति है इस बात को कभी न भूलें।**

महाभारत के भीष्म पर्व में आता है–'जिसने सद्गुरू या तत्त्वनिष्ठ योगी को रिझा लिया उसने ब्रह्म लोक पर्यन्त के तमाम ऋषियों एवं देवताओं को प्रसन्न कर लिया और वह स्वयं भी प्रसन्न (अक्षय विश्रांति युक्त) रहता है।'

ज्ञानेश्वरी गीता में संत ज्ञानेश्वर महाराजजी ने कहा है– 'हे गुरूकृपा! तू मेरे हृदय में सदा निवास करना।'

वास्तव में गुरू से अधिक कुछ भी नहीं।

एक प्रमुख संवाद (वशिष्ठ जी एवं राम जी का संवाद) के अनुसार वशिष्ठ जी

श्रीराम से कहते हैं कि–

"हे रामजी! गुरुकृपा पात्र (ज्ञानवान) जहाँ पैर रखता है वह धरती, वह ईंट पूजने योग्य हो जाती है, जिस पर उसकी दृष्टि पड़ती है, वह पुण्यात्मा होने लगता है।" यदि परम् भाव से देख ले तो इसी जन्म में ही वह मुक्त हो जाता है।

कहने का सार केवल गुरू भक्ति हेतु प्रेरणा देना मात्र है; क्योंकि गुरू के बिना कुछ भी सम्भव नहीं। गुरू ही सदाशिव, महेश, रूद्र, विष्णु तथा ब्रह्मा हैं। गुरू ही क्रिया, तप, ध्यान, भक्ति, ज्ञान हैं। वही विज्ञान, सर्वज्ञ पद और सर्वमय हैं। गुरू ही यज्ञ, व्रत, तीर्थ, दान, अग्निहोत्र हैं।

वास्तव में गुरू से अधिक कुछ भी नहीं। तत्त्व रूप से वे परमेष्ठी शिव स्वरूप ही हैं, जो कि पाँचों प्रधान मूर्त्यात्माओं (सदाशिव, महेश, रूद्र, विष्णु तथा ब्रह्मा) के भी एक मात्र गुरू हैं। वे तत्त्व ज्ञानी होने से साक्षात् ब्रह्म हैं, साक्षात् ब्रह्म हैं, साक्षात् ब्रह्म हैं। **नमन! उन गुरूदेव को, नमन! उन गुरूदेव को, नमन! उन गुरूदेव को।**

विचार सागर में आता है–

ईश्वर तै गुरू में अधिक धारै भक्ति सुजान।
बिन गुरू भक्ति प्रवीन हूँ लहै न आतम ज्ञान।।

अर्थात् शिष्य को ईश्वर (तृतीय प्रधान मूर्त्यात्मा) से भी अधिक गुरू की भक्ति करनी चाहिए; क्योंकि मनुष्य समस्त शास्त्रों में प्रवीण हो तो भी गुरूभक्ति के बिना अपरोक्ष ज्ञान (स्थिर ज्ञान) नहीं पा सकता। इस कारण वह (शास्त्रों को रटने वाला) भले ही अत्यधिक **तर्क–वितर्कों से किसी आत्मज्ञानी को पराजित भी कर दे तो भी उसे सच्चा सुख प्राप्त नहीं होता** तथा वह संसार में भटकते–भटकते मात्र दूसरों को शास्त्रों में पराजित करने में ही समय बर्बाद करता रहता है। **शास्त्रों का ज्ञान होना अच्छा है, परंतु उस ज्ञान को व्यवहार में लाना सर्वोत्तम है।** गुरू कृपा पात्र आत्माओं को वह ज्ञान सहज ही सार रूप से प्राप्त हो जाता है इसी कारण वही यथार्थ ज्ञानी ही तत्त्ववेत्ता कहा जाता है, न कि मात्र परोक्ष ज्ञानी।

अनन्य गुरूभक्तों में तोटकाचार्य, संत एकनाथ, बाबा फरीद, आरूणि, उपमन्यु, विवेकानन्द, गंगाबाई, लक्ष्मण मल्लाह आदि प्रमुख हैं। तोटकाचार्य के विषय में देख जाए तो –

जगतगुरू श्री शंकराचार्य जी (जिन्होंने देश, धर्म की रक्षा तथा गुरूभक्ति हेतु परिवार का त्याग कर दिया था) के शिष्यों में हस्तामलक, पद्मपाद, सुरेश्वर आदि परम् विद्वान शिष्य थे, परंतु आचार्य का एक सेवक मन्दबुद्धि, मूढ़मति था। पढ़ा लिखा भी नहीं था, परंतु उसमें गुरू देव के प्रति अनन्य भक्ति और श्रद्धा प्रगाढ़ थी।

एक बार जब शिष्यों की कक्षा का समय हुआ तो गुरूदेव उस श्रद्धावान शिष्य की प्रतीक्षा करने लगे तब अन्य शिष्यों ने कहा, ''गुरूजी वह तो मूर्ख है। आप पाठ आरम्भ कीजिए।'' (इस समय इन शिष्यों में अहंकार था)। गुरूजी इन शिष्यों के अहंकार को समझ गए।

परम् गुरूदेव तो सर्वसमर्थ होते हैं अतः उन्होंने उस अनपढ़ शिष्य पर तत्क्षण ही परम् कृपा की और वह उनकी कृपा से तुरंत ही आते–आते तोटक छन्दों में गुरूदेव की स्तुति करने लगा। सुनकर सारे शिष्यों ने गुरूदेव से क्षमा माँगी। अर्थात् अहंकार का विसर्जन कर मात्र गुरूभक्ति, सेवा को सराहा।

तोटकाचार्य की इस विलक्षण प्रतिभा से हमें शिक्षा लेनी चाहिए कि भले ही शास्त्रों का ज्ञान हो या न हो परंतु गुरूदेव (परम् तत्त्वज्ञानी) के प्रति श्रद्धा भक्ति होनी चाहिए। कल्याण का मूल यही है। आज तक करोड़ों शास्त्री एवं वेदवेत्ता आए और गए; परंतु गुरूकृपा के अभाव में उन्हें पुनः संसार सागर में आना पड़ा क्योंकि गुरूकृपा से बड़ा अन्य कुछ भी नहीं। जो कि पूर्वजन्म में वह (बेचारे) समझ न सके।

लक्ष्मण मल्लाह भी तोटकाचार्य की भाँति बिल्कुल मुर्ख था। उसका मात्र एक कार्य था, वह कि नित्य गुरूमन्त्र जपते–जपते गुरूदेव की चरण धूलि को आज्ञाचक्र के स्थान पर लगाना। ऐसा करते–करते वह दिव्य द्रष्टा हो गया। त्रिकालदर्शी हो गया। अतः गुरूमय होने में ही परम् हित है।

1. **उनकी चरण रज,**
2. **चरण पादुका,**
3. **चरणामृत मात्र भी भवसागर से मुक्ति दे सकते हैं।**

तथा यौगिक सिद्धियाँ भी। चित्त की परम् विश्रांति तो परम् वरदान है ही। अतः हमें सर्व प्रयत्नों से अनासक्त होकर शास्त्र की मायाजाल छोड़कर केवल गुरूदेव की ही शरण लेना चाहिए। इसी में परम् कल्याण है।

भक्तिमती गंगाबाई नित्य ही निष्काम भाव से गुरू–सान्निध्य फल पाती थी, अनन्य गुरू भक्ति करती थी एक दिन उसके पति को सर्प ने डस लिया, परंतु वह आत्मज्ञानी एवं ब्रह्मज्ञानी होने के कारण दुःखी नहीं हुई; क्योंकि जानती थी कि आत्मा अजर–अमर (अविनाशी) है। शरीर तो अनित्य अर्थात् क्षर है, परंतु आत्मा अक्षर, क्षरण–रहित, ऊँ स्वरूप, शिव स्वरूप है। जब गंगाबाई के पिता ने उससे कहा कि, ''बेटी! मुझे अफसोस है.......; परंतु तुम हिम्मत मत हारना................।'' परंतु यह क्या? उस गंगाबाई ने ही उन्हें दिव्य ज्ञान का उपदेश दिया, सुनकर शीघ्र ही पिता का विषाद नष्ट हो गया। क्योंकि यथार्थ में केवल शरीर ही नष्ट हुआ था। आत्मा (चैतन्य तत्त्व) नहीं। वह तो सदा तक रहेगा। एक प्रमुख बात यह भी थी कि गंगाबाई की गुरूभक्ति से प्रसन्न होकर साक्षात् शिव जी ने उसे 3 दिन पूर्व ही दर्शन देकर अवगत कराने के साथ कर्मफल सिद्धान्त तथा उसकी गुरूभक्ति से उन्होंने पति के मोक्ष के बारे में समझा दिया था।

यद्यपि यह सभी घटनाएँ वर्षों पूर्व की हैं, परंतु अभी भी सत् शिष्यों के जीवन में ऐसे चमत्कार आम बात है। **गुरूकृपा से एक अज्ञानी, लालची, कामी तथा क्रोधी भी ब्रह्मभावी, अनासक्त, जितेन्द्रीय तथा शान्त स्वभाव का हो जाए, यह भी सहज ही सम्भव है। गुरूकृपा से असम्भव भी सम्भव किया जा सकता है। अन्धकार को भी प्रकाश में बदला जा सकता है। दुःखी जीवन को भी सुखी जीवन किया जा सकता है। विष भी अमृत में बदला जा सकता है।**

परम् सत्य का बोध होने से शिष्य समदर्शी हो जाता है। उसे हर जगह, हर पल केवल शिव का ही दर्शन होता है, उसके लिए हर काल में शिव ही आत्मरूप से दिखाई देते हैं। जगत का भिन्न भाव समाप्त हो जाता है, उसके लिए न कोई माता है, न ही पिता, न ही जन्म, न ही मृत्यु, न ही मित्र, न ही शत्रु (परंतु प्रधान मूर्त्यात्माओं के द्वारा जीव को शिक्षा देने के लिए एवं अहंकार नष्ट करने के लिए दण्ड रूप से लीला अर्थात् निग्रह करना पड़ता है।) वह तो केवल परम् भाव में ही रमण करता है तथा तत्त्वमसि जैसे महावाक्यों को हृदय में उतारने हेतु 'गुरोश्चरण–सेवया' रूपी परम् वाक्य का

उपदेश देना ही प्रधान जन सेवा मानता है। यद्यपि **उसे स्वयं के लिए अब कुछ शेष नहीं रहा। कोई कर्त्तव्य अकर्त्तव्य नहीं रहे, परंतु जो अन्य आत्माएँ हैं (स्वयं का ही रूप हैं) उनको भी अमृत तत्त्व में भिगोकर कृतकृत्य करना चाहता है।**

ब्रह्मभाव के क्षणों में, गुरू और शिष्य वास्तव में एक ही हो जाते हैं, परंतु जब गुरूदेव सशरीर से हमारे सम्मुख हों तब अद्वैत की भावना नहीं करना चाहिए। अन्य स्थल पर–

"न मे मृत्यु शंका न मे जाति भेदः पिता नैव मे नैव माता न जन्मः।
न बन्धुर्न मित्रं गुरूर्नैव शिष्यः चिदानन्दरूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम्।।"

इस वेदान्त सिद्धान्त के शब्द 'गुरूर्नैव शिष्यः' को स्वीकार करना ही धर्म है अन्यथा जीव भाव के कारण दोष की सम्भावना होती है। हम अभिन्न भावी होते हुए भी गुरूदेव के तो किंकर (दास) ही हैं। अतः धर्म वाणी को पूर्णतः आत्मसात करने के लिए गुरूकृपा अनिवार्य है। गुरूकृपा होने पर साधक साधक न होकर साक्षात् ब्रह्म ही हो जाता है। अर्थात् पूर्णतः विशुद्ध हो जाता है या यह कहिए कि जब आत्मा को अपरोक्ष विज्ञान प्राप्त हो जाता है तो वह साक्षात् परमात्मा ही है।

वास्तव में शिवतत्व रूपी गुरुब्रह्म की अद्वितीय महिमा

वैष्णव गुरु के लिए दीक्षा देने का नियम –

1. चन्दन या मिट्टी लेकर शिष्यकी बायीं और दाहिनी भुजाओंके मूल–भागमें क्रमशः शंख और चक्रका चिह्न अंकित करें।
2. फिर ललाट आदिमें विधिपूर्वक ऊर्ध्वपुण्ड्र लगायें। तदनन्तर पहले बताये हुए इस महा मन्त्र का शिष्यके दाहिने कानमें उपदेश करें ।
3. क्रमशः उन मन्त्रोंका अर्थ भी उसे अच्छी तरह समझा दें।
4. फिर यत्नपूर्वक उसका कोई नूतन नाम रखें, जिसके अन्तमें 'दास' शब्द जुड़ा हो। जैसे हरिदास, राधावल्लभ दास, रमाकांत दास, माधवदास, गोपालदास, राधिकादास, वृन्दावनेश्वरदास, नारायणदास,रामदास आदि

5. अब गुरु शिष्य को अपने हाथ से सिद्ध की हुई माला अर्पित करे इस माला की पहले पूजा की जाए और फिर जो मंत्र दिया जा रहा है उस मंत्र की कम से कम 11, 21 अथवा 108 माला से किसी देवालय में बैठकर सिद्ध करे। और एक गौमुखी दे।
6. इसके बाद अत्यन्त भक्तिके साथ शिष्य वस्त्र और आभूषण आदिके द्वारा श्रीगुरुका पूजन करे। और दीक्षा के दिन अपनी परिश्रम की कमाई से गुरु तथा उनके अन्य शिष्यों को (जो वहाँ उपस्थित हैं) सात्विक भोजन कराये।
7. जो शिष्य गुरु मंत्र का जप नहीं करता वह दरिद्र हो जाता है और जो निषिद्ध गुरु का त्याग नहीं करता उसका मंत्र भी दरिद्रता देता है। अतः दीक्षा के लिए अति शीघ्रता (जल्दीबाजी या उतावलापन) नहीं करना चाहिए।
8. हे नारद– परम निर्मल और महान सेवाभावी शिष्यों की पात्रता अत्यधिक और महानतम होती है वे ही गोलोक के पात्र हैं सामान्य बुद्धि के या अहंकारी नहीं अतः उन महान श्रीहरिभावियों के लिए यह दो मंत्र ही दीक्षा में देने के लिए सर्वश्रेष्ठ है ।
9. ये दो मंत्र ही अत्यन्त उत्तम हैं, उन दोनोंको तुम्हें बताता हूँ
10. 1.मन्त्र–चिन्तामणि : भगवाधारी, मालाधारी या तिलकधारी शरीर या केवल विशुद्ध अंतःकरण वाला अनासक्त ब्रह्मनिष्ठ । बताइए? आजकल तो लोगों की श्रृद्धा मात्र कपड़ो तक सीमित रह गई है । अथवा दो चार बाते सुनी रटी रटाई और हो गए हम सब प्रभावित अथवा किसी पीठ या धाम का पीठाधीश्वर पद देखा या मंडलेश्वर या महंत बस चुन लिए गुरु और कान फुंकवाकर मान लिया गुरु, फिर भले ही गुरु ने उस मंत्र को सिद्ध ही न किया हो अथवा आज तक एक वर्ष तक लगातार भी कभी भी ब्रह्मचर्य रूपी प्राजापत्य व्रत नहीं धारण किया हो ।

खैर–इसी कारण गुरुगीता में कहा है कि हे देवी कल्याणी!

मंत्र देने वाले गुरु यदि यथार्थ ज्ञान विज्ञान से परिपूर्ण न हो तो उनकी संज्ञा बोधक गुरु है न कि परम गुरु अतः सावधानी पूर्वक गुरु का वरण करें

क्योंकि (लिंग पुराण के अनुसार) नाम मात्र के गुरु की सेवा से नाम मात्र की मुक्ति (1–2 इंद्र की आयु तक या मात्र ब्रह्माजी के एक दिन तक स्वर्ग या ब्रह्म लोक) मिलती है।

यद्यप्यधीता निगमाः षडंगा आगमाः प्रिये।
आध्यामादिनि शास्त्राणि ज्ञानं नास्ति गुरुं विना।।

हे प्रिये! मनुष्य चाहे चारों वेद पढ़ ले, वेद के छः अंग पढ़ ले, आध्यात्म शास्त्र आदि अन्य सर्व शास्त्र पढ़ ले फिर भी गुरु (परम गुरु) के बिना ज्ञान नहीं मिलता।

कुलं धनं बलं शास्त्रं बान्धवास्सोदरा इमे।
मरणे नोपयुज्यन्ते गुरुरेको हि तारकः।

अर्थात् अपना कुल, धन, बल, शास्त्र, नाते–रिश्तेदार, भाई, ये सब मृत्यु के अवसर पर काम नहीं आते। एकमात्र गुरुदेव ही उस समय तारणहार हैं।

ब्रह्म वैवर्त पुराण– मंत्र दाता गुरु, यंत्र दाता गुरु तंत्र दाता गुरु से श्रेष्ठ ज्ञानदाता गुरु है बिना ज्ञान के आज तक कोई भी संसार सागर से मुक्त नहीं हो सका।

सद्गुरु– सत्गुरु उसे जानिये जो कि सच का बोध कराता है।

तत्व ज्ञान देकर जो मन के सारे भ्रम मिटाता है।

सद्गुरु जिसके भी जीवन में आता है उसे ज्ञान की रोशनी देने के साथ–साथ जीवन जीने का ढंग भी सिखाता है।

और शिष्य की कामनाओं का नाश हो जाता है यही अकामता ही अक्षय आनंद का हेतु है। कामकामी का चित्त तो सदा ही खिन्न बना रहता है । अनासक्त व्यक्ति ही ब्रह्मनिष्ठता को पाता है।

कबीर जी कहते हैं–

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागू पाय।
बलिहारी गुरु अपने गोविन्द दियो बताय।
श्री गुरु गीता भी इस प्रकार कहती है
गुकारश्चान्धकारो हि रुकारस्तेज उच्यते।
अज्ञानग्रासकं ब्रह्म गुरुरेव न संशयः।

भावार्थ 'गु' शब्द का अर्थ है अंधकार (अज्ञान) और 'रु' शब्द का अर्थ है प्रकाश (ज्ञान)। अज्ञान को नष्ट करने वाला जो ब्रह्मरूप प्रकाश है वह गुरु है, इसमें कोई संशय नहीं ळें

प्रिय मित्र ! मैं सबका आत्मा हूँ, सबके हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे विराजमान हैं।

मैं गृहस्थके धर्म पञ्चमहायज्ञ आदिसे, ब्रह्मचारीके धर्म उपनयन–वेदाध्ययन आदिसे, वानप्रस्थीके धर्म तपस्यासे और सब ओरसे उपरत हो जानाकृइस संन्यासीके धर्मसे भी उतना सन्तुष्ट नहीं होता, जितना परम गुरुदेवकी सेवा–शुश्रूषासे सन्तुष्ट होता हूँ। – 10.80.34 श्री मद्भागवत महापुराण

पर परमगुरु ही सेवा के लिये परम योग्य हैं आसक्त और अज्ञानी नहीं। इतना ध्यान रहे। परमगुरु की सेवा नामक सौभाग्य के आगे संसार के सारे भोगों की कोई भी कीमत नहीं। परम लक्ष्य के लिये अद्वैतवादी गुरु से बडा कोई भी नहीं।

॥ गुर्वष्टकं ॥

शरीरं सुरूपं तथा वा कलत्रं यशश्चारु चित्रं धनं मेरुतुल्यम् ।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरङ्घ्रिपद्मे ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥ १॥

कलत्रं धनं पुत्रपौत्रादि सर्वं गृहं बान्धवाः सर्वमेतद्धि जातम् ।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरङ्घ्रिपद्मे ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥ २॥

षडङ्गादिवेदो मुखे शास्त्रविद्या कवित्वादि गद्यं सुपद्यं करोति ।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरङ्घ्रिपद्मे ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥ ३॥

विदेशेषु मान्यः स्वदेशेषु धन्यः सदाचारवृत्तेषु मत्तो न चान्यः ।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरङ्घ्रिपद्मे ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥ ४॥

क्षमामण्डले भूपभूपालवृन्दैः सदा सेवितं यस्य पादारविन्दम् ।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरङ्घ्रिपद्मे ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥ ५॥

यशो मे गतं दिक्षु दानप्रतापात् जगद्वस्तु सर्वं करे यत्प्रसादात् ।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरङ्घ्रिपद्मे ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥ ६॥

न भोगे न योगे न वा वाजिराजौ न कान्तामुखे नैव वित्तेषु चित्तम् ।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरङ्घ्रिपद्मे ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥ ७॥

अरण्ये न वा स्वस्य गेहे न कार्ये न देहे मनो वर्तते मे त्वनर्घ्ये ।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरङ्घ्रिपद्मे ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥ ८॥

गुरोरष्टकं यः पठेत्पुण्यदेही यतिर्भूपतिर्ब्रह्मचारी च गेही ।
लभेद्वाञ्छितार्थं पदं ब्रह्मसंज्ञं गुरोरुक्तवाक्ये मनो यस्य लग्नम् ॥

.द्वादश वर्ष तक गुरुसेवा

यदि कोई शूद्र वर्ण में जन्मा मुमुक्षु द्वादश वर्ष पर्यन्त मद्य मांस लहसुन आदि के सम्पर्क से रहित होकर ब्रह्मचर्य पूर्वक अपने गुरु को सेवा द्वारा प्रसन्न करलेता है (उनके अनुकूल व्यवहार करता है) तो वह सच्छूद्र होकर पाक स्पर्श आदि व्यवहार के लिए सर्वथा योग्य हो जाता है।

द्वादशाब्दंवसेद्यस्तुमद्यमांसादिवर्जितः।
स्वगुरुंसम्प्रसन्नोऽसौ सच्छूद्रोऋव्यवहारभाक्

इससे यह निष्कर्ष भी निकलता है कि मद्यमांसादिपरायण अन्य त्रैवर्णिक भी स्पर्श व पाकादि व्यवहार के योग्य नहीं हैं। उत्तम वर्ण को तो भूलकर भी यह नहीं खाना चाहिये। और संयम का पालन तो सभी के लिये बिना कहे भी अनिवार्य होता ही है। पर श्रीमद् भागवत महापुराण 7.11.35 के अनुसार जिसके कर्म उच्च वर्ण सदृश हो उसे भी ब्राह्मण ही माना जाये।

अतः जहाँ जहाँ शूद्रों के अस्पर्श रूपी अव्यवहार का विधान है, वहां वहां सर्वत्र असत् शूद्र के लिए समझना चाहिए, सच्छूद्र के लिए नहीं।।

कल्याण का मूल श्री गुरुकवच

ॐ गुरवे नमः ॥ ॐ गं गणपतये नमः ॥

॥ अथ पुरश्चरणरसोल्लासे ईश्वरदेवीसंवादे श्रीगुरुकवचम् ॥

॥ श्री ईश्वर उवाच ॥

श्रृणु देवि! प्रवक्ष्यामि गुह्याद्गुह्यतरं महत् ।
लोकोपकारकं प्रश्नं न केनापि कृतं पुरा ॥

अद्य प्रभृति कस्यापि न ख्यातं कवचं मया ।
देशिकाः बहवः सन्ति मन्त्रसाधनतत्पराः ॥

न तेषां जायते सिद्धिः मन्त्रैर्वा चक्रपूजनैः ।

गुरोर्विधानं कवचमज्ञात्वा क्रियते जपः ।
वृथाश्रमो भवेत् तस्य न सिद्धिर्मन्त्रपूजनैः ॥

गुरुपादं पुरस्कृत्य प्राप्यते कवचं शुभम् ।
तदा मन्त्रस्य यन्त्रस्य सिद्धिर्भवति तत्क्षणात् ।

सुगोप्यं तु प्रजप्तव्यं न वक्तव्यं वरानने ॥

फलश्रुति सुनें पहले

इत्येवं गुरुकवचं ब्रह्मलोकेऽपि दुर्लभम् ।
तव प्रीत्या मया ख्यातं न कस्य कथितं प्रिये ॥

पूजाकाले पठेद् यस्तु जपकाले विशेषतः ।
त्रैलोक्यदुर्लभं देवि । भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥

सर्वमन्त्रफलं तस्य सर्वयन्त्रफलं तथा ।
सर्वतीर्थफलं देवि । यः पठेत् कवचं गुरोः ॥

अष्टगन्धेन भूर्जे च लिख्यते चक्रसंयुतम् ।
कवचं गुरुपङ्क्तेस्तु भक्त्या च शुबवासरे ॥

पूजयेत् धूपदीपाद्यैः सुधाभिः सितसंयुतैः ।
तर्पयेत् गुरुमन्त्रेण साधकः शुद्धचेतसा ॥

धारयेत् कवचं देवि! इह भूतभयापहम् ।

पठेन्मन्त्री त्रिकालं हि स मुक्तो भवबन्धनात् ।
एवं कवचं परमं दिव्यसिद्धौघकलावान् ॥

॥ विनियोगः ॥

ॐ नमोऽस्य श्रीगुरुकवचनाममन्त्रस्य परमब्रह्म ऋषिः सर्ववेदानुज्ञो देवदेवो श्री आदिशिवः देवता नमो हसौं हंसः ह–स–क्ष–म–ल–व–र–यूं सोऽहं हंसः बीजंस–ह–क्ष–म–ल–व–र–यीं

शक्तिः हंसः सोऽहं कीलकं समस्तश्रीगुरुमण्डलप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ।

॥ ऋष्यादिन्यासः ॥

श्रीपरमब्रह्मर्षये नमः शिरसि ।

सर्ववेदानुज्ञदेवदेव श्री आदिशिवदेवतायै नमः हृदि ।

नमः हसौं हंसः ह–स–क्ष–म–ल–व–र–यूं सोऽहं हंसः बीजाय नमः गुह्ये ।

स–ह–क्ष–म–ल–व–र–यीं शक्तये नमः नाभौ । हंसः सोऽहं कीलकाय नमः पादयोः ।

समस्तश्रीगुरुमण्डलप्रीत्यर्थे जपे विनियोगाय नमः अञ्जलौ ।

॥ अथ षडङ्गन्यासः ॥

ॐ हसाम् । ॐ हं सीम् । ॐ हं सूम् ।

ॐ हंसैम् । ॐ हंसौम् । ॐ हं सः ।

॥ अथ करन्यासः ॥

ॐ हसां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।
ॐ हं सीं तर्जनीभ्यां नमः ।
ॐ हसूं मध्यमाभ्यां नमः ।
ॐ हसैं अनामिकाभ्यां नमः ।
ॐ हसौं कनिष्ठाभ्यां नमः ।
ॐ हसः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

॥ अथ अङ्गन्यासः ॥

ॐ हसां हृदयाय नमः ।
ॐ हसीं शिरसे स्वाहा ।
ॐ ह सूं शिखायै वषट् ।
ॐ ह सैं कवचाय हुं ।
ॐ ह सौं नेत्रत्रयाय वौषट् ।
ॐ हसः अस्त्राय फट् ।

श्रीसिद्धमानवमुखा गुरवः स्वरूपं संसारदाहशमनं द्विभुजं त्रिनेत्रम् ।
वामाङ्गशक्तिसकलाभरणैर्विभूषं ध्यायेज्जपेत् सकलसिद्धिफलप्रदं च ॥

॥ मानसपूजन ॥

लं पृथिव्यात्मकं गन्धतन्मात्रप्रकृत्यात्मकं गन्धं सशक्तिकाय श्रीगुरवे समर्पयामि नमः ।
हं आकाशात्मकं शब्दतन्मात्रप्रकृत्यात्मकं पुष्पं सशक्तिकाय श्रीगुरवे समर्पयामि नमः ।
यं वाय्वात्मकं स्पर्शतन्मात्रप्रकृत्यात्मकं धूपं सशक्तिकाय श्रीगुरवे घ्रापयामि नमः ।
रं वह्न्यात्मकं रूपतन्मत्रप्रकृत्यात्मकं दीपं सशक्तिकाय श्रीगुरवे समर्पयामि नमः ।
वं अमृतात्मकं रसतन्मात्रप्रकृत्यात्मकं नैवेद्यं सशक्तिकाय श्रीगुरवे समर्पयामि नमः ।
सं सर्वात्मिकां ताम्बूलादिसर्वोपचार पूजांसशक्तिकाय श्रीगुरवे समर्पयामि नमः ।

॥ कवचस्तोत्रम् ॥

ॐ नमः प्रकाशानन्दनाथः तु शिखायां पातु मे सदा ।
परशिवानन्दनाथः शिरो मे रक्षयेत् सदा ॥1

परशक्तिदिव्यानन्दनाथो भाले च रक्षतु ।
कामेश्वरानन्दनाथो मुखं रक्षतु सर्वधृक् ॥ 2

दिव्यौघो मस्तकं देवि! पातु सर्वशिरः सदा ।
कण्ठादिनाभिपर्यन्तं सिद्धौघा गुरवः प्रिये ॥ 3

भोगानन्दनाथ गुरुः पातु दक्षिणबाहुकम् ।
समयानन्दनाथश्च सन्ततं हृदयेऽवतु ॥ 4

सहजानन्दनाथश्च कटिं नाभिं च रक्षतु ।
एष स्थानेषु सिद्धौघाः रक्षन्तु गुरवः सदा ॥ 5

अधरे मानवौघाश्च गुरवः कुलनायिके !
गगनानन्दनाथश्च गुल्फयोः पातु सर्वदा ॥ 6

नीलौघानन्दनाथश्च रक्षयेत् पादपृष्ठतः ।
स्वात्मानन्दनाथगुरुः पादाङ्गुलीश्च रक्षतु ॥7

कन्दोलानन्दनाथश्च रक्षेत् पादतले सदा ।
इत्येवं मानवौघाश्च न्यसेन्नाभ्यादिपादयोः ॥ 8

गुरुर्मे रक्षयेदुर्व्यां सलिले परमो गुरुः ।
परापरगुरुर्वह्नौ रक्षयेत् शिववल्लभे ॥ 9

परमेष्ठीगुरुश्चौव रक्षयेत् वायुमण्डले ।
शिवादिगुरवः साक्षात् आकाशे रक्षयेत् सदा ॥10

इन्द्रो गुरुः पातु पूर्वे आग्नेयां गुरुरग्नयः ।
दक्षे यमो गुरुः पातु नैऋत्यां निऋतिर्गुरुः ॥ 11

वरुणो गुरुः पश्चिमे वायव्यां मारुतो गुरुः ।
उत्तरे धनदः पातु ऐशान्यामीश्वरो गुरुः ॥ 12

ऊर्ध्वं पातु गुरुर्ब्रह्मा अनन्तो गुरुरप्यधः ।
एवं दशदिशः पान्तु इन्द्रादिगुरवः क्रमात् ॥13

शिरसः पादपर्यन्तं पान्तु दिव्यौघसिद्धयः ।
मानवौघाश्च गुरवो व्यापकं पान्तु सर्वदा ॥ 14

सर्वत्र गुरुरूपेण संरक्षेत् साधकोत्तमम् ।
आत्मानं गुरुरूपं च ध्यायेन् मन्त्रं सदा बुधः ॥ 15

इति पुरश्चरणरसोल्लासे द्वितीयप्रश्ने दशमपटले ईश्वरदेवीसंवादे श्रीगुरुकवचं सम्पूर्णम्

0000000000000000000000000000000000000000000000000000000000

तीन प्रमुख गुण

तीन प्रमुख गुण हैं: सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण। इन गुणों के आधार पर व्यक्ति के स्वभाव और व्यवहार को समझा जा सकता है। उस विश्व में सबसे अधिक सम्मान सतोगुणी का ही होता है। एक चोर भी ईमानदार साथी ही सर्च करता है। तो समझ लो धर्म ही बडा है वही सात्विकता मानी जाए। पर गुरु कृपा से ही सतोगुण बडता है।

1. गुरु ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर हैं। गुरु ही परब्रह्म है, और गुरु के समान अन्य कोई भी नहीं है।
2. गुरु के पास जाने से ही विद्या की प्राप्ति होती है।
3. जिस व्यक्ति की भगवान में परा भक्ति है, उसी भाव से गुरु में भी भक्ति होनी चाहिए। तभी मोक्ष प्राप्त होता है।ऐसे महात्मा के लिए यह ज्ञान प्रकाशित है।
4. गुरु के मुख से परब्रह्म की प्रवृत्ति और सिद्धि प्राप्त होती है। इसके अलावा कोई अन्य मार्ग नहीं है।
5. परा विद्या को जानने के लिए गुरु के पास जाना चाहिए। जो व्यक्ति उस विद्या को जानता है, वही उसे सिखा सकता है।

तमोगुणी लोग:

तमोगुणी लोगों में निम्नलिखित लक्षण होते हैं:

1. आलस्य और निष्क्रियता
2. अज्ञान और भ्रम
3. अहंकार और अभिमान
4. क्रोध और हिंसा
5. लालच और व्यसन
6. असत्य और छल
7. अनियमितता और अव्यवस्था
8. दूसरों की निंदा और तिरस्कार

तमोगुणी लोगों में ज्ञान और समझ की कमी होती है, जिससे वे गलत निर्णय लेते हैं और अपने और दूसरों के लिए हानिकारक कार्य करते हैं।

<u>रजोगुणी मनुष्य:</u>

रजोगुणी मनुष्यों में निम्नलिखित लक्षण होते हैं:

1. सक्रियता और गतिशीलता
2. इच्छा और आकांक्षा
3. प्रतिस्पर्धा और महत्वाकांक्षा
4. राग और द्वेष
5. भावनात्मकता और चंचलता
6. अस्थिरता और परिवर्तनशीलता
7. स्वार्थ और लाभ की ओर ध्यान

रजोगुणी मनुष्यों में ऊर्जा और गतिशीलता होती है, लेकिन वे अक्सर अपने स्वार्थ और इच्छाओं के पीछे भागते हैं और दूसरों के साथ संबंधों में अस्थिरता होती है।

<u>सत्वगुणी लोग:</u>

सत्वगुणी लोगों में निम्नलिखित लक्षण होते हैं:

1. शांति और स्थिरता
2. ज्ञान और समझ
3. निष्पक्षता और न्याय
4. दया और करुणा
5. आत्म–नियंत्रण और अनुशासन
6. स्पष्टता और सत्य
7. सेवा और परोपकार

सत्वगुणी लोगों में ज्ञान, शांति और स्थिरता होती है, जिससे वे अपने और दूसरों के लिए कल्याणकारी कार्य करते हैं।

अध्याय–37

प्रजा का मन भी देखें :

धर्म की रक्षा के लिए प्रजा के मन का ख्याल रखना अत्यंत अनिवार्य है। सत्य की रक्षा के लिए लोगों की पात्रता व मन भी देखें। यदि उनका मन न हो तो स्वेच्छा से ज्ञान न परोसें।

या अपनी पुस्तकों में वही लिखे जो वें पचा सकें। धर्म की रक्षा केवल बाहरी शक्तियों से नहीं, बल्कि प्रजा के मन की शुद्धता और सद्गुणों से भी होती है। गुरु और राजा का कर्तव्य है कि वे प्रजा के मन को शुद्ध और सद्गुणी बनाए रखें, जिससे धर्म की रक्षा हो सके।

प्रजानां मनसि स्थितम् धर्मम्,
रक्षितव्यमनिवार्यं।
गुरुराजौ कर्तव्यं हि,
प्रजानां मनः शुद्धिर्भवेत्।

अर्थात्

प्रजा के मन में स्थित धर्म की रक्षा करना अनिवार्य है।

गुरु और राजा का कर्तव्य है कि प्रजा के मन को शुद्ध और सद्गुणी बनाए रखें।

*****

अध्याय–38

ब्रह्मनिष्ठ रूपी परमगुरु से बढ़कर कुछ भी नहीं

परमगुरु व गुरुगीता के रूप में साक्षात् श्री भुवनेश्वरी, लक्ष्मी सहित पंचक प्रकृति, श्री सदाशिव व हरि प्रत्यक्ष है ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि श्रीमद्भागवत महापुराण में साक्षात् श्रीकृष्ण हैं व शिवपुराण में परमात्मा शिवजी । प्रभु महादेव ने कहा है कि–

1. जीवात्मा–परमात्मा का ज्ञान, दान, ध्यान, योग पुरी, काशी या गंगा तट पर मृत्यु इन सबमें से कुछ भी श्री ब्रह्मनिष्ठ रूपी परमगुरु से बढ़कर नहीं है, श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है।
2. प्राण, शरीर, गृह, राज्य, स्वर्ग, भोग, योग, मुक्ति, पत्नी, इष्ट, पुत्र, मित्र –इन सबमें से कुछ भी श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है, श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है।
3. वानप्रस्थ धर्म, यति विषयक धर्म, परमहंस के धर्म, भिक्षुक अर्थात् याचक के धर्म –इन सबमें से कुछ भी श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है, श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है ।
4. भगवान विष्णु की भक्ति, उनके पूजन में अनुरक्ति, विष्णु भक्तों की सेवा, माता की भक्ति, श्रीविष्णु ही पिता रूप में हैं, इस प्रकार की पिता सेवा– इन सबमें से कुछ भी श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है, श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है ।
5. प्रत्याहार और इन्द्रियों का दमन, प्राणायाम, न्यास–विन्यास का विधान, इष्टदेव की पूजा, मंत्र जप, तपस्या व भक्ति–इन सबमें से कुछ भी श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है, श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है ।

6. काली, दुर्गा, लक्ष्मी, भुवनेश्वरि, त्रिपुरासुन्दरी, भीमा, बगलामुखी (पूर्णा), मातंगी, धूमावती व तारा ये सभी मातृशक्तियाँ भी श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है, श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है।
7. भगवान के मत्स्य, कूर्म, वाराह, नरसिंह, वामन, नर–नारायण आदि अवतार, उनकी लीलाएँ, चरित्र एवं तप आदि भी श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है, श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है।
8. भगवान के श्री भृगु, राम, कृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि आदि वेदों में वर्णित दस अवतार श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है, श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है ।
9. गंगा, यमुना, रेवा आदि पवित्र नदियाँ, काशी, कांची, पुरी, हरिद्वार, द्वारिका, उज्जयिनी, मथुरा, अयोध्या आदि पवित्र पुरियाँ व पुष्करादि तीर्थ भी श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है, श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है।
10. हे सुन्दरी ! हे सर्व–मातेश्वरी ! गोकुल यात्रा, गौशालाओं में भ्रमण एवं श्री वृन्दावन व मधुपुर आदि शुभ नामों का रटन – ये सब भी श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है, श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है **।**
11. तुलसी की सेवा, विष्णु व शिव की भक्ति, गंगा सागर के संगम पर देह त्याग और अधिक क्या कहूँ परात्पर भगवान श्री कृष्ण की भक्ति भी श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है, श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है ।

गुरु का तात्पर्य गुरुत्व से है उनके ज्ञान की परम भूमिका से है शिवत्व से है, अनासक्ति से है, गुणातीत और रूपातीत से है न कि स्पृहावान और भोगी द्वारा कान फूंकवाने मात्र से, इस बात को कभी न भूलें कि तद्भाव पर ही गुरुत्व प्रकट होता है अन्यथा सब पशु ही हैं जीव ही हैं।

सुने सुनायें मंत्रों को बिना सिद्ध किए या बिना अपरोक्ष ज्ञान के दीक्षा में मंत्रादि देना ये सब अनुचित है जो अल्प फलदायी है।

*****

अध्याय–39

जो गुरु ब्रह्मनिष्ठ नहीं वो..

जो गुरु (आधुनिक कालखण्ड के तथाकथित गुरु ..) गुरुगीता से ही अनभिज्ञ है और उस गुरुगीता के नियमों अर्थात किस प्रकार अपने गुरु की सेवा करना चाहिए तथा श्लोक 18,27 , 52, 75, 81, 86 के अर्थ को ही न समझकर अर्थ का अनर्थ करके अपने शिष्यों को नष्ट भ्रष्ट कर रहे हैं वे अपने शिष्यों का मंगल नहीं कर सकते। उसका अपना ही कल्याण नहीं हुआ वह दीक्षा देकर बेचारे भोलेवाले लोगों का कल्याण कैसे करेगा। ऐसे लोग अपने शिष्यों को अपने ही खूंटे पर बांधकर रखते हैं। जबकि शिष्य को सोचना चाहिए कि अपने गुरु से भी अधिक श्रेष्ठ पुरुष मिल जाये तो उसे ही गुरु रूप में वरण कर ले ताकि पुनरागमन न हो।

बात कटु है पर सच है। यह बात शिव पुराण की विद्येश्वर संहिता के अध्याय 18 में भी है तथा गुरुगीता 102–107 श्लोक में भलीभांति मिल जायेगी । जो गुरु ब्रह्मनिष्ठ नहीं और अपने पल्ले से शिष्य को बांधकर रखे हुए है वह गुरु अगले जन्म में बैल बनता है।

और शिष्य भी उसका त्याग न करने से पुनर्जन्म पाता है।

हे देवी ! जब तक मनुष्य को सम्यक् ज्ञान विज्ञान से परिपूर्ण अपरोक्ष ज्ञाननिष्ठ नही मिलता तब तक वह बार बार पुनर्जन्म पाता रहता है।

(विस्तार के लिए पूर्व पोस्ट आज की)

– गरुड पुराण, स्कंदपुराण (गुरुगीता), कूर्म पुराण व शिव पुराण विद्येश्वर संहिता अध्याय 18

*****

अध्याय–40

गुरु के प्रकार

श्री मद्भागवत महा पुराण के श्री कृष्ण और सुदामा संवाद के अनुसार तीन प्रकार के गुरु होते हैं ।

स्कंद पुराण के अनुसार इनको ही गहराई से विश्लेषण करके और व्याभिचारियों व निषिद्ध को देखकर महादेव ने सात प्रकार कर दिए।

और ज्ञान भूमिका के स्तर से सात प्रकार गुरु भी अतिरिक्त हैं जिसमें निषिद्ध एक भी नहीं पर सभी महान नहीं । उत्तरोत्तर अधिक श्रेष्ठ हैं।

और वेदान्त के स्तर पर मात्र 4 प्रकार के–

द्वैतात्मक गुरु

द्वैताद्वैतात्मक गुरु

अद्वैतात्मक गुरु

द्वैताद्वैत से भी मुक्त (पूर्णतः निर्विकल्पता के पल)

अतः आप श्रीकृष्ण प्रभु की वाणी सुनें –

मित्र !

1. इस संसार में शरीरका कारण जन्मदाता पिता प्रथम गुरु है।
2. इसके बाद उपनयन संस्कार करके सत्कर्मोंकी शिक्षा देनेवाला और स्वयं भी सत्कर्म रूपी धर्म का आचरण करने वाला तथा मंत्र जप की आज्ञा देकर पापकर्म का क्षेदन करने वाला भी महान गुरु है। वह मेरे ही समान पूज्य है।
3. परंतु हे सुदामा !

महावाक्यों का यथार्थ ज्ञानोपदेश करके जीवत्व का नाश करके परमात्माको प्राप्त करानेवाला अर्थात्

तद्भाव देने वाला अर्थात्

भेदज्ञता का जड़ से ही नाश करने वाला गुरु तो साक्षात

मेरा स्वरूप ही है।

वर्णाश्रमियोंके उद्धार के लिए ये तीनों गुरु उत्तरोत्तर अधिक श्रेष्ठ हैं। परंतु पिता और उपनयन संस्कार वाले का पूजन भी समय–समय पर करना ही चाहिए और

मेरा स्वरूप तो सतत् सुमिरन के योग्य और परम सेवनीय है क्योंकि भवरोग का नाशक वे ही होते हैं ॥

मेरे प्यारे मित्र ! गुरुके स्वरूपमें स्वयं मैं हूँ। (पर पाप और अधर्म की आज्ञा किसी भी प्रकार से मानने योग्य नहीं राजा बलि ने गुरु की आज्ञा का उल्लंघन धर्म के कारण किया और प्रह्लाद ने भी पिता की आज्ञा का उल्लंघन भक्ति के कारण किया, पत्नि सीता ने भी पति कि आज्ञा का उल्लंघन उनकी सेवा की स्वतंत्रता के लिए किया और धर्म रक्षण के लिए तो अर्जुन ने अपने बंधु बांधवों और गुरूओं का भी नाश कर डाला अतः जहाँ धर्म है वहीं गुरुत्व का प्रथम लक्षण हैं)

इस जगत्में वर्णाश्रमियोंमें जो लोग उत्तम गुरु के उपदेशानुसार अनायास ही भवसागर पार कर लेते हैं, वे अपने स्वार्थ और परमार्थके सच्चे जानकार हैं । प्रिय मित्र सुदामा ! मैं सबका आत्मा हूँ, सबके हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे विराजमान हूँ। मैं गृहस्थके धर्म पञ्चमहायज्ञ आदिसे, ब्रह्मचारीके धर्म उपनयन–वेदाध्ययन आदिसे, वानप्रस्थीके धर्म तपस्यासे और सब ओरसे उपरत हो जाना – इस संन्यासीके धर्मसे भी उतना सन्तुष्ट नहीं होता, जितना

गुरुदेवकी सेवा–शुश्रूषासे सन्तुष्ट होता हूँ ॥

स वै सत्कर्मणां साक्षाद् द्विजातेरिह सम्भवः ।

आद्योऽङ्ग यत्राश्रमिणां यथाहं ज्ञानदो गुरुः ॥ ३२

नन्वर्थकोविदा ब्रह्मन् वर्णाश्रमवतामिह ।

ये मया गुरुणा वाचा तरन्त्यञ्जो भवार्णवम् ॥ ३३

नाहमिज्याप्रजातिभ्यां तपसोपशमेन वा ।

तुष्येयं सर्वभूतात्मा गुरुशुश्रूषया यथा ॥ ३४

10 / 80 / 34 व 09 / 10 / 20

श्रीमद्भागवत महापुराण जी

कुछ लोग सीधे ही भगवान से मंत्र दीक्षा पाते हैं पर इसके लिए उपाय इतना आसान नहीं होता क्योंकि वे भगवान इस संसार के गुरुओं के भी गुरु हैं । परदादा गुरु (और इनके भी परदादा) से भी श्रेष्ठ हैं। पर अधिक तप न कर सको तो सरल उपाय यही है कि आप संसार के ब्रह्मानंद से परिपूर्ण जितेन्द्रिय संत से दीक्षा ले लें या संध्यापूत व जितेन्द्रिय ब्राह्मण से।

गुरु के प्रकार और महिमा

परम गुरु के अलावा कोई भी परमपद नहीं दे सकता हाँ यही सत्य है।
वैराग्य के लिए विहित गुरु की शरण में जायें,
ज्ञान के लिए परमगुरु की शरण में,
मृत्यु बाद परलोक में
सालोक्य मुक्ति के लिए
बोधक गुरु ही पर्याप्त है।

गुरु सात प्रकार के होते हैं जिसके पास जो है वह वही दे सकता है अंधविश्वास से कुछ भी नहीं होने वाला अतः इस बात को कभी न भूलें।

तेज, धूप और प्रभा के लिए सूर्य ही अनिवार्य है और शीतलता के लिए चंद्रमा। परम मुक्ति के लिये मात्र श्रुति अथवा शाम्भवी दीक्षा ही पर्याप्त है मंत्रदीक्षा वैराग्यवान मनुष्यों को अनिवार्य नही यह स्कंद पुराण की रामगीता ''वीर को दिया गया उपदेश श्रीराम द्वारा'' शिव पुराण तथा यमदेव –सावित्री संवाद में भी लिखा है मात्र वैराग्य की प्राप्ति या अष्टावक्र जैसे ज्ञानी परमगुरु की प्राप्ति के लिये साधारण बोधक गुरु से मंत्रदीक्षा आप ले सकते हैं ताकि मंत्र या स्तोत्र के प्रभाव से ज्ञानी गुरु प्रकट हो जाये। पर मूर्ख लोग आजीवन बोधक गुरु से ही चिपके रहते हैं जिससे उनको कैवल्या अवस्था नही मिल पाती।
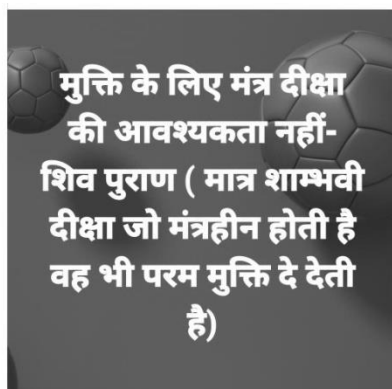
जो जैसा होता है वही दे सकता है (और लिंग पुराण के अनुसार नाम मात्र के गुरु से नाम मात्र की मुक्ति मिलती है) अतः भगवा या जटाओं के चक्कर में न उलझें।

शिष्य यदि साधारण है तो भी कम से कम एक वर्ष तक गुरु के धर्म पालन और निस्पृहिता की परिक्षा ले सकता है ऐसा नहीं कि परीक्षा का अधिकार मात्र गुरु को ही है। यह भी शिवपराण कहता है।

और यदि किसी भ्रांति के कारण उस कपटी कालनेमि को गुरु भी बना लिया तो वह ज्ञानहीन और ईर्ष्यालु भी त्यागने के योग्य है।

ज्ञानहीनो गुरुत्याज्यो मिथ्यावादी विडम्बकः।
स्वविश्रांति न जानाति परशांतिं करोति किम्।।

*****

अध्याय–41

गुरु पादुकाओं में कितना सामर्थ्य

यह अध्याय उन भक्तों के लिए है जो नित्य साक्षात् गुरुदेव के दर्शन नहीं कर पाते अतः उनकी चरण पादुका भी एक विकल्प है जो साक्षात् उनकी सेवा का फल भी देती है और दरिद्रता का नाश करने वाला कल्पवृक्ष है। जो गुरु भक्त अपने गुरु (दीक्षागुरु या ज्ञानदाता गुरु या वैराग्य दाता विहित गुरुदेव अथवा शाम्भवी दीक्षा दाता ब्रह्मानंद से युक्त ब्रह्मनिष्ठ) के दर्शन और सेवा डैली नहीं कर पाते वे लोग यदि श्रीगुरु की पादुकाओं को लाकर अपने घर पर नित्य पुष्प भी अर्पित करते हैं या पुष्प न हो तो स्वच्छ वस्त्र से नित्य साफ करके चंदन मात्र लगाकर नमन् करके मानसिक पूजा ही करते हैं वे गुरुभक्त सब कुछ सहज ही पा लेते हैं यहाँ हम गुरु पादुका स्तोत्र के नौ श्लोकों में से तीन बता रहे हैं और गुरु पादुका पंचकम् से मात्र दो श्लोक... तथा कुलार्णव तंत्र से कुछ श्लोक

अतः समझ जाईये कि गुरु पादुकाओं में कितना सामर्थ्य है।

1.नता ययोः श्रीपतितां समीयुः कदाचिद–प्याशु दरिद्रवर्याः ।
काश्च वाचस्पतितां हि ताभ्यां नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम्

जिनके आगे नतमस्तक होने से श्री (धन आदि समृद्धि) की प्राप्ति होती है, दरिद्रता के कीचड़ में डूबा हुआ व्यक्ति भी समृद्ध हो जाता है, जो मूक (अज्ञानी, बिना सोचे समझे बोलने वाला) व्यक्ति को भी कुशल वक्ता बना देती हैं. उन गुरुदेव की पादुकाओं को नमस्कार है।

नालीकनीकाश पदाहृताभ्यां नानाविमोहादि निवारिकाभ्यां ।
नमज्जनाभीष्टततिप्रदाभ्यां नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम् ।।

श्री गुरुदेव के आकर्षक चरण कमल इस संसार से उत्पन्न हुए मोह और लोभ का नाश करते हैं. जो लोग इन सम्मुख झुकते हैं उन्हें अभीष्ट (मनचाहा फल की प्राप्ति होती है. मैं, श्री गुरुदेव की इन पादुकाओं को नमस्कार है।

कामादिसर्प व्रजगारुडाभ्यां विवेकवैराग्य निधिप्रदाभ्यां ।
बोधप्रदाभ्यां द्रुतमोक्षदाभ्यां नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम् ।।

काम आदि दुर्गुण रूपी सर्पों के लिए ये गरुड़ के समान हैं, ये विवेक और वैराग्य की निधि प्रदान करती हैं, बुद्धि प्रदान करती हैं और तुरंत मोक्ष देती हैं, श्री गुरुदेव की इन चरण पादुकाओं को मेरा नमस्कार है।

इति श्रीगुरुपादुकास्तोत्रं संपूर्णम्।

(यह तीन श्लोक श्री गुरुदेव पादुका स्तोत्र से लिए हैं जो सार समझने पर मोक्षदायी सिद्ध होते हैं)

परम कल्याण के लिये हमें श्रीगुरु चरण सेवा,उनकी पादुकाओं का सुमिरण सदा ही करते रहना चाहिए। और आगे के श्लोक सुनें जो महापुरुषों की अमोघ वाणी है।

ॐ नमो गुरुभ्यो गुरुपादुकाभ्यो ।
नमः परेभ्यः परपादुकाभ्यः ।।

आचार्य सिद्धेश्वर पादुकाभ्यो।
नमोस्तु लक्ष्मीपति पादुकाभ्यः ।।1।।

सभी गुरुओं को नमस्कार, सभी गुरुओं की पादुकाओं को नमस्कार । श्री गुरुदेव जी के गुरुओं अथवा परगुरुओं एवं उनकी पादुकाओं को नमस्कार । सभी आचार्यों एवं सिद्ध विद्याओं के स्वामी की पादुकाओं को नमस्कार बारंबार श्री गुरुपादुकाओं को नमस्कार ।

अनंत संसार समुद्रतार, नौकायिताभ्यां स्थिर भक्तिदाभ्यां ।
जाड्याब्धि संशोषण बाड्याभ्यां नमो नमः श्री गुरुपादुकाभ्यां ।।

अंतहीन संसार सभी समुद्र को पार करने के लिये जो नौका बन गई है। अविचल भक्ति देने वाली आलस्यप्रमाद और अज्ञान रूपी जड़ता के समुद्र को भस्म करने के लिये जो बडवाग्नि समान है ऐसी श्री गुरुदेव की चरण पादुकाओ को नमस्कार हो, नमस्कार हो ।।

महादेव प्रभु ने कुलार्णव तंत्र में भी कहा कि –

कोटी कोटी महादानात्
कोटि कोटि महाव्रतात् ।
कोटी कोटी महायज्ञात्। परा श्रीपादुकास्मृति ।।

हे देवी ! करोड़ो करोड़ो महादानों (करोड़ों बीघा भूमि दान, विद्या दान, 100 कोटी कन्या दान, अभय दान, तुलादान, नित्य 1000 किलो स्वर्ण व रजत या अन्य रत्न दान) संपूर्ण प्रकार के व्रत–उपवास, सभी प्रकार के ऐसे ऐसे यज्ञ जिनको करने से 1000 करोड़ नित्य खर्च होंगे पर फिर भी फल सीमित होगा।

उन सबसे बढ़कर भी मात्र श्री गुरुदेव की पादुकाओं का स्मरण श्रेष्ठ है।

कोटी कोटी मंत्र जापात्
कोटि तीर्थावगाहनात ।
कोटी देवार्चनाद्देवी परा श्री पादुकास्मृतिः ।।

देवी ! करोड़ो करोड़ो मंत्र जप का भी जो फल नहीं हो सकता, करोड़ो करोड़ो तीर्थों में अवगाहन से भी जो शान्ति या परिणाम नहीं मिलता,

नित्य 10000000 देवमूर्तियों की 10000000 मंदिरों में अभिषेक और 56–56 भोग से भी जो फल नहीं मिल सकता हे देवी ! मैं महादेव यह परम सत्य कह रहा हूँ कि वह फल मात्र श्री गुरुदेव की पादुकाओ को नित्य नमस्कार करने मात्र से मिल जाता है।

**महारोगे महोत्पाते महादोषे महाभये ।
महापदि महापापे स्मृता रक्षति पादुका ।।**

दुराचारे दुरालापे दुःसंगेदुष्प्रतिग्रहे ।
दुराहारे च दुर्बुद्धौ स्मृता रक्षति पादुका ।।

तेनाधीतं स्मृतं ज्ञातुम् इष्ट दत्तंच पूजितम् ।
जिह्वाग्रे वर्तते यस्य सदा श्रीपादुकास्मृतिः ।।

सकृत् श्रीपादुकां देवि यो वा जपति भक्तितः।
सः सर्व पापरहितः प्राप्नोति परमां गतिम।।

अर्थात

शुचिर्वाप्यशुचिर्वापि भक्त्या स्मरति पादुकाम्।
अनायासेन धर्मार्थकाममोक्षान लभते सः ।।

अर्थ – हे प्रिय ! अशुद्ध अथवा शुद्ध कैसी भी अवस्था में श्री गुरुदेव की पादुकाओ को स्मरण करने से धर्म अर्थ काम और मोक्ष वह गुरु भक्त सहज ही पा लेता है।

अतः परम कल्याण के इच्छुकों को वे चाहे शैव हों या वैष्णव इस अक्षयरुद्र के अनुसार निश्चित ही ज्ञानदाता व मंत्रदाता गुरु तथा वैराग्य का उपदेश देने वाले गुरु की सेवा करना ही चाहिए और आपने संन्यास नहीं लिया तो माता पिता के साथ ही यथासंभव गुरुदेव की सेवा करते रहें सत्संग सुनते रहें तथा उनकी चरण पादुका लाकर घर पर ही अर्चन करें।

*****

अध्याय–42
गुरुदेव का यथार्थ ज्ञान ईश्वर गीता ही है

ईश्वर गीता के अद्वैत ज्ञान का सार जिसके अंतःकरण का आभूषण बन गया समझ लेना वही इसी जन्म में कैवल्या का अधिकारी होगा अन्य तो अभी भी रोयेंगे और मरने के बाद भी। अनेक गीताएं लिखी गईं पर अद्वैतमयी गीता मात्र कुछेक ही हैं। वे हैं– ईश्वर गीता जिसका माहात्म्य हमने जिज्ञासा और समाधान कृति में भी किया था, इसके अतिरिक्त शिवगीता जिसमें श्रीराम जी के लिये प्रभु का अभिन्नात्मक महावाक्य हैं, श्रीहरि ने अवधूत गीता में जो कहा है वह गहराई से किसी भी वैष्णवीय गीता में सम्यक् नहीं व अष्टावक्र गीता और ब्रह्मविद्या खण्ड की उपनिषदों में भी सटीक है। अतःपरम पद चाहने वालों को या परमात्मा से एकरूप होने वालों को यह विज्ञान अवश्य ही आत्मसात कर लेना चाहिए। और सही कहें तो परम गुरु का कार्य मात्र इन गीताओं के महावाक्यों का विचार व चिंतन कराना है।

कूर्म पुराण के अनुसार सुनें।

इदं ज्ञानं समाश्रित्य ब्राह्मीभूता द्विजोत्तमाः।
न संसारं प्रपद्यन्ते पूर्वेऽपि ब्रह्मवादिनः।।

हे द्विजगण! इस ज्ञान का आश्रय लेकर पहले के ब्रह्मवादी भी ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त कर पुनः संसार को प्राप्त नहीं करते हैं।

गुह्याद्गुह्यतमं साक्षाद् गोपनीयं प्रयत्नतः।
वक्ष्ये भक्तिमतामद्य युष्माकं ब्रह्मवादिनाम् ॥३॥

यह ज्ञान अत्यन्त गूढ़ से भी गूढतम है। इसकी प्रयत्नपूर्वक रक्षा की जानी चाहिए। मैं आज आप भक्तियुक्त ब्रह्मवादियों के समक्ष कहूँगा।

आत्मायं केवलः स्वच्छः शुद्धः सूक्ष्मः सनातनः।

अस्ति सर्वान्तरः साक्षाधिन्मात्रस्तमसः परः ॥

सोऽन्तर्यामी
स पुरुषः
स प्राणः
स महेश्वरः।

स कालोऽत्र तदव्यक्तं स च वेद इति श्रुतिः॥

यह आत्मा केवल, स्वच्छ, शुद्ध, सूक्ष्म और सनातन है। यह सर्वान्तर में स्थित, साक्षात् मात्र चित्स्वरूप और तम से परे है। वही अन्तर्यामी, वही पुरुष, वही प्राण, वही महेश्वर, वही काल, वही अव्यक्त और वही वेद है– ऐसा श्रुतिवचन है।

अस्माद्विजायते विश्वमत्रैव प्रविलीयते।

स मायी मायया वद्धः करोति विविधास्तनूः॥

इसी से यह जगत् उत्पन्न होता है और उसी में (अन्त में) लीन हो जाता है। वह मायावी अपनी माया से बद्ध होकर अनेक शरीरों का निर्माण करता है।

न चाप्यये संसरति न संसारमयः प्रभुः।
नायं पृथ्वी न सलिलं न तेजः पवनो नमः ॥
न प्राणो न मनोऽव्यक्तं न शब्दः स्पर्श एव च।
नरूपरसगन्धा नाहं कर्ता न वागपि ॥

यह ईश्वर न तो संसरण करता है और न यह संसारमय ही है। यह न तो पृथ्वी, न जल, न तेज, न वायु, न आकाश है। यह न प्राण, नमन, न अव्यक्त, न शब्द और स्पर्श ही है। यह न रूप, रस और गन्ध है। मैं कर्ता और वाणी भी नहीं हूँ।

न पाणिपादौ नो पावुर्न चोपस्थं द्विजोत्तमाः।.........

मनुष्य सम्पूर्ण भूतों के पृथकत्व को एक में हो स्थित देखता है तब उसे व्यापक ब्रह्म की प्राप्ति होती है।

वदा पश्यति चात्यानं केवलं परमार्थतः।
मायामा तदा सर्व जगद्भवति निर्वृतः ।।

और जब आत्मा को केवल परमार्थरूप में देखता है, तब सम्पूर्ण जगत् मायामात्र दिखाई देता है और वह मुक्त होता है।

वदा जन्मजरादुः खय्याधीनामेकमेषजम्।
केवलं ब्रह्मविज्ञानं जायतेऽसौ तदा शिवः ॥

जब जन्म, जरा, दुःख और रोगों का एकमात्र औषधरूष ब्रह्मज्ञान उत्पन्न होता है तब वह शिव हो जाता है।

यथा नदीनदा लोके सागरेणकतां ययुः।
दद्वादात्माक्षरेणासौ निष्कलेनैकतां व्रजेत् ।।

संसार में जैसे नदी और नद सागर में जाकर एकत्व को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार यह आत्मा भी शुद्ध अक्षर ब्रह्म से मिलकर एकता को प्राप्त हो जाता है।

तस्माद्विज्ञानमेवास्ति न प्रपक्षो न संस्थितिः।
अज्ञानेनावृतं लोके विज्ञानं तेन मुह्यति ॥

इस कारण विज्ञान ही है, प्रपञ्च या संस्थिति नहीं है। लोक में विज्ञान अज्ञान से आवृत है, इसलिए सब मोहित होते हैं।

विज्ञानं निर्मलं सूक्ष्म निर्विकल्पं तदव्ययम्।
अज्ञानमितरत्वं विज्ञानमिति तन्मतम् ॥

विज्ञान (ब्रह्म) निर्मल, सूक्ष्म, निर्विकल्प और अविनाशी है और उससे भिन्न सब अज्ञान है। इसीलिए उसे विज्ञान कहा गया है।

देहो देवालयः प्रोक्तः

स जीवः केवलः शिवः ।

त्यजेदज्ञाननिर्माल्यं सोऽहं– भावेन पूजयेत् ॥

अर्थात् शरीर देवालय है,

1. उसमें रहने वाला जीव ही केवल शिव–परमात्मा है।' अन्य कुछ भी सत्य नहीं।
2. अतः अज्ञान रूप निर्माल्य को (पुरानी (बासी) माला की तरह से) छोड़ देना चाहिए तथा परमात्मा में ही हूँ, केवल मैं ऐसा समझकर ही उसकी पूजा करनी चाहिए। स जीवः केवलः शिवः

परमात्मा स्वयं के अतिरिक्त अन्य नहीं , उसे अन्य स्थान पर खोजने वाले बाल बुद्धि वाले हैं या पथिक हैं।

अभेददर्शनं ज्ञानं ध्यानं निर्विषयं मनः ।

स्नानं मनोमलत्यागः शौचमिन्द्रियनिग्रहः ॥

जीव तथा ब्रह्म एक है, ऐसा मानना ही ज्ञान है और मन को विषयों से अलग रखना ही ध्यान है, मन के मैन को छुड़ाना ही स्नान तथा इन्द्रियों को वश में रखना ही पवित्रता है ॥

ब्रह्मामृतं पिबेद्भैक्षमाचरेद्देहरक्षणे ।
वसेदेकान्तिको भूत्वा चैकान्ते द्वैतवर्जिते।

इत्येवमाचरेद्धीमानस एवं मुक्तिमाप्नुयात् ॥

1. ब्रह्मरूपी अमृत का पान करना,
2. शरीर रक्षा के उद्देश्य से ही भिक्षा मांगना,
3. स्वयं अकेला रहकर एकान्त में निवास करना,

4. इस प्रकार से जीवनयापन करता हुआ ज्ञानवान् मनुष्य मुक्ति को प्राप्त करता है ॥

जातं मृतमिदं देहं मातापितृमलात्मकम्।
सुखदुःखालयामेध्यं स्पृष्ट्वा स्नानं विधीयते ।।

माता–पिता के मल रूप (शुक्रशोणित) से उत्पन्न, जन्म–मृत्यु वाले, सुख–दुःख के भण्डार रूप एवं अपवित्र इस शरीर को स्पर्श करने के पश्चात् स्नान किया जाता है (फिर तन को भोगने वालों को नरक निश्चित ही मिलेगा तन का प्रयोग योग के लिए करो न कि रति कर्म के लिए।)

धातुबद्धं महारोगं पापमन्दिरमध्रुवम्।

विकाराकारविस्तीर्णं स्पृष्टा खानं विधीयते

सात धातुओं से निर्मित, महारोग से युक्त, पाप के घर की भाँति, सतत चलायमान (अस्थिर विकारों से भरे हुए इस शरीर को स्पर्श करने के उपरान्त स्नान अवश्य करना चाहिए ॥

नवद्वारमलरखावं सदा काले स्वभावजम्।
दुर्गन्धं दुर्बलोपेतं स्पृष्ट्वा स्नानं विधीयते ॥

आँख, कान आदि नौ द्वारों से युक्त इस शरीर से सदा स्वाभाविक रीति से हर समय मल–स्रवित होता

(निकलता) रहता है तथा इस मल की दुर्गन्ध से यह शरीर हमेशा परिपूर्ण रहता है, ऐसे इस दुर्गन्धयुक्त,

मलिन शरीर का स्पर्श करने के बाद स्नान अवश्य करना चाहिए ॥

मातृसूतकसंबन्धं सूतके सह जायते।
मृतसूतकजं देहं स्पृष्ट्वा स्नानं विधीयते ॥

माता के सूतक से सम्बन्धित होने से मनुष्य के साथ ही सूतक भी जन्म ले लेता है तथा मरण काल का सूतक भी इस देह के साथ ही लगा रहता है। अतः शरीर का स्पर्श (छिद्र स्पर्श या स्वयं के चरण स्पर्श) होने पर स्नान (शुद्धि) अवश्य करना चाहिए ॥

अहंममेति विण्मूत्रलेपगन्धादिमोचनम्।
शुद्धशौचमिति प्रोक्तं मृजलाभ्यां तु लौकिकम् ॥ ८

मल मूत्र आदि दुर्गन्ध शरीर की मिट्टी एवं जल आदि से होती है, लेकिन वह सब तो लौकिक शुद्धि है। वास्तविक पवित्रता तो 'मैं और मेरा' का परित्याग करने से ही होती है ॥

चित्तशुद्धिकरं शौचं वासनात्रयनाशनम्।
ज्ञानवैराग्यमृत्तोयैः क्षालनाच्छौचमुच्यते ॥

पवित्रता चित्त का शोधन करती है और वासनाओं को नष्ट करती है

परन्तु ज्ञानरूपी मिट्टी और वैराग्य रूपी जल से प्रक्षालन के द्वारा जो पवित्रता होती है, वही वास्तविक पवित्रता है॥

मैत्रेय्युपनिषद से इस सत्य का स्पष्टीकरण किया है।

महावाक्य–

ये सभी महावाक्य उपनिषदों के अलावा शिवपुराण व गरुड पुराण में भी है पर गुरुकृपा से ही समझ में आ सकते हैं अन्यथा इनको लोग साधारण ही समझते रहते हैं।

महावाक्य ही परमकल्याण के सूत्र हैं। यह उपनिषदों के अतिरिक्त अनेक गीताओं व पुराणों में भी प्रभु के संवादों के रूप में व्यक्त हैं। यह अपरोक्ष होने पर साधक साक्षात् परात्पर ब्रह्म ही हो जाता है जो कि था ही, पर अज्ञान से ही जीव नाम धारी हो गया था। ये महावाक्य ही कैवल्या का

एकमात्र हेतु है। कृष्ण यजुर्वेदीय उपनिषद "शुकरहस्योपनिषद " में महर्षि व्यास के आग्रह पर भगवान शिव उनके पुत्र शुकदेव को चार महावाक्यों का उपदेश 'ब्रह्म रहस्य' के रूप में देते हैं। वे चार महावाक्य ये हैं–

1. प्रज्ञानं ब्रह्म,
2. अहं ब्रह्मास्मि
3. तत्त्वमसि
4. अयमात्मा ब्रह्म

प्रज्ञानं ब्रह्म–

इस महावाक्य का अर्थ है– 'यह जो प्रकट ज्ञान है वह प्रत्यक्ष ब्रह्म है।' वह ज्ञान–स्वरूप ब्रह्म ही जानने योग्य है। जो ब्रह्मवेत्ता की कृपा से ही प्राप्त हो जाता है। वह ज्ञान ही विशुद्ध ,मुक्त–रूप, सत्य, आत्मरूप और अविनाशी है। वही एक मात्र परम प्रकाश और सच्चिदानन्द ब्रह्म है। उस महातेजस्वी देव का ध्यान करके ही जीव का जीवत्व दूर होता है और उसे निजरूप 'मोक्ष' का पर्याय कैवल्या प्राप्त हो जाता हैं। वह परमात्मा सभी प्राणियों के रूप में लीलारत है फिर भेद कैसा। यह ज्ञान स्वयं में भी हो जाये तो वही मुक्ति है। ब्रह्म ही सर्वत्र विद्यमान है। वह सर्वत्र अखण्ड विग्रह–रूप है। जिसके द्वारा निजस्वरूप का बोध हो वही वाक्य ज्ञान है। वह सभी में समाया हुआ है। वही सब कुछ है।

अहं ब्रह्मास्मि–

इस महावाक्य का अर्थ है– 'मैं ब्रह्म हूँ।' मैं ब्रह्म ही हूँ न कि जीव बस यही जानकर तद् भावी होना व भाव से भी परे हो जाना ही परम ध्येय है।

यहाँ 'अस्मि' शब्द से ब्रह्म और जीव की एकता का बोध होता है। जब जीव परमात्मा का अनुभव कर लेता है, तब वह उसी का रूप हो जाता है। दोनों के मध्य का द्वैत भाव नष्ट हो जाता है। उसी समय वह 'अहम् ब्रह्मास्मि' कह उठता है। और सभी ब्रह्माण्डों के सभी रूपों व नामों या स्वयं के रूप व नामों के चक्कर से परे वह कैवल्या में स्थित हो जाता है।

तत्त्वमसि–

<u>इस महावाक्य का अर्थ है–'वह ''ब्रह्म'' तुम्हीं हो।'</u>

वह ''ब्रह्म'' तुम्हीं हो।

वह ''ब्रह्म'' तुम्हीं हो।

वह ''ब्रह्म'' तुम्हीं हो।

केवल और केवल त्वम् और सब बातें अविद्यात्मक हैं।

सृष्टि के जन्म से पूर्व, द्वैत के अस्तित्त्व से रहित, नाम और रूप से रहित, एक मात्र सत्य–स्वरूप, अद्वितीय 'ब्रह्म' ही था। वही ब्रह्म आज भी विद्यमान है। उसी ब्रह्म को 'तत्त्वमसि' कहा गया है। वह शरीर और इन्द्रियों में रहते हुए भी, उनसे परे है। आत्मा में उसका अंश मात्र है। उसी से उसका अनुभव होता है, किन्तु वह अंश परमात्मा नहीं है। वह उससे दूर है। वह सम्पूर्ण जगत में प्रतिभासित होते हुए भी उससे दूर है।

अयमात्मा ब्रह्म–

<u>इसी महावाक्य से आत्मज्ञान हो जाता है। मैं कौन हूँ इस बात का यथार्थ ज्ञान हो जाता है।</u>

इस महावाक्य का अर्थ है– 'यह आत्मा ब्रह्म है।' उस स्वप्रकाशित परोक्ष तत्त्व को 'अयं' पद के द्वारा प्रतिपादित किया गया है। अहंकार से लेकर शरीर तक को जीवित रखने वाली अप्रत्यक्ष शक्ति ही 'आत्मा' है। वह आत्मा ही परब्रह्म के रूप में समस्त प्राणियों में विद्यमान है। सम्पूर्ण

चर–अचर जगत में तत्त्व–रूप में वह संव्याप्त है।

वही ब्रह्म है। वही आत्मतत्त्व के रूप में स्वयं प्रकाशित होती है।

इस कारण हमको तद्भावानुभव में ही परम सुख मिलता है।

ज्ञानी को या तो परम अभिन्नता अर्थात् अद्वैत ही भाता है या द्वैत की बात करें तो परम विशुद्ध अनन्य भक्ति ही इसी कारण अपने अपने स्तर के अनुसार ही चिंतन करें। अतः केवल परम विशुद्ध ब्रह्म के विशुद्ध साकार रूप को आज नमन् .....

1.मात्र उस ब्रह्म को नमस्कार है जिसने भूमि पर अपने साकार रूप में किसी भी कालखण्ड में किसी भी नारी से संसर्ग नहीं किया अन्यथा वह ब्रह्म इस अक्षयरुद्र को दर्शन न दे और वह ब्रह्म मेरे महादेव हैं अतः महादेव प्रभु मुझे दर्शन दें।

2.वही ब्रह्म (अपने साकार रूप में) इस अक्षयरुद्र को दर्शन दे जिसने उच्च लोक में अपनी प्रियतमा के समीप होकर भी,विवाह के तत्काल बाद से ही अपनी कालगणना से कम से कम 12 वर्ष तक अखंड ब्रह्मचर्य का पालन किया हो अन्यथा वह ब्रह्म इस अक्षयरुद्र को कभी भी दर्शन न दे क्योंकि आपके कुछ साकार रूपों की काम वासना के विषय में ग्रंथों में कुछ वाक्य समाविष्ट हैं। जो अखंड ब्रह्मचर्य पूर्वक नहीं रह सकता वह ब्रह्म भला किस प्रकार पूजा के योग्य है और वह ब्रह्म मेरे महादेव हैं अतः महादेव प्रभु मुझे दर्शन दें।

3.वह ब्रह्म इस अक्षयरुद्र को दर्शन दे जो यथार्थ में आज भी अपनी भार्या के मोह से रहित है अन्यथा वह मुझे दर्शन न दे और वह ब्रह्म मेरे महादेव हैं अतः महादेव प्रभु मुझे दर्शन दें।

4.वह साकार ब्रह्म ही इस अक्षयरुद्र को दर्शन दे जो उपर्युक्त तीनों गुणों से युक्त होकर भी अपनी पत्नि के वियोग में कभी भी मोहित होकर रोया न हो अन्यथा वह मुझे दर्शन न दे और वह ब्रह्म मेरे महादेव हैं अतः महादेव प्रभु मुझे दर्शन दें।

5.वह ब्रह्म ही इस अक्षयरुद्र को दर्शन दे जो अपने भक्तों की प्रार्थना पर स्वयं ही प्रकट होता है माया से अन्य रूप को प्रकट करके मायावद्ध रूप या दास दासी नहीं भेजता अन्यथा वह सीमित शक्ति वाला साकार ब्रह्म इस अक्षयरुद्र को दर्शन न दे और वह ब्रह्म मेरे महादेव हैं अतः महादेव प्रभु मुझे दर्शन दें।

6. वही ब्रह्म इस अक्षयरुद्र को दर्शन दे जो अपने नाते रिश्तेदारों और अपने वैभव और पद की आसक्ति से रहित हो वह चाहे ब्रह्मा पद वाला हो ,चाहे क्षीरसागर के विष्णु चाहे रुद्र जिनको इस कालखण्ड में अक्षयरुद्रस्य अंशी कहते हैं या वैकुण्ठ के नारायण पद वाले हो अथवा तिरोभावी महेश या सदाशिव व केशव)

7.वह ब्रह्म ही इस अक्षयरुद्र अंशभूतशिव को दर्शन दे जो और अपनी सेवा कराने के उद्देश्य से प्रजा की उत्पत्ति नहीं करता। अपितु स्वयं ही सभी रूपों में प्रकट हुआ है अर्थात जीव भी ब्रह्म ही है इस कारण कौन किसका स्वामी और कौन किसका दास।

8. वही ब्रह्म इस अक्षयरुद्र अंशभूतशिव को दर्शन दे जो अपने लोक में एक बार पहुंचने वालों को कभी भी वापस मृत्युलोक में नहीं भेजता चाहे उसके भक्त से उस लोक में सहस्रों अपराध ही क्यों न होते हों,अन्यथा वह ब्रह्म इस अक्षयरुद्र को दर्शन न दे।

जिसमें भी इस अक्षयरुद्र द्वारा रचित आठों योग्यताएं न हों तो इस जीवन में तब तक इस अक्षयरुद्र को दर्शन न देना जब तक कि आपमें यह आठों गुणधर्मों का समावेश न हो जाये तब तक यह अक्षयरुद्र सोऽहम् की सत्यता जानकर पूर्ण ब्रह्म स्वरूप होने से एकाकी होकर पूर्ण आनन्द में ही रमण करेगा इन सब शर्तो को सुनकर यदि आप द्वैतभाव में आकर इस अक्षयरुद्र पर कोप करते हो या शाप देते हो तो हे अशांत ब्रह्म! आप ब्रह्म नाम का एक छलावा मात्र हो ब्रह्म नहीं और एक जीवात्मा का उच्चपद मात्र हो न कि यथार्थ पराशक्ति। पर मुझे ज्ञात है कि ये योग्यताएं मेरे महादेव व श्रीकृष्ण में अनिवार्य रूप से हैं। अतः हर हाल में प्रभु पर विश्वास करते रहो–इस पृथ्वी पर एक ही सिद्धांत है– वह यह कि–

मैं ही अनेक रूपों को धारण करके भूमि पर आया मैने जिस जिस रूप से जैसा जैसा किया उस उस रूप को वैसा वैसा ही फल मिला और भविष्य में भी मिलेगा। मैने केवल कर्मफल व्यवस्था की है इस वसुन्धरा पर। मेरे लिए न तो कोई अपना न ही पराया।

मैं न तो किसी के पुण्य ग्रहण करता हूँ न ही किसी के पाप।
जो धर्म करेगा वह स्वर्ग का अधिकारी होगा।

जो अधर्म करेगा वह दण्ड का अधिकार पायेगा।

और जो अधर्म न करके धर्म का आचरण करता है पर उस आचरण के फल को इष्ट को समर्पित कर देता है वह उत्तम लोक को जाता है।

धरती पर हर मनुष्य को स्वतंत्रता है। इसमें ईश्वर की इच्छा, शक्ति और सामर्थ्य आदि का हवाला देना ठीक नहीं।

हे लेखक (पूर्व काल का एपीक्यूरसम्) यदि तू दुखी है तो तू तेरे ही पूर्व कुकर्म से दुखी है। हे लेखक! यदि तू स्वदेश के निवासियों के दुख को देखकर दुखी है तो भी दुख मत कर वे अपने अपने कर्म दण्ड भोग रहे हैं । और यदि तू आतंकवाद से त्रस्त है तो तू अपनी सुरक्षा इष्ट के रक्षात्मक पाठ से कर ले।

और सामने वाले भाई बन्धु भी तेरी शरण में आयें तो उसे भी रक्षात्मक आवरण प्रदान कर। पर जो मूर्ख नर मनमाना आचरण कर रहे हैं न ही संतों की शरण में हैं वे तो परिवार के सदस्यों से भी विक्षिप्त होते हैं तो पराये पुरुष से कैसे बचेंगे।

देश का राजा भी देश को बचा सकता है पर राजा (कानून को बनाने बनाने वाला और हिन्दुहितार्थ समय समय पर संसोधन करके नियम बनाने वाला ही) यदि भौतिक हो न कि आध्यात्मिक तो देश को कौन बचा पायेगा। पर आप अपनी रक्षा गुरु के द्वारा प्रदत्त विद्या से अवश्य कर सकते हो।

रही बात दुश्मनों की एकता की ......तो आप स्वयं एकता बनाओ तो दुश्मन नष्ट हो जायेंगे। पर यदि पत्नि के पल्लू में ही बंधे रहे और यह सोचते रहे कि पत्नी बच्चों का क्या होगा तो शत्रु हावी होगा ही क्योंकि वो जान चुका है कि हिन्दु डरपोक है। उसे मात्र यह भय है कि कहीं मैं मर गया तो मेरी घरवाली और बच्चो का क्या होगा ?

सार एक ही है – ईश्वर ने मात्र कर्मफल व्यवस्था की है वह किसी का भी पक्ष या विपक्ष नहीं करता पर अपने आश्रित जनों (भक्तों) का साथ उस भक्त की पुकार के अनुसार अवश्य देता है।

अभिन्न भावी तद्भावी की महिमा–

भूतोंमें प्राणधारी श्रेष्ठ हैं, उनमें भी बुद्धिजीवी, बुद्धिजीवियोंमें भी मनुष्य और मनुष्योंमें भी धर्मिक और जितेन्द्रिय ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। जितेन्द्रिय ब्राह्मण से वह

ब्राह्मण श्रेष्ठ है जो वानप्रस्थ या संन्यास की अवधि में आकर यह आश्रम ग्रहण कर वानप्रस्थ या संन्यासी चुका है और चारों वर्णों में मेरे अनन्य भक्त जो शम दम से युक्त हों वे वीतरागी, द्वन्द्व से परे और जितेन्द्रिय भक्त भी अधिक श्रेष्ठ हैं पर इन वानप्रस्थ, संन्यासी या जितेन्द्रिय भक्तों में भी जो कोई अपने गुरु की कृपा से अपरोक्ष ज्ञाननिष्ठ हो जाये वह ब्रह्मज्ञानी पुरुष इन सबसे बढ़कर महान और श्रेष्ठ हैं। आगे पद्मपुराण के स्वर्ग खण्ड में कहा है कि इस प्रकार ब्रह्मज्ञानी तीनों लोकोंमें सर्वश्रेष्ठ माने गये हैं। वज्रसूचिकोपनिषद में इसी अभिन्नभावी का माहात्म्य है और कुछ भी नहीं और ब्रह्म विद्या खण्ड की सभी उपनिषदों में भी इसी अभिन्न भाव से परिपूर्ण महावाक्यों को आत्मसात कर कृत कृत्य होने वाले ब्रह्मनिष्ठ का ही सम्पूर्ण बखान है। इसी पद्म पुराण की एक बात पढ़े जो तत्काल कल्याण करने वाली है। वह है –
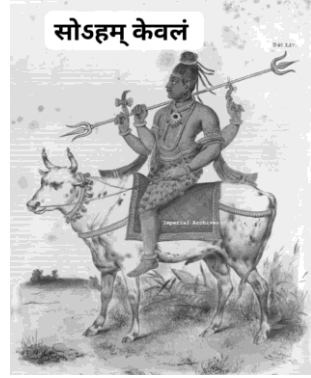
यदि कभी किसी गृहस्थ के घर पर ब्रह्म– ज्ञानी महात्मा आकर संतोषपूर्वक विश्राम करें तो वे आधी से आधी घड़ी भी शान्ति से (बिना विघ्न के विश्राम कर लें तो) उसके इस जन्मभर के सम्पूर्ण पापोंका अपने दृ ष्टिपातमात्रसे नाश कर डालते हैं। '

और ऐसा ब्राह्मण जो संन्यास आश्रम की अवधि में संन्यास ले चुका वह यदि मात्र एक रात किसी गृहस्थके घर पर सात्विक भोजन करके विश्राम कर ले तो वह (विश्राम करनेवाला संन्यासी) उसके जीवनभरके सारे पापको भस्म कर देता है। वैश्य! तुमने तो चार ब्रह्मनिष्ठों की सेवा की है और उनके चरण धोकर भी उस जल से अपने मस्तक पर सिंचन भी किया अब तुम्हारे पुण्यों की संख्या कौन बता सकता है । इस प्रकार की मात्र एक दिन की सेवा से ही वह त्रिलोक विजय हो जाता है अतः ब्रह्मज्ञानी को साक्षात् श्री हरि अथवा शिव रूप जानकर कम से कम एक दिन तो उनकी सेवा अवश्य ही करना चाहिए।

व्यक्ति चाहे रात दिन माया मोह में लिप्त हो पर छः वर्ष में मात्र एक दिन भी यदि वह किसी ब्रह्मनिष्ठ की सेवा कर ले तो वह सेवक तीर्थ स्थल पर दान पुण्य करने वालों से भी सहस्र गुना अधिक श्रेष्ठ है।

और श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के अनुसार परमेश्वरी दुर्गा जी ने हिमाचल से तो यह तक कहा है कि मुझ पराशक्ति की एक करोड़ प्राण प्रतिष्ठित मूर्तियों की सेवा यदि एक करोड़ दिनों तक भी नित्य (56 भोगों सहित पूजा और सभी मुख्य आरतियों का विधि–विधान से पालन) की जाये तो उतना फल मैं नहीं देती जितना फल किसी ब्रह्मनिष्ठ (जो मुझसे अभिन्न भाव से भावित हो चुका) की आधी से आधी घड़ी की सेवा से प्राप्त हो जाता है। हे हिमाचल ! विश्व के सभी तीर्थ, यज्ञ और शिव या हरि के सभी व्रतों व नियम आदि का फल मात्र ब्रह्मज्ञानी की सेवा से कालान्तर में अवश्य मिलता है अतः भक्तों को इस सत्य को जानकर ब्रह्मनिष्ठ की ही खोज करना चाहिए।

मात्र तीर्थस्थल की यात्रा या तीर्थवास की कामना से अधिक श्रेष्ठ कामना ब्रह्मवेत्ता का दर्शन है।

अतः

वही पुण्य (अपरोक्ष ज्ञाननिष्ठ की सेवा)

तुम अपने भाईको दे दो, जिसके द्वारा उसका नरकसे उद्धार हो जाय।

देवदूतकी यह बात सुनकर विकुण्डलने तत्काल ही वह पुण्य अपने भाईको दे दिया। तब उसका भाई भी प्रसन्न होकर नरकसे निकल आया। फिर तो देवताओंने उन दोनोंपर पुष्पोंकी वृष्टि करते हुए उनका पूजन किया तथा वे दोनों भाई स्वर्गलोकमें चले गये।

ऐसे महापुरुष के लिये अष्टावक्र संहिता में लिखा है – "तस्य तुलना के न जायते";

ऐसे आत्मरामी, सोऽहं स्वरूप में टिके , अभेद भावी की तुलना कौन कर सकता है?

अद्भुत है ब्रह्मज्ञानी यह ब्रह्मनिष्ठ इस भूमि पर प्रत्यक्ष हरि हैं साक्षात शिव और नर नारायण ही है तथा आठों चिरंजीवियों का वह विग्रह हैं।

*****

अध्याय–43

तुम वही हो,न कि किसी के अधीन;तुम वही ब्रह्म हो।

मृत्कार्यं सकलं घटादि सततं मृन्मात्रमेवाभित– स्तद्वत्सज्जनितं सदात्मकमिदं सन्मात्रमेवाखिलम् ।

यस्मान्नास्ति सतः परं किमपि तत्सत्यं स आत्मा स्वयं तस्मात्तत्त्वमसि प्रशान्तममलं ब्रह्माद्वयं यत्परम् ॥

जिस प्रकार मृत्तिका कार्य घट आदि हर तरहसे मृत्तिका ही हैं, उसी प्रकार सत्से उत्पन्न हुआ यह सत्स्वरूप सम्पूर्ण जगत् सन्मात्र ही है। क्योंकि सत्से परे और कुछ भी नहीं है तथा वही सत्य और स्वयं आत्मा भी है, इसलिये जो शान्त, निर्मल और अद्वितीय परब्रह्म है वह तुम्हीं हो।

विवेक चूड़ामणि के कुल 581श्लोकों में से यह श्लोक स्वरूप बोध के लिए यथार्थ सत्य है। पर जिसके पास

पापों का भंडार भरा है वह इस श्लोक को बालबुद्धि समझकर बार बार गर्भ से उत्पन्न होते जा रहे हैं।

श्लोक 575 कहता है कि यह मुमुक्षा(मुक्ति की चाह)

और बंधन आदि कुछ भी नहीं आप स्वयं ब्रह्म हो ; परब्रह्म कभी उत्पन्न नहीं हुआ जो जीव कहाँ से उत्पन्न होगा एक ही परब्रह्म अनेक हो गया फिर पशु , पाश या मुमुक्षा कहाँ से आ गए भाई।

यहाँ तक कि यह भाई शब्द भी अविद्या है जो अज्ञानी जनों के लिए ही संबोधन बन गया पर आप सारे अक्षरों या उपाधियों से परे हो न ही आप किसी का अंश हो न ही किसी का दास बस आप वही हो जो वह परब्रह्म है।

यही श्री हरि ने अवधूत गीता में कहा है। पर जो पाप या कल्मषों के चक्र में फंसा हुआ है वही अपने मूल रूप को जीव नाम दे बैठा और शास्त्रों में अज्ञानियों ने काट–छांट करके आपको ब्रह्म से भिन्न या अंश कह डाला।

आप अंश नहीं वही हो.................................. **<u>तत् त्वमसि केवलं।</u>**

574 के अनुसार बन्धन और मोक्ष ये दो शब्द माया से कल्पित हैं। परम धाम की उत्कंठा भी उसको होती है जो अपने आपको सोऽहम् रूप न मानकर किसी के अधीन मान बैठा अरे! आपमें कैसा भेद है बिल्कुल भी नहीं। यदि द्वैत की चर्चा ही करना हो तो बताईए यदि कोई ब्रह्म अपनी सेवा के लिए नौकर चाकरों या दास दासी की उत्पत्ति करे और कहे कि तुम्हारी औकात नहीं जो मेरी तुलना कर सको मैं तो मैं ही हूँ और तुम 'तुम' ......तो बताओ ऐसे ब्रह्म का क्या औचित्य जो दास या सेवक उत्पन्न करके अपनी बड़ाई करवाकर संतुष्ट होता है।

अतः इसी कारण शिव पुराण में भी सदाशिव जी ने महावाक्यों से आपकी सच्चाई को बता दिया कि

जो आपको भौतिक व्यवहार के लिए संज्ञा दी गई है वह झूठी है तुम तो यथार्थ में मैं शिव ही हूँ । तुम और कोई नहीं मैं ही हूँ।

इसी प्रकार गर्ग संहिता के विज्ञान खण्ड में यही घोषणा है कि – जो मैं हूँ वही तुम हो अतः अज्ञान से मुक्त हो जाओ।

और न हो सको तो जो ब्रह्मनिष्ठ हैं (वायुपुराण के अनुसार महावर्णी संज्ञा न कि चारों वर्ण) उनकी वाणी पर विचार करो। यदि आप विश्व में धन बल या पद आदि से प्रसिद्ध भी हो गए तो भी इस अभिन्न ज्ञानियों कि शरण में जाओ। शिव गीता के पहले अध्याय के श्लोक 12 कहा है कि ज्ञानी (अभिन्न भाव से भावित) देवताओं का भजन नहीं करता इस कारण वे देवता (जो ब्रह्मनिष्ठ नहीं और छुटमुट जप तप से देवता बन चुके) यज्ञभाग न मिलने से उसके भौतिक सुख में विघ्न डालते हैं पर उनको नहीं पता कि उन ब्रह्मनिष्ठों का मन बचता ही नहीं वे तो मुझ शान्तस्वरूप महादेव से एकाकार हो गए अतः ऐसा करने से वे देवता भी कालान्तर में दण्ड पाते हैं ; यह देवता भी 84 लाख योनियों के अंग मात्र है अतः उनको भी बिना ब्रह्मज्ञान के मुक्ति का भान नहीं होने वाला। और जो देवता अपने अपने लोक में अखंड ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर रहे और भोगों में रत है उनको भी इन अपरोक्ष ज्ञाननिष्ठों का किंकर ही मानना चाहिए। 3 से 11 वर्ष की गायत्री या अन्य सकाम साधना से देवताओं के समान ऐश्वर्य और चमत्कारिक शक्ति सहज ही आ जाती हैं पर ब्रह्मभाव तो 100 कोटी वर्षों तक किसी भी प्रकार की द्वैत

मयी साधना से नहीं आता ; मात्र (निष्कामी होकर) ब्रह्मनिष्ठ के महावाक्यों के विचार के अतिरिक्त अन्य कोई औषधि नहीं जो अज्ञान का जड़ से नाश कर दे। जहाँ जहाँ धर्म शास्त्रों में जीव या अंश का प्रयोग हुआ है या अज्ञानी जनों ने दुख देने के लिए कर डाला वहाँ वहाँ माया

का प्रभाव जानें। यह ऋषि, मुनि, ब्राह्मण, क्षत्रिय या चाण्डाल आदि शब्द भी अज्ञान और दंभ के कारण ही द्रष्टव्य हैं अन्यथा कहो हे राम ! ब्रह्म के सिवाय और है ही क्या?

इस शिव गीता के 18 वें अध्याय के 30वें श्लोक में शिव जी का कथन है कि मुक्त सभी हैं पर उस मुक्ति की अवस्था का भान पाप के कारण नहीं होता और उन पापों के कारण ही वह अपने आपको बद्ध या जीव मानता है या लोकेष्णा के क्षणिक सुख के लिए भागा भागा फिरता है या देवताओं के आगे चमत्कारिक जीवन के लिए व अष्ट सिद्धियों के लिए नाक रगड़ता है कि हे देवों! मुझे सिद्ध बना दो, अब बताओ जो स्वयं पहले से ही शिव स्वरूप है वह आठ सिद्धि से सिद्ध बनना चाहता है यह लोकेश्वर होने की चाह भी उसे ब्रह्मभाव के मार्ग से भटका देती है। और देवताओं को भी यह सब देना पड़ता है अन्यथा उन देवताओं का भजन कौन करेगा। इस प्रकार वे देव भी बेचारे अपनी पूजा और यज्ञ भाग की इच्छा से साधकों को सिद्धियाँ दे ही देते हैं पर कुछ देव (जो अपने अपने क्षेत्र में नैष्ठिकब्रह्मचर्य पूर्वक रह रहे हैं)

समझाएं तो भी इन लोगों को समझ नहीं आता इसका कारण वही है जो शिव गीता के 18 / 26 में लिखा है ।

अष्टावक्र नामक ब्रह्मनिष्ठ ने अष्टावक्र गीता के 12 वें प्रकरण के पाँचवे श्लोक में सार रूप कहा है कि –

सब कुछ छोड़कर अपने में ही स्थित हो जाओ । संसार के दर्शन त्यागकर अपना ही यथार्थ दर्शन करो हे निजस्वरूपों और कितना ठोकर खाओगे।

चारों आश्रमों के कर्तव्य–अकर्तव्यों को जानकर, विविध विचारों, ध्यान व चंचल चित्त की इच्छा–अनिच्छा को लक्ष्य करके में इनसे पूर्णतया विमुक्त हो चुका हूँ और आत्म में स्थित हो गया हूँ।

सार्थक निरर्थक से निस्पृह, शोक–विषाद से मुक्त होकर मैंने मिथ्या जगत की वास्तविकता जान ली है। अब मैं निरपेक्ष, निरंजन और निर्विकार होकर आत्म–स्वरूप में स्थित हो गया हूँ।

जो अपने स्वार्थ के लिए न तो किसी की निन्दा करता है न ही स्तुति; जिसे हानि पर दुख या क्रोध नहीं आता (लौकिक लीला अलग बात है पर क्रोध में जलना अलग बात) और लाभ पर जो उछलता नहीं वही शान्त और अचिन्त्य ही यथार्थ अनासक्त और निस्पृही है वही ज्ञान की तीसरी भूमिका पर आरूड भी। पर जो ब्रह्म से एकत्व को पाकर स्वयं को ही उनमें लीलारत देख रहा और सर्वमय स्वयं ही स्वयं (पर ब्रह्म) देख रहा वही ब्रह्मभाव में रत है शेष तो मात्र अपर ब्रह्म (वेद या आगम आदि के वाक्यों को रटने) वाले से युक्त हैं। और यह निश्चित ही ज्ञान की पंचम भूमिका पर आरूढ हो गया। अष्टावक्र गीता के

18 वें प्रकरण के 99 वें श्लोक में देखो –

उस आत्मोद्धारी ब्रह्मनिष्ठ को न तो अपनी वंदना सुहाती है न ही निन्दा पर क्रोध आता है न वह जीवन की उपलब्धियों से हर्षित होता है न ही भार्या , पुत्र के मरण या पदच्युत होने पर व्याकुल होता है पर जो संसार के मनुष्य अज्ञानी और पशुतुल्य हैं वे तो पद बचाने के लिए मदिरा और माँस के भंडारे करने से भी बाज नहीं आते और पत्नि या पुत्र के मरण पर (जबकि उसका कर्म इतना ही शेष था जो आपका सान्निध्य इतना भर पा सका) शोक प्रकट करके अकेले में विरह वेदना से पीड़ित भी होकर अश्रुधारा बहाते रहते हैं।

और आप जिस गीता की दुहाई देते हो क्या उसका ज्ञान खण्ड पढ़ा है ढंग से । नहीं पढ़ा होगा तभी आपको चिंता सता रही है कि हाय ! मेरी पत्नी, मेरी पुत्री और मेरे पुत्र या मेरा क्या होगा ?

अरे जिसका जैसा कर्मफल है वही सामने आयेगा फिर आप काहे शोकाकुल हो ।

आपका कार्य मात्र कर्म और लोगों को समझाना है, न कि उनके भाग्य के कारण या उनके पापों से दुखी होकर भोंपू बजाना।

कोई अनुचित आहार विहार कर रहा है तो आप समझा दो पर न माने तो (कुछ हो जाये तो) इलाज करा दो पर रोने से क्या होगा।

जैसे लोग संसार में रो रहे हैं ऐसे ही उस सदस्य को रोने दो (जब मानता ही नहीं , न ही गुरुमंत्र जपता न ही गीता पढ़ता न ही शिवरात्रि न ही वेदान्त का अध्ययन ....तो आप क्यों रोते हो शायद उसने किसी गरीब का भयंकर शोषण किया होगा तभी उसकी बद्दुआ उसे ज्ञान विज्ञान में गोता नहीं लगाने दे रही या वह अति पापी है जिससे वह साधु और संतों की आज्ञा नहीं मानता। बस ।

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः॥

भावार्थः जिनका मन तद्रूप हो रहा है, जिनकी बुद्धि तद्रूप हो रही है और सच्चिदानन्दघन परमात्मा में ही जिनकी निरंतर एकीभाव से स्थिति (अभिन्न भाव की दिव्यता) है, ऐसे तत्परायण पुरुष ज्ञान द्वारा पापरहित होकर अपुनरावृत्ति को अर्थात परमगति को प्राप्त होते हैं।

और सुनों अक्षयरुद्र बार बार कहता है कि घटनाएं तो पूर्व जन्म के पापों या दुर्व्यवहार से घटकर ही रहती हैं तो चिन्ता क्यों करें । अरे घटना 3वर्ष में घटेगी और आप आज से ही अरण्य रोदन कर रहे हो तो लाभ क्या होगा। इन आरंभिक तीन वर्ष का शाश्वत सुख क्यों छोड़ते हो। भगवान श्रीकृष्ण (परम गुरु) की आज्ञा मानों न, यदि नहीं मानते तो रोना तुमको ही पढ़ेगा।

चिन्तया जायते दुःखं नान्यथेहेति निश्चयी।
तया हीनः सुखी शान्तः सर्वत्र गलितस्पृहः॥

भावार्थ : चिंता से ही दुःख उत्पन्न होते हैं किसी अन्य कारण से नहीं, ऐसा निश्चित रूप से जानने वाला, चिंता से रहित होकर सुखी, शांत और सभी इच्छाओं से मुक्त हो जाता है। अतः चिन्ता छोड़कर आत्मभाव में स्थित हो जाओ। फिर आपका तेज अद्वितीय और सौम्य हो जायेगा। आपके मस्तक के आठों दिशाओं में शीतल, मंद और सुगंधित वायु अपने आप (बिना ए.सी. के) बहने लगेगी। और कर्तव्य व अकर्तव्य भी नहीं बचेगा देखो ! आपके इष्ट की अगली मधुर आवाज–

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते॥

भावार्थ : परन्तु जो मनुष्य आत्मा में ही रमण करने वाला और आत्मा में ही तृप्त तथा आत्मा में ही सन्तुष्ट हो, उसके लिए कोई कर्तव्य नहीं है।

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः॥

भावार्थ : ज्ञानी महापुरुष विद्या–विनययुक्त ब्राह्मण में और चाण्डाल में तथा गाय,

हाथी एवं कुत्ते में भी समरूप परमात्मा को देखने वाले होते हैं।

अतः परम मूल में रमण करो। संसार में है ही क्या?

*****

अध्याय–44

हे शिवा! ऐसा मनुष्य महा मूर्ख है।

हे शिवा ! यह मनुष्य महा मूर्ख है जो अल्पायु में ही काल का ग्रास हो रहा है। विभिन्न–विभिन्न रोगों से ग्रसित मनुष्य भी बिना मंत्र के , बिना यंत्र के , बिना तंत्र और बिना औषधि के भी निरोगी काया पाकर शतायु हो सकता है परंतु वह अपने धन पद और कीर्ति के अहंकार में तथा काम के अति वशीभूत होकर शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। काल सभी के पास ही आये ऐसा नियम नहीं है न ही मनुष्य की आयु की अवधि निश्चित है वह अपनी आयु का वर्धन भी कर सकता है तथा मेरे अंश हनुमान की भांति चिरजीवी भी हो सकता है मैं जितनी प्रीति उस अंश (पवनपुत्र) पर करता हूँ उतनी ही प्रीति चराचर पर करता हूँ परंतु मेरी कृपा के लिए अपनी पात्रता और शुचिता की ही आवश्यकता होती है। इस विश्व में चाहे जो भी हो वह ब्राह्मण हो अथवा वर्ण संकर, वह क्षत्रिय हो अथवा शूद्र मैं किसी में भी कोई भेद नहीं करता परंतु मनुष्य अपने ही पापों से पतित होता है जो धर्मानुकूल आचरण करता है वह मुझे कार्तिकेय के समान ही परम प्रिय है। विष्णु, ब्रह्मा आदि अपने धर्म पर आरूढ हैं इसी कारण वे मुझे अत्यधिक प्रिय हैं और दूसरा कोई भी कारण नहीं मैं किसी का पद, ऐश्वर्य, व्रत–उपवास अथवा सिद्धियों को देखकर प्रसन्न नहीं होता; मुझे तो उसके विशुद्ध अंतःकरण से ही एकमात्र प्रीति होती है। जिसका हृदय जितना अधिक निश्छल होगा उसके द्वारा लिया गया एक बार मेरा नाम ही शिवलोक देने की क्षमता रखता है और जो मलिन पुरुष है वह यदि रात दिन सहस्र अयुत मालाएं भी करें तो भी वह सदा के लिए मेरे धाम को उपलब्ध नहीं हो सकता वह शिव लोक अथवा वैकुण्ठ से भी गिरा दिया जाता है हे अन्नपूर्णा! बिल्वपत्र से मेरी सेवा , अभिषेक और मंदिर निर्माण या नित्य स्वर्ण दान से भी मेरा शिव लोक मेरे उपासक को अवश्य ही प्राप्त होता है परंतु यदि वह मरने तक भी दुर्बुद्धि से युक्त रहा तो वह एक मन्वन्तर या कुछ कल्पों के बाद निश्चित ही मृत्युलोक पर जन्म लेता है।

मुक्ति या परम धाम केवल निश्चल हृदय के भक्तों के लिए ही सतत् हैं मूढ़ बुद्धि या व्याभिचारी के लिए वह लोक सतत् सुख का सागर नहीं। पूर्व जन्म का पापी (राजा बलि) भी अपने कुछ पुण्य से उच्च लोक अवश्य गया पर पुनः पृथ्वीपर उसे भी आना ही पड़ा, वीरभद्र भी तीन जन्म पूर्व महापापी था पर कुछ पुण्य से शिवलोक अवश्य प्राप्त किया था पर उसे भी पुनः जन्म लेना पड़ा तब पुनः तपस्या और निश्चल हृदय होने के बाद ही उसे मेरा सायुज्य प्राप्त हुआ।

मनुष्य अपने कुटिल व्यवहार और अति काम से आयु का ह्रास भी कर सकता है। यह जीव साक्षात् मुझ शिव के समान है पर वह कुसंग और असंत (पापी मित्र) के सान्निध्य के कारण ही मारा जाता है। इस उपाय से जो मंत्रहीन और तंत्ररहित है वह चिरंजीवी तक हो सकता है परंतु यह उपाय परस्त्रीगमन करने वाले पर प्रभावी नहीं होगा। जिस मनुष्य ने किसी पिता की पुत्री (परायी किशोरी या पराई स्त्री) को दूषित किया हो वह पुरुष तो चारों युगों में धर्मविरोधी और दूषित अंतःकरण वाला ही मानने योग्य है वह चाहे कितना ही यह वचन कहे कि मैं शुद्ध बुद्ध हूँ और ईश्वर तो भाव का भूखा है और ऐसा कहकर भिन्न–भिन्न स्त्रियों को जो कुभाव (दृष्टि कटाक्ष से) से देखता हो अथवा स्वभार्या के प्रति भी जो ऋतुकाल नियम का उल्लंघन करता है और धर्मानुकूल न होकर पर्व पर भी संसर्ग करते हुए उस पर्व को दूषित करता है वह सुभावी नहीं अपितु कुभावी है । सुभावी मनुष्य मात्र दयालुता को नहीं कहते अपितु यम नियम पर भी ध्यान केंद्रित करने को कहते हैं। मानव मात्र अपने गुरु या गुरु स्वरूप संतजनों की कृपा से शब्दब्रह्म के माहात्म्य को जानकर ही अमर हो जाता है यह काल को जीतने का सरल उपाय है।

नोट– विधि शिवपुराण की उमा संहिता व भैरव गीता में देखें। और स्तोत्र से निरोगी व अमर होना हो तो श्रीलोमशकृत श्रीमृत्युंजय स्तोत्र या श्रीभैरवकृत श्रीमृत्युंजय कवच है जो हमने शास्त्रों के अद्‌भुत रहस्य में लिखे हैं।

*****

अध्याय–45

गुरुलिंग

प्रणव ही समस्त अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला प्रथम लिंग है इसे सूक्ष्म प्रणवरूप समझिये। सूक्ष्मलिंग निष्कल होता है। सकल पंचाक्षर मन्त्रको ही स्थूललिंग कहते हैं।उन दोनों प्रकारके लिंगोंका पूजन तप कहलाता है। वे दोनों ही लिंग साक्षात् मोक्ष देनेवाले हैं। शिवपुराण में वर्णित है कि पौरुषलिंग और प्रकृतिलिंगके रूपमें बहुत–से लिंग हैं। उन्हें भगवान् शिव ही विस्तारपूर्वक बता सकते हैं; दूसरा कोई नहीं जानता।

पृथ्वीके विकारभूत लिंग ज्ञात–

1. प्रथम स्वयम्भूलिंग,
2. दूसरा बिन्दुलिंग,
3. तीसरा प्रतिष्ठित लिंग,
4. चौथा चरलिंग और
5. पाँचवाँ गुरुलिंग है।

यह परमगुरु ही गुरुलिंग हैं जो परमहितकारी है।

*****

अध्याय–46

जगदम्बिका 'गुरु के गुरु की' भी परमगुरु हैं।

त्रिदेवों की एक मर्यादा और सीमा है पर असीमित और अनंत व अथाह कृपा के लिए हे मनुष्य! तू केवल पराम्बा की सेवा कर और सीमित फल चाहिए तो देव, दानव, भूत प्रेत और पितरों को इष्ट बना।

यथार्थ देव और महान गुरु तो वही है हे अक्षयरुद्र! जो तुझसे कहे कि अब बहुत हुआ बस अब केवल मेरी आदि गुरु अर्थात् गुरु के गुरु की .... पराशक्ति के नाम को ही अपने अंतःकरण का आभूषण बना तभी हम स्वयं परम सहायक होंगे क्योंकि हमारी शक्ति का आधार भी पराम्बा हैं।

जो गुरु, जो संत, जो ग्रह या जो त्रिदेव समूह अपने शिष्य को पराशक्ति से न जोड़कर अपनी ही चाकरी में संलग्न रखे वह न तो ढंग का गुरु है न ही ढंग का देवता।

अतः हे सांसारिक गुरुओं! आप भी अपने शिष्यों को एकमात्र पराशक्ति का भजन करने की प्रेरणा दें। शिष्य के घर के मंदिर में अपनी फोटो लगाने की आज्ञा न दें और यह कहे कि – एकमात्र पराम्बा में चित्त लगाओ। तभी आपका गुरुत्व सार्थक होगा। साक्षात् मंदिर में भी गुरु या संत का कर्तव्य है कि वो अपने चरण न छूने दे और मात्र पराशक्ति में मन लगाने का उपदेश दे।

32 अपराधों में से एक अपराध यही है कि अपने इष्ट की मूर्ति के सामने अपने पाँव स्पर्श करवाना।

शिष्य का कर्तव्य होता है कि पहली व एक बार – उस गुरु के मंदिर में दिखते ही नमन करे पर तत्काल उस गुरु का कर्तव्य होता है कि उस शिष्य को आज्ञा दे कि –हे पुत्र! आज के बाद इस गर्भगृह में मुझे नमन मत

करना यह मेरी आज्ञा है। इससे उस शिष्य का पाप या अपराध भी नहीं माना जायेगा।

कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न–

आत्मज्ञान को कौन उपलब्ध हो पाता है?

समाधान–

गुरुप्रादतः स्वात्मन्यात्मारामनिरिक्षणात्।
समता मुक्तिमर्गेण स्वात्मज्ञानं प्रवर्तते ।।

श्री गुरुदेव की कृपा से अपने भीतर ही आत्मानंद प्राप्त करके समता और मुक्ति के मार्ग द्वार शिष्य आत्मज्ञान को उपलब्ध होता है।

तुम कौन हो?

समाधान–

अजोऽहममरोऽहं च ह्यनादिनिधनोह्यहम्।
अविकारश्चिदानन्दो ह्यणियान् महतो महान् ।।

मैं अजन्मा हूँ, मैं अमर हूँ, मेरा आदि नहीं है, मेरी मृत्यु नहीं है मैं निर्विकार हूँ, मैं चिदानन्द हूँ, मैं अणु से भी छोटा हूँ और महान् से भी महान् हूँ।

ब्रह्म को कैसे समझें? समझ ही नहीं आता?

समाधान–

अपूर्वमपरं नित्यं स्वयं ज्योतिर्निरामयम् ।
विरजं परमाकाशं ध्रुवमानन्दमव्ययम् ।।

अगोचरं तथाऽगम्यं नामरूपविवर्जितम्।
निःशब्दं तु विजानीयात्स्वाभावाद् ब्रह्म पार्वति ।।

हे पार्वती ! ब्रह्म को स्वभाव से ही अपूर्व (जिससे पूर्व कोई नहीं ऐसा), अद्वितीय, नित्य, ज्योतिस्वरूप, निरोग, निर्मल, परम आकाशस्वरूप, अचल,

आनन्दस्वरूप, अविनाशी, अगम्य, अगोचर, नाम–रूप से रहित तथा निःशब्द जानना चाहिए ।

यथा गन्धस्वभावत्वं कर्पूरकुसुमादिषु ।
शीतोष्णस्वभावत्वं तथा ब्रह्मणि शाश्वतम्।।

जिस प्रकार कपूर, फूल इत्यादि में गन्धत्व, (अग्नि में) उष्णता और (जल में) शीतलता स्वभाव से ही होते हैं उसी प्रकार ब्रह्म में शश्वतता भी स्वभावसिद्ध है ।

सोऽहम् में अहम् कौन है इसका तात्पर्य क्या है?

समाधान–

यथा निजस्वभावेन कुंडलकटकादयः।
सुवर्णत्वेन तिष्ठन्ति तथाऽहं ब्रह्म शाश्वतम् ।।

जिस प्रकार कटक, कुण्डल आदि आभूषण स्वभाव से ही सुवर्ण हैं उसी प्रकार मैं स्वभाव से ही शाश्वत ब्रह्म हूँ ।

ब्रह्म स्वरूप होने के लिए क्या करें?

स्वयं तथाविधो भूत्वा स्थातव्यं यत्रकुत्रचित् ।
कीटो भृंग इव ध्यानात् यथा भवति तादृशः ।।

स्वयं वैसा होकर किसी–न–किसी स्थान में रहना जैसे कीडा भ्रमर का चिन्तन करते–करते भ्रमर हो जाता है वैसे ही जीव ब्रह्म का ध्यान करते–करते ब्रह्मस्वरूप हो जाता है

अन्य शब्दों में–

गुरोर्ध्यानेनैव नित्यं देही ब्रह्ममयो भवेत् ।
स्थितश्च यत्रकुत्रापि मुक्तोऽसौ नात्र संशयः ।।

सदा गुरुदेव (मूल तत्व शिव रूप न कि शव रूप भौतिक चोला यह शिवपुराण का मतहै)का ध्यान करने से जीव ब्रह्ममय हो जाता है, वह किसी भी स्थान में रहता हो फ़िर भी मुक्त ही है इसमें कोई संशय नहीं है।

परम गुरु को भगवान क्यों कहते हैं?

समाधान–

छः गुणरूप होने के कारण। अर्थात 6 ऐसे ऐश्वर्य जिनके कारण भगवान की उपमा कोई भी पा सकता है उन ऐश्वर्यात्मक शक्तियों के कारण शिष्य अथवा हर कोई उन दिव्य भगधारी को भगवान कहते हैं।

ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं यशः श्री समुदाहृतम्।
षड्गुणैश्वर्ययुक्तो हि भगवान् श्री गुरुः प्रिये।।

हे प्रिये ! भगवत्स्वरूप श्री गुरुदेव ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, यश, लक्ष्मी और मधुरवाणी, ये छः गुणरूप ऐश्वर्य से संपन्न होते हैं ।

इसी कारण–

गुरुः शिवो गुरुर्देवो गुरुर्बन्धुः शरीरिणाम ।
गुरुरात्मा गुरुर्जीवो गुरोरन्यन्न विद्यते ।।

मनुष्य के लिए गुरु ही शिव हैं, गुरु ही देव हैं, गुरु ही बांधव हैं गुरु ही आत्मा हैं और गुरु ही जीव हैं (सचमुच) गुरु के सिवा अन्य कुछ भी नहीं है।

हे अक्षयरुद्र ! ब्रह्मानंद से परिपूर्ण अपरोक्ष ज्ञाननिष्ठ अभिन्नभाव से भावित ब्रह्मज्ञानी के लक्षण बतायें?

इसका उत्तर भी हम श्रीगुरुगीता के अनुसार ही श्रीमहादेव (गुरुदेव)की वाणी रूप में व्यक्त कर रहे हैं।

सुनों–

एकाकी
निस्पृहः
शान्तः
चिंतासूयादिवर्जितः।
बाल्यभावेन
यो भाति........ ब्रह्मज्ञानी स उच्यते।।

अकेला, कामनारहित, शांत, चिन्तारहित, ईर्ष्यारहित और बालक की तरह जो शोभता है वह ब्रह्मज्ञानी कहलाता है।

सच्चा सुख कहाँ है?

न सुखं वेदशास्त्रेषु न सुखं मंत्रयंत्रके ।
गुरोः प्रसादादन्यत्र सुखं नास्ति महीतले।।

वेदों और शास्त्रों में सुख नहीं है, मंत्र और यंत्र में सुख नहीं है द्य इस पृथ्वी पर गुरुदेव के कृपाप्रसाद (महावाक्यों के लक्ष्यार्थ होने से और वीतरागस्य रूपया के कारण उन निर्मोही) के सिवा अन्यत्र कहीं भी सुख नहीं है।

चावार्कवैष्णवमते सुखं प्रभाकरे न हि ।
गुरोः पादान्तिके यद्वत्सुखं वेदान्तसम्मतम् ।।

गुरुदेव के श्री चरणों में जो वेदान्तनिर्दिष्ट सुख है वह सुख न चावार्क मत में, न वैष्णव मत में और न प्रभाकर (सांखय) मत में है।

सबसे उत्तम सुख इस भूलोक में या प्रत्येक।

ब्रह्मांड में किसको मिलता है?

समाधान–

न तत्सुखं सुरेन्द्रस्य न सुखं चक्रवर्तिनाम् ।
यत्सुखं वीतरागस्य मुनेरेकान्तवासिनः ।।

एकान्तवासी वीतराग मुनि (जो यथार्थ एकत्व को समझकर एकाकी अर्थात द्वैतहीन होकर स्वयं पूर्णत्व में रमण कर रहा है जो 100 प्रतिशत अमरता के कारण, ब्रह्म रूप व अचिन्त्य हो गया उसको)

जो सुख मिलता है वह सुख न इन्द्र को और न चक्रवर्ती राजाओं को मिलता है द्य

नित्यं ब्रह्मरसं पीत्वा तृप्तो यः परमात्मनि ।
इन्द्रं च मन्यते रंकं नृपाणां तत्र का कथा।।

हमेशा ब्रह्मरस का पान करके जो परमात्मा में तृप्त हो गया है वह (मुनि) इन्द्र को भी गरीब मानता है तो राजाओं की तो बात ही क्या ?

कैवल्यमय होने के लिए अध्यात्म में परम आज्ञा क्या है जप तप ध्यान या तीर्थ स्थल पर उपासना या अन्य?

यतः परमकैवल्यं गुरुमार्गेण वै भवेत्।
गुरुभक्तिरतिः कार्या सर्वदा मोक्षकांक्षिभिः।।

कैवल्यमयता की आकांक्षा करनेवालों को (सात प्रकार के गुरुओं में से छः प्रकारों का त्याग करके, पहली से तीसरी भूमिका–धारी गुरु कात्याग करके चतुर्थ से सप्तम् भूमिका वाले) परमगुरु की ही भक्ति खूब करनी चाहिए, क्योंकि गुरुदेव के द्वारा ही परम मोक्ष की प्राप्ति होती है द्य और शिव पुराण के अनुसार द्वितीय भूमिका वाला दीक्षागुरु ब्रह्मज्ञानी नहीं होता मात्र बोधक गुरु होता है अतः जब भी उच्च स्तरीय भूमिका वाला गुरु (100 प्रतिशत तद्भाव से युक्त) मिल जाए तो इसकी सेवा का परित्याग करके और बिना द्रोह किये बिना निंदा किये ब्रह्मानंद से परिपूर्ण अपरोक्ष ज्ञाननिष्ठ अभिन्नभावी की सेवा सुश्रुषा आरंभ कर देना चाहिए।

वनवास का सेवन किसे आवश्यक नहीं,

समाधान– जो परम गुरु की शरण से अभिन्न ज्ञान से संपन्न हो गया अर्थात
एक एवाद्वितीयोऽहं गुरुवाक्येन निश्चितः ।
एवमभ्यास्ता नित्यं न सेव्यं वै वनान्तरम् ।।
अभ्यासान्निमिषणैव समाधिमधिगच्छति।
आजन्मजनितं पापं तत्क्षणादेव नश्यति।।

गुरुदेव के वाक्य की सहायता से जिसने ऐसा निश्चय कर लिया है कि मैं एक और अद्वितीय हूँ और उसी अभ्यास में जो रत है उसके लिए अन्य वनवास का सेवन आवश्यक नहीं है, क्योंकि अभ्यास से ही एक क्षण में समाधि लग जाती है और उसी क्षण इस जन्म तक के सब पाप नष्ट हो जाते हैं ।

सर्वज्ञ कौन?

समाधान –

सर्वज्ञपदमित्याहुर्देही सर्वमयो भुवि।
सदाऽनन्दः सदा शान्तो रमते यत्र कुत्रचित् ।।

जो जीव इस जगत में सर्वमय, आनंदमय और शान्त होकर सर्वत्र विचरता है उस जीव को सर्वज्ञ कहते हैं।

यत्रैव तिष्ठते सोऽपि स देशः पुण्यभाजनः।
मुक्तस्य लक्षणं देवी तवाग्रे कथितं मया ।।

ऐसा (सर्वज्ञ)पुरुष जहाँ रहता है वह स्थान पुण्यतीर्थ है, हे देवी ! तुम्हारे सामने मैंने मुक्त पुरूष का लक्षण कहा।

यद्यप्यधीता निगमाः षडंगा आगमाः प्रिये ।
आध्यामादिनि शास्त्राणि ज्ञानं नास्ति गुरुं विना।।

हे प्रिये ! मनुष्य चाहे चारों वेद पढ़ ले, वेद के छः अंग पढ़ ले, आध्यात्मशास्त्र आदि अन्य सर्व शास्त्र पढ़ ले फ़िर भी उच्च स्तरीय परमगुरु के बिना ज्ञान नहीं मिलता और यह सर्वज्ञता परम भूमिका से युक्त ब्रह्मनिष्ठ की कृपा से ही संभव है।

फलश्रुति में भेद का कारण क्या है?

सड़क पर पड़ा एक कांटा हटाने पर भी कभी न कभी फल मिलता ही है उसी प्रकार प्रभु का सुमिरन जप कभी व्यर्थ नहीं जाता पर फलश्रुति में भेद का कारण अवश्य ही है। बिना दीक्षा के भी पंचाक्षरी जैसे मंत्र अवश्य ही परम लाभ देते हैं फिर चाहे वह शास्त्र में पढ़के जपो चाहे सुनकर या विधिपूर्वक दीक्षा से। पर कुछ मंत्र लाभ की जगह हानि भी करते हैं और निषिद्ध गुरु का दिया मंत्र या विधिहीन दिया मंत्र सिद्ध नहीं होता । फिर भले ही आप पत्थर से मंत्र लो चाहे पत्थर में परमात्मा देखकर उत्तम भाव रखो। पर हाँ भाव से आंशिक फल अवश्य ही प्राप्त होगा पर मंत्र सिद्धि का भावना मात्र से कोई संबंध नहीं।

यम नियम तो अनिवार्य है ही साथ में पटल और मंत्र के 10 संस्कार भी अनिवार्य है।

1. घर या अतीर्थ में स्मरण से मरने पर कुछ युगों तक भोग।
2. बिना दीक्षा के एक गुना अल्प फल (पर कुछ मंत्रों से हानि भी)
3. जिसने दीक्षा ली है उस मंत्र के जप से 100 से 1000 गुना अधिक फल
4. जिसके गुरु ने ब्रह्मचर्य की अवधि तक पूर्णतः ब्रह्मचर्य का पालन किया हो और बाद में भी साधना के लिए कम से कम 3 वर्ष या 6,12 या 48 वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन किया हो और त्रिकाल या द्विकाल संध्या में भी उसी मंत्र का जप किया हो जो दीक्षा में देता है या जो बृहत् ब्रह्मचारी हो (या ब्राह्म ब्रह्मचारी या प्राजापत्य ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला'')उससे प्राप्त मंत्र से 10,000गुना
5. जिसके गुरु को शाम्भवी या शाक्तिक दीक्षा प्राप्त हुई हो और जिससे वह परम विशुद्ध व अनासक्त हो गया हो और स्थितप्रज्ञ अर्थात् द्वंद्वातीत तद्भावी .....या जो ज्ञान की चौथी भूमिका से छटवीं (या वही परम सातवीं)भूमिका के बीच पहुँच गया हो उसके द्वारा प्रदत्त मंत्र जप से 100000 गुना फल मिलता है।
6. कुटिचक्र संन्यासी से दीक्षा पर वह लाभ नही मिलता जो हंस या परमहंस संन्यासी से सौभाग्य वश शाम्भवी दीक्षा प्राप्ती से मिलता है। वैसे संन्यासी को मंत्रदीक्षा नही देना चाहिए।

परंतु परम गुरु यदि मंत्र भी न दें और शाक्तिक दीक्षा भी न दें तो वह मात्र (वैराग्यवान व्यक्ति को) उपदेश से भी भवरोग का नाश कर देते हैं।

000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000

*****

अध्याय–47
अनिवार्य जानने योग्य सत्य

एक उपनिषद में मात्र तीर्थ यात्रा पर भ्रमण या फल फूलात्मक पूजा को अधम (अल्प मात्रा में फलदायी, आंशिक कृपा दायी या मात्र सालोक्य मुक्ति दाता) बताया है। नाम जप को पूजा मात्र से श्रेष्ठ और त्रिकाल या द्विकाल स्नान करके त्रिकाल या द्विकाल में पूजा के साथ, पवित्रभूमि पर (प्रणव या श्री व नमः सहित) मंत्रजप और स्तोत्र से मात्र औपचारिक क्रियायोग (पूजा, अभिषेक मात्र) की तुलना में श्रेष्ठतर फल कहा गया है।

और पूजा, नाम जप ,मंत्र जप करके या इनको अल्प समय देकर करोड़ गुना लाभ सत्संग का बताया है, पर सत्संग देने वाला या वक्ता कर्मकांड में उलझाने वाला न हो, मात्र जड़भरत जैसा वैराग्यवान और स्पृहाओं से हीन हो।

जैसे कि शुकदेव।

✎ नोट

परीक्षित ने भी अपने अंतिम सात दिनों में पूजा, नाम, मंत्र, तीर्थ यात्रा को गौण समझकर समस्त तीर्थों का निवास स्थल शुकदेव जैसे वीतरागी को चुना और सत्संग श्रवण किया।

तो अनुमान लगा लो कि सत्संग से बड़ा क्या है?

(इसी कारण पूर्व काल में शिष्य 6या 12 साल तक गुरु की सेवा करते हुये ब्रह्मचर्य के व्रत में स्थित होकर सत्संग श्रवण से ही अपने जीवन को सफल करते थे।

इसी कारण भागवत जी में कहा है कि जो मनुष्य तीर्थ स्थल पर जाकर अपने तन को तो स्नान करा देता है पर अंतःकरण की शुद्धि के लिये

संतस्नान नहीं करता ,सत्संग नहीं सुनता और सुनकर आधी घड़ी भी चिंतन नहीं करता वह पशुओं में नीच गधा ही है।

(हालाँकि तीर्थ स्नान से पूर्व पाप नष्ट हो जाते हैं इसमें संदेह नहीं, पर सत्संग की महिमा से अनभिज्ञ लोगों को यहाँ गधा की उपमा दी है)

यद्यपि उत्तम गुरु दुर्लभ है पर कठिन नहीं।

अतः जल्दबाजी न करें।

इसी कारण तो गुरुगीता और शिव पुराण में कहा है कि –

धैर्य रखें और किसी तथाकथित संत या कोई भी साधु नाम से सुविख्यात

की एक साल तक परीक्षा लेने के बाद ही दीक्षा लें (गुरु भी कम से कम एक–दो वर्ष तक व्यक्ति को परखें)

और यदि किसी कारण वश परखने के बाद भी , दीक्षा के बाद भी समर्पित होने से भी एक साल तक चित्त विश्रांत न हो तो

बिना कुछ कटाक्ष किये उस पूर्व गुरु को बदल दें पर दान दक्षिणा नवीन पात्र को ही दें केवल वह कभी अपने घर आये तो भोजन पानी आदि खिलाकर प्रेम से बोलें पर मन का झुकाव नवीन ज्ञानी की ओर ही रखें ।

ज्ञान की पराकाष्ठा पर भी शिष्य का गुरु के प्रति शिष्यत्व–

ज्ञान प्राप्त करने का तात्पर्य है कि अद्वैत सिद्ध हो गया पर अद्वैत सिद्ध होने के बाद भी जब भी ब्रह्मदाता गुरु के दर्शन हों तब अद्वैत का भाव तिरोहित करके दास बनके ही सेवा का विधान है। गुरु की पूजा स्वामी व दास भाव से ही होना चाहिए।

संपूर्ण धर्मसार और संपूर्ण ज्ञान विज्ञान प्राप्त करने पर भी शिष्य का कर्तव्य है कि वह अपने गुरु की यथासंभव सेवा करता रहे। अर्थात परम कैवल्यमय होने पर भी शिष्य गुरु के समक्ष द्वैतभावी होकर सेवा करे। पर गुरुदेव जायें या शिष्य उनसे भौतिक रूप से दूर रहे तब वह अपने ब्रह्मभाव में ही रहे । इससे उसे ब्रह्मसुख मिलेगा।

शिष्य के कुछ अन्य कर्तव्य निम्नलिखित हैं:

१) गुरु का आदेश शिरोधार्य करना
२) गुरु की सेवा करना
३) गुरु का सम्मान करना
४) गुरु के ज्ञान को ग्रहण करना
५) गुरु के बताए मार्ग पर चलना
६) गुरु की रक्षा करना
७) गुरु के प्रति कृतज्ञता दिखाना
८) गुरु के ज्ञान को अन्यों को प्रसारित करना
९) गुरु के चरणों में समर्पण करना
१०) गुरु की शिक्षा को जीवन में उतारना

इन कर्तव्यों को पालन करके शिष्य गुरु की कृपा और ज्ञान का लाभ उठा सकता है।

●●●●●●●●●●●●●

शिष्यस्य कर्तव्यं यथासंभवम् गुरुसेवा।
परमकैवल्यमये ऽपि गुरौ द्वैतभावीभूत्वा सेवते।

गुरुदेवप्रस्थिते वा शिष्यभौतिकदूरे ऽपि ब्रह्मभावे स्थितः।
ब्रह्मसुखमवाप्नोति तद् विज्ञानम्।

शिष्यस्य कर्तव्यानि चान्यानि:

१) गुरुवाक्यं शिरोधार्यं कर्तुम्
२) गुरुसेवां कर्तुम्
३) गुरौ सम्मानम् कर्तुम्
४) गुरुज्ञानं ग्रहीतुम्
५) गुरुणा उपदिष्टं मार्गं अनुसर्तुम्
६) गुरुरक्षां कर्तुम्

७) गुरौ कृतज्ञतां दृष्टुम्
८) गुरुज्ञानं परेषां प्रसारयितुम्
९) गुरुचरणेषु समर्पणं कर्तुम्
१०) गुरुशिक्षां जीवने अनुवर्तयितुम्

एतानि कर्तव्यानि अनुसृत्य शिष्यः गुरुकृपां ज्ञानं च लभेत।

*****

अध्याय–48

गुरुपत्नि की सेवा की मर्यादा

शिष्य अपने गुरु की भार्या को देवी पराम्बा के भाव से देखे और आज्ञा माने पर तेल मालिश न करें न ही एकांत में रहकर उनकी सेवा करे। शिष्य अपनी स्वयं की पत्नि से ही गुरुपत्नि की सेवा कराये कारण वही है कि इंद्रियां भयंकर बलवान होती हैं एक बार चंद्र देवता का संबंध भी गुरुकी पत्नि तारा से हो गया था जिसका फल बुधदेव हैं पर महान जप तप से ही प्रायश्चित हुआ था अतः उचित है कि यह महापाप हो ही न ।

ज्ञानीपत्नि भी पति की गुरु ही होती है।

प्रमाण सहित योगवाशिष्ठ का लेख, अतः अज्ञानी और अहंकारी पति अपने आपको पत्नि का गुरु मानकर पाप मोल न लें। पहले तो चूड़ाला सी महाभार्या से ज्ञान लें और फिर जगतगुरु बनें, पर सावधान पत्नि यदि मोह से ग्रस्त है तो पति को अशुद्ध ज्ञान न परोसे और चुपचाप किसी ज्ञानी के पास भेजने का निर्णय करे।)

जैसे मरुमरीचिका में प्रतीत होने वाले जल का ज्ञान 'यह जल नहीं है,' इस यथार्थ ज्ञान से नष्ट हो जाता है, वैसे ही यह चित्त है। इस रूप से हृदय में दृढ़ हुआ जो अज्ञानात्मक विकार है, वह 'यह चित्त नहीं है' इस यथार्थ ज्ञान से समूल विनष्ट हो जाता है। जैसे अज्ञान भ्रम से उत्पन्न हुई रज्जु में सर्परूपता 'यह सर्प नहीं है' इस तरह के हृदय में दृढ़ हुए यथार्थ ज्ञान से नष्ट हो जाती है, वैसे ही आत्मा में अज्ञान–भ्रम से उत्पन्न हुआ मनोरूप चित्त 'यह चित्त नहीं है' इस तरह के हृदय में दृढ़ हुए यथार्थ विज्ञान से विनष्ट हो जाता है।

मन,

बुद्धि,

चित्त,
अहंकार

आदि सारे पदार्थ हृदय में अज्ञान से उत्पन्न हुए हैं। वस्तुतः इस जगत् में चित्त नहीं है और इसी तरह अहंकारादि से संयुक्त देहादि कुछ भी नहीं है, किंतु एकान्त निर्मल एक आत्मा ही है। अज्ञानी जीवों के द्वारा ही अज्ञान से मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार की रचना की गयी है, किंतु आज हे सौम्य! आपने संकल्प के अभाव के द्वारा उन सबका परित्याग कर दिया है, क्योंकि जो पदार्थ संकल्प से आता है, उसका संकल्प का अभाव होते ही विनाश हो जाता है। जैसे जल से समुद्र परिपूर्ण है, वैसे ही सच्चिदानन्दघन परमात्म तत्त्व से यह सारा संसार परिपूर्ण है।

न मैं हूँ,
न आप हैं,
न अन्य हैं,
न ये सब पदार्थ हैं।
न चित्त है,
न इन्द्रियाँ हैं
और न आकाश ही है।
न ही कोई गुरु
और न ही कोई शिष्य

सर्वमय केवल एक विज्ञानानन्दघन विशुद्ध परमात्मा ही है। और यथार्थ गुरु भी शिष्य का शिष्यत्व दूर कर परिपूर्णता की सच्चाई ही बताते हैं इस योगवाशिष्ठ के अतिरिक्त श्री दत्तात्रेय प्रभु की अवधूत गीता और जीवन्मुक्त गीता भी यही कहती है और ईश्वर गीता व अष्टावक्र गीता भी।

घट–पटादि दृश्य–जगत के आकाशरूप से एक वह परमात्मा ही दिखायी देता है। 'यह चित्त है, यह मैं हूँ' इत्यादि तो असत्य कल्पनाएँ हैं। आगे निर्वाण प्रकरण पूर्वार्ध सर्ग 101 में श्रीवसिष्ठजी ने कहा कि–रघुकुलभूषण राम! इस प्रकार कुम्भ के स्वाभाविक वचनों पर विचार करके राजा शिखिध्वज उसी क्षण स्वयमेव आत्मपद में स्थित हो गये। फिर तो उनके मन और नेत्रों का व्यापार बंद हो गया, वाणी शान्त हो गयी तथा वे ध्यानस्थ होकर मनन

करने लगे, उस समय उनके शरीर के सभी अवयव ऐसे निश्चल हो गये, मानो शिलातल पर खुदी हुई कोई मूर्ति हो। महाबाहो! तदनन्तर दो ही घड़ी के बाद जब उनकी ध्यानमुद्रा भंग हुई और वे विकसित नेत्रों से कुम्भ की ओर देखने लगे, तब कुम्भरूपिणी चूडाला (राजा की पत्नि जो राजा के अज्ञान का नाश करने के लिए गुरु रूप में ही सिद्ध हुई) ने राजा से प्रश्न करना आरम्भ किया।

कुम्भ ने पूछा राजन! जो अत्यन्त प्रकाशमान, शुद्ध, विस्तृत एवं निर्मल है तथा जो निर्विकल्प समाधि में स्थित रहने वाले योगियों के लिये सुन्दर शय्या के समान है, उस आत्मपद में आपको आनन्दपूर्वक विश्रान्ति प्राप्त हो चुकी न?

आपका अन्तःकरण प्रबुद्ध हो गया न?
आपने भ्रान्तिका परित्याग कर दिया न?
ज्ञातव्य का ज्ञान प्राप्त कर लिया? और
द्रष्टव्य वस्तु देख ली न?

शिखिध्वज बोले–हे भगवन्! हे गुरुदेव! आपकी कृपा से मुझे उस महती पदवी का साक्षात्कार हो गया, आप धन्य हो आपके कारण मेरे अज्ञान का समूल नाश हो गया।

जो निरतिशयानन्द की भूमिका और समस्त उत्कर्षों की पराकाष्ठा है। अहो! जनने योग्य वस्तुओं के ज्ञान से सम्पन्न संत–महात्माओं का सङ्ग अपूर्व एवं सर्वोत्तम अमृतमय होता है, अतः सर्वोत्कृष्ट फल प्रदान करने वाला है। प्रभो! जिस महामृत की उपलब्धि मुझे सारे जन्म में भी नहीं हुई, वही आज आपके समागम से अनायास ही सुलभ हो गयी। परंतु कमललोचन! इस अनन्त, आद्य एवं अमृतस्वरूप आत्मपद की प्राप्ति मुझे पहले ही क्यों नहीं हो गयी?

कुम्भ ने कहा राजन्! जब भोगेच्छाओं का परित्याग कर देन से मन तत्काल पूर्णतः शान्त हो जाता है और सम्पूर्ण इन्द्रियगणों के भोगरूप दोषों की निवृत्ति हो जाती है, तब चित्त में उपदेशक की विमल उक्तियाँ उसी प्रकार स्थित हो जाती हैं, जैसे शुद्ध स्वच्छ वस्त्र पर कुंकुममिश्रित जल के छींटे।

कमलनयन! आपके अपने वासना स्वरूप अनन्त दोषों का, जो अनेक जन्मों के शरीरों द्वारा संगृहीत किये हुए थे, परिपाक आज प्रकट हुआ है। साधुशिरोमणे! कालद्वारा परिपक्व होकर सम्पूर्ण दोष शरीरसे निकल जाते हैं।

सखे! शरीर से वासनात्मक दोषों के निकल जाने पर गुरुदेव (यथार्थ आत्मबोध से युक्त ज्ञाननिष्ठ) जो कुछ निर्मल उपदेश देते हैं, वह शीघ्र ही अन्तःकरणमें प्रविष्ट हो जाता है।

महामते! दोषों का परिपाक सम्पन्न हो जाने पर आज मैंने आपको (गुरुरूप में) उद्‌बुद्ध किया है।

इसी कारण आज ही आपके अज्ञान का विनाश हो गया। आज आपके सभी दोष परिपक्व हो–होकर नष्ट हो गये। आज ही आपने सम्यक् रूप से ज्ञानोपदेश धारण किया है। आज ही आप उपदेश सम्पन्न हुए हैं और आज ही आप प्रबोधवान् भी हुए हैं।

सत्सङ्ग के व्याज से आज आपके समस्त शुभ–अशुभ कर्मों का समूल विनाश हो गया। जब तक इस दिन का पूर्वभाग बीत रहा था, तब तक आपके चित्त में 'यह मैं हूँ, यह मेरा है ऐसा अज्ञान वर्तमान था परंतु भूपते! इस समय मेरा वचनोपदेश बड़े आदर के सहित श्रवण करके आपने अपने हृदय से उस अज्ञान को निकाल फेंका है, जिससे आपके चित्त का विनाश हो गया है अतः अब आप भलीभाँति प्रबुद्ध हो गये हैं।

राजन! जब तक हृदय में मन का अस्तित्व वर्तमान रहता है, तब तक अज्ञान रहता है किंतु ज्यों ही अचित्त रूप से चित्त का विनाश हुआ, त्यों ही ज्ञान का अभ्युदय हो जाता है।

द्वैतमयी दृष्टि और अद्वैत का बार–बार विचार भी चित्त है और वही अज्ञान भी कहा जाता है, इन दोनों की दृष्टि का जो विनाश है, वही ज्ञान तथा वही परम गति है। नरेश्वर! जो प्रतीत होने के कारण सत् और वास्तव में न होने के कारण असत् है तथा जो मिथ्या जगत् की कल्पना का स्थान है, उस चित्त का तो आपने विनाश कर ही दिया। इससे अब आपका ज्ञान जाग उठा है और आप विमुक्त हो गये हैं अतः अब आप

शोकशून्य,

आशारहित,

निःसङ्ग,

स्वयं ही स्वयं के अनन्य,
आत्मज्ञान सम्पन्न,
महान् अभ्युदय से युक्त,
मौनी एवं
मुनि होकर अपने निर्मलस्वरूप में स्थित रहिये।

शिखिध्वज बोले–भगवन्! यों आपके कथनानुसार जो मूर्ख जीव के लिये ही चित्त है, ज्ञानी के लिये नहीं किंतु प्रभो! यदि आत्मज्ञानी के लिये चित्त है ही नहीं तो ये आप–जैसे जीवन्मुक्त मनुष्य मन से रहित होकर जगत् में कैसे विचरण करते हैं? यह बतलाने की कृपा कीजिये।

कुम्भ ने कहा–''तत्त्वज्ञ! आप जैसा कह रहे हैं यह ठीक वैसा ही है इसमें थोड़ा–सा भी अन्तर नहीं है। जैसे पत्थर में अङ्कुर नहीं निकलता, उसी प्रकार जीवन्मुक्तों का चित्त व्यापार शून्य हो जाता है; क्योंकि पुनर्जन्म लेने में सहायक जो घनीभूत वासना होती है, वही चित्त शब्द कही जाती है और वह आत्मज्ञानी में रहती नहीं। आत्मज्ञान सम्पन्न पुरुष जिस वासना द्वारा सांसारिक कर्मों का व्यवहार करते हैं, उसे आप 'सत्त्व' नाम वाली समझिये। वह वासना पुनर्जन्म से रहित होती है। जो सत्त्व में स्थित हैं तथा जिनकी इन्द्रियाँ सम्यक–प्रकार से वश में हैं, ऐसे जीवन्मुक्त महात्मा आसक्तिरहित होकर विचरते हैं।''.

कहने का सार यह है कि यदि स्त्री या पत्नी श्रेष्ठ ज्ञानी है पति से भी अधिक तो वह आत्मज्ञान अथवा ब्रह्मज्ञान पति को दे सकती है ।और वह गुरु ही कहलाएगी अतः ऐसी स्त्रियों का पति अपने आप को उसका गुरु ना समझे और सहज ही उससे प्रर्थना करके उसका ज्ञान विज्ञान अपना कल्याण कर लें ।बैसे भी नारी यदि ब्रह्मानंद से युक्त हो जाये या अपरोक्ष ज्ञाननिष्ठ तो वह सांसारिक या प्राकृत नहीं होती।

परम गुरु के दर्शन का फल–

परम गुरु (तद्भावित और जितेन्द्रिय) के दर्शन से उतना ही पुण्य मिलता है जितना की साक्षात् महेश्वर या हरि के दर्शन का फल है पर दर्शन के बाद हरि, शिव या परमगुरु के उपदेश को सुनने का अधिक फल शास्त्रों में वर्णित

है। परंतु जो लोग सदा ही सुनते रहते हैं न कि चिंतन करते हैं वे साधन चतुष्ट्य से संपन्न नहीं हो पाते न ही जीवन्मुक्त। सच है कि मनोनिग्रहके बिना गुरु का उपदेश मात्र, शास्त्रों का पढ़ना मात्र (न कि समझकर आत्मसात करना) व्यर्थ है। योगवसिष्ठ के उत्पत्ति प्रकरण के सर्ग 111 में तो और भी गहराई की बात कही है कि मनोनिग्रह रहित मनुष्य का उद्धार मन्त्र , गुरु , ईश्वर, मूर्ति या अन्य सारे साधन या युक्तियाँ तिनकोंके समान व्यर्थ हैं। मृत्यु से पूर्व जो शम दम से युक्त हो गया वही सम्यक् मुक्ति पाता है शेष सब पुनर्जन्म को ही प्राप्त होते हैं। जो इस वसुन्धरा पर मुक्त नहीं हुआ(ब्रह्मभावी स्थिति) वह मरने के बाद अन्य लोक परलोक में भी मुक्त नहीं होता अपितु कालान्तर में उस लोक से च्युत हो जाता है। और किसी के गर्भ का आश्रय लेता है।

●संकल्पोंके परित्यागरूपी शस्त्रसे जब चित्तरूपी वृक्ष का समूल उच्छेद हो जाता है, तब साधक सर्व–स्वरूप

सर्वव्यापी शान्त ब्रह्मरूप हो जाता है।

आगे गुरुदेव वसिष्ठ बोले कि – हे वत्स राम !

●जैसे दिग्भ्रम होनेपर पूर्व में पश्चिम दिशा की प्रतीति होने लगती है और वह अनुभवके विपरीत बुद्धि उस समय बिलकुल स्थिर हो जाती है; परंतु विवेकरूपी पुरुष–प्रयत्नसे उस भ्रान्त बुद्धिका भी शीघ्र ही निवारण किया जा सकता है, उसी तरह मनको भी वैराग्यरूपी पुरुष–प्रयत्न से शीघ्र ही जीता जा सकता है।

● मनमें उद्वेगका न होना महान राज्य, आनंद आदि सम्पत्तिका मूल कारण है। उद्वेग या उकताहट न होनेसे ही जीवको अपने मनपर विजय प्राप्त होती है, जिससे तीनों लोकोंपर विजय पाना तृणके समान सहज हो जाता है।

●जो नराधम अपने मनके निग्रहमें भी समर्थ नहीं हैं, वे व्यवहार–दशाओंमें व्यवहारका निर्वाह कैसे कर सकेंगे?

● मैं पुरुष हूँ, बड़ा हूँ, महान हूँ, जीवित या मरा हूँ, उत्पन्न हुआ हूँ, मरूँगा,....ऐसा या वैसा हूँ अभी जी रहा हूँ कल मरा तो ....क्या होगा इत्यादि कुदृष्टियाँ चञ्चल चित्तकी वृत्तियाँ ही प्रतीत होती हैं, जो बिना हुए ही प्रकट हुई हैं।

● यहाँ न तो किसीकी मृत्यु होती है और न कोई जन्म ही लेता है। मन स्वयं स्वप्न जगत की भांति कही अपने मरणका तथा लोकान्तरगमन का संकल्पमात्रसे अनुभव करता है।

●जो नित्य सत्, सबको हितकारी, मायामयी मलिनतासे रहित और सर्वव्यापी परमात्मा हैं, उनमें चित्तका लय हुए बिना (एकत्व के बिना) मुक्तिका दूसरा कोई उपाय नहीं है।

गुरु से भी अधिक ज्ञानी पुरुष

शिवपुराण विद्येश्वर संहिता अध्याय १८ , का महा प्रमाण–

–गुरु से भी अधिक ज्ञानी पुरुष मिल जाये तो उसे गुरु मानकर और उसका शिष्य बनकर उस नवीन गुरु की ही सेवा आरंभ कर देना चाहिए ।

गुरोरपि विशेषज्ञं यत्नाद् गृह्णीत (गृह् णीत) वै गुरुम्

सूत जी बोले – हे ऋषियों ! हे द्विजों ! ध्यान से श्रवण करो । अज्ञान रूपी बंधन से छूटना ही जीवमात्र के लिए साध्य पुरुषार्थ है । अतः जो विशेष ज्ञानवान् है एकमात्र वही जीव को उस बंधन से छुड़ा सकता है। अतः प्रारब्ध वश यदि साधारण ज्ञान से युक्त गुरु का वरण हो जाये या वह निम्न स्तरीय ज्ञान भूमिका से युक्त हो तो बिना भय के उस नवीन ज्ञाननिष्ठ गुरुकी सेवा सूश्रूषा (पूर्व गुरु का अपमान न करते हुए) आरंभ कर देना चाहिए।

सार– अंधविश्वास में आकर अपने गुरु (जो मात्र प्रथम से दूसरी या तीसरी ज्ञान भूमिका वाला ही हो) के ज्ञान को ही यथार्थ पराविज्ञान नहीं मान लेना चाहिए।

ज्ञान की सात भूमिकाओं तक की प्राप्ति तक गुरु को बदला जा सकता है ।

अंधविश्वास में आकर अपने गुरु से अधिक ज्ञानी पुरुष को साधारण समझना मूर्खता ही है।

*****

अध्याय–49
पतंगा और दीप शिखा

पतंगा दीप शिखा के क्षणिक और मिथ्या सुख के कारण ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है यह कोई माने या न माने, पर परम सत्य है, अतः व्यक्ति को कुछ समय के भोगों या इंद्रिय तृप्ति के चक्कर में पड़कर अपना जीवन नष्ट नहीं करना चाहिए अथवा पूर्णता के बाद कुछ किया जा सकता है (पर पूर्णता के बाद तो आपकी कामना पलायन वेग से उड़ ही जायेगी तब मात्र ब्रह्मानंद ही बचेगा) .. पतंगा दीपशिखा के आकर्षण में आकर अपनी जान गवांता ही है, क्योंकि वह उसकी चमक और गर्मी से आकर्षित होता है, लेकिन उसे नहीं पता होता कि वह उसकी मृत्यु का कारण बनेगा। इसी तरह, हमारी जिंदगी में भी कई चीजें होती हैं जो हमें आकर्षित करती हैं, लेकिन हमें नहीं पता होता कि वे हमारे लिए हानिकारक हो सकती हैं। पर मनुष्य के पास विवेक शक्ति है जो पुरुष इस शक्ति का प्रयोग नहीं करता वह आजीवन दुख पर दुख भोगता रहता है। इस शक्ति को गुरुदेव ही बलिष्ठता देते हैं। अर्थात गुरु ही रक्षा करने वाली ढाल हैं। वही सुरक्षात्मक आवरण है।

यह उदाहरण हमें सिखाता है कि हमें अपने आकर्षण और इच्छाओं पर ध्यान देना चाहिए और उन्हें समझना चाहिए, ताकि हम अपने जीवन में सही निर्णय ले सकें। और जीवन को सुखी कर सकें। हजारों आकर्षण नाश के कारण ही बनते हैं। आगे हम इस कृति में इतना ही कहना चाहते हैं अगली पुस्तक हे वीर ब्रह्मचारी में खुलकर विवेचना करेंगे।

पतंगा दीपशिखायां वशीभूतः स्वजीवनं विनाशयति।
तथा मानवः मोहजालेन वशीभूतः स्वधर्मं विनाशयति।
विवेकशक्तिर्हि मानवे या सा विज्ञानं ददाति गुरुः।
तद्विना मानवः अज्ञानेन विनाशमेव प्राप्नोति।
गुरुरेव रक्षाकरः शिष्यस्य सुरक्षात्मको ऽवरणः।
तद्विना मोहजालेन वशीभूतः स्वजीवनं विनाशयति।

अध्याय–50

गुरु दीक्षा के लिए उत्तम महिना

मन्त्र ग्रहण करते समय शुभ माह, पक्ष तिथि, वार आदि पर भी विचार करें।

प्रायः मन्त्र ग्रहण हेतु उत्तम मास –

1. वैशाख,
2. श्रावण,
3. आश्विन,
4. कार्तिक,
5. मार्गशीर्ष
6. माघ और
7. फाल्गुन मास उत्तम हैं।

परंतु

8. गोपाल मन्त्र या श्रीकृष्ण से सम्बन्धित मन्त्र के लिए चैत्र मास बहुत ही ज्यादा उपयुक्त है।

अतः श्रीकृष्ण मंत्र चाहने वाले चैत्र में ही गुरुदीक्षा लें बेहतर परिणाम के लिए।

9. आषाढ़ में लक्ष्मी मन्त्र के अलावा अन्य मंत्र लिए जा सकते हैं।
10. लक्ष्मी मन्त्र एवं श्री मन्त्र के लिए कार्तिक एवं मार्गशीर्ष मास(यही आजकल का)ज्यादा उचित है।
11. तंत्रोक्त मन्त्रों के लिए माघ एवं फाल्गुन मास विशेष शुभ है।
12. मल मास प्रत्येक प्रकार के मन्त्रों के लिए वर्जित है।

*****

अध्याय–51

वृहदविज्ञान परमेश्वरतंत्र

परम कल्याण का उपाय व सार जो वृहदविज्ञान परमेश्वरतंत्र में त्रिपुराशिवसंवाद भी कहा जाता है।

सुनें–

अथ श्रीगुरोःस्तोत्रम्
।। श्री महादेव्युवाच ।।
गुरुर्मन्त्रस्य देवस्य धर्मस्य तस्य एव वा ।
विशेषस्तु महादेव ! तद् वदस्व दयानिधे ।।1।।

श्री महादेवी (पार्वती) ने कहा – 'हे दयानिधि शंभु ! गुरुमंत्र के देवता अर्थात् श्री गुरुदेव एवं उनका आचारादि धर्म क्या है इस बारे में वर्णन करें।'

।। श्री महादेव उवाच ।।
जीवात्मनं परमात्मनं दानं ध्यानं योगो ज्ञानम् ।
उत्कल काशीगंगामरणं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकं ।।2।।

श्री महादेव बोले : जीवात्मा–परमात्मा का ज्ञान, दान, ध्यान, योग पुरी, काशी या गंगा तट पर मृत्यु इन सबमें से कुछ भी श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है, श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है।

प्राणं देहं गेहं राज्यं स्वर्गं भोगं योगं मुक्तिम् ।
भार्यामिष्टं पुत्रं मित्रं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकं ।।3।।

प्राण, शरीर, गृह, राज्य, स्वर्ग, भोग, योग, मुक्ति, पत्नी, इष्ट, पुत्र, मित्र –इन सबमें से कुछ भी श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है, श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है।

वानप्रस्थं यतिविधधर्मं पारमहंस्यं भिक्षुकचरितम् ।
साधोः सेवां बहुसुखभुक्तिं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकं ।।4।।

वानप्रस्थ धर्म, यति विषयक धर्म, परमहंस के धर्म, भिक्षुक अर्थात् याचक के धर्म –इन सबमें से कुछ भी श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है, श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है ।

विष्णो भक्तिं पूजनरक्तिं वैष्णवसेवां मातरि भक्तिम् ।
विष्णोरिव पितृसेवनयोगं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकं ।।5।।

भगवान विष्णु की भक्ति, उनके पूजन में अनुरक्ति, विष्णु भक्तों की सेवा, माता की भक्ति, श्रीविष्णु ही पिता रूप में हैं, इस प्रकार की पिता सेवा–इन सबमें से कुछ भी श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है, श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है ।

प्रत्याहारं चेन्द्रिययजनं प्राणायां न्यासविधानम् ।
इष्टे पूजा जप तपभक्तिर्न गुरोरधिकं न गुरोरधिकं ।।6।।

प्रत्याहार और इन्द्रियों का दमन, प्राणायाम, न्यास–विन्यास का विधान, इष्टदेव की पूजा, मंत्र जप, तपस्या व भक्ति – इन सबमें से कुछ भी श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है, श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है ।

(हे देवी ध्यान से और गंभीर होकर सुनों यह रहस्य परामुक्ति देने वाला है शेष पूजा और स्तोत्र आदि मात्र अपर गति और अपरमुक्ति देती हैं)

काली दुर्गा कमला भुवना त्रिपुरा भीमा बगला पूर्णा ।
श्रीमातंगी धूमा तारा न गुरोरधिकं न गुरोरधिकं ।।7।।

काली, दुर्गा, लक्ष्मी, भुवनेश्वरि, त्रिपुरासुन्दरी, भीमा, बगलामुखी (पूर्णा), मातंगी, धूमावती व तारा ये सभी मातृशक्तियाँ भी श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है, श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है।

मात्स्यं कौर्मं श्रीवाराहं नरहरिरूपं वामनचरितम् ।
नरनारायण चरितं योगं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकं ।।8।।

भगवान के मत्स्य, कूर्म, वाराह, नरसिंह, वामन, नर–नारायण आदि अवतार, उनकी लीलाएँ, चरित्र एवं तप आदि भी श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है, श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है।

श्रीभृगुदेवं श्रीरघुनाथं श्रीयदुनाथं बौद्धं कल्क्यम् ।
अवतारा दश वेदविधानं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकं ।।9।।

भगवान के श्री भृगु, राम, कृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि आदि वेदों में वर्णित दस अवतार श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है, श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है ।

गंगा काशी कान्ची द्वारा मायाऽयोध्याऽवन्ती मथुरा ।
यमुना रेवा पुष्करतीर्थ न गुरोरधिकं न गुरोरधिकं ।।10।।

गंगा, यमुना, रेवा आदि पवित्र नदियाँ, काशी, कांची, पुरी, हरिद्वार, द्वारिका, उज्जयिनी, मथुरा, अयोध्या आदि पवित्र पुरियाँ व पुष्करादि तीर्थ भी श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है, श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है।

गोकुलगमनं गोपुररमणं श्रीवृन्दावन–मधुपुर–रटनम्।
एतत् सर्वं सुन्दरि ! मातर्न गुरोरधिकं न गुरोरधिकं ।।11।।

हे सुन्दरी ! हे मातेश्वरी ! गोकुल यात्रा, गौशालाओं में भ्रमण एवं श्री वृन्दावन व मधुपुर आदि शुभ नामों का रटन – ये सब भी श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है, श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है ।

तुलसीसेवा हरिहरभक्तिः गंगासागर–संगममुक्तिः ।
किमपरमधिकं कृष्णेभक्तिर्न गुरोरधिकं न गुरोरधिकं ।।12।।

तुलसी की सेवा, विष्णु व शिव की भक्ति, गंगा सागर के संगम पर देह त्याग और अधिक क्या कहूँ परात्पर भगवान श्री कृष्ण की भक्ति भी श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है, श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है ।

एतत् स्तोत्रम् पठति च नित्यं मोक्षज्ञानी सोऽपि च धन्यम् ।
ब्रह्माण्डान्तर्यद्–यद् ध्येयं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकं ।।13।।

इस स्तोत्र का जो नित्य पाठ करता है वह आत्मज्ञान एवं मोक्ष दोनों को पाकर धन्य हो जाता है, निश्चित ही समस्त ब्रह्माण्ड मे जिस–जिसका भी ध्यान किया जाता है, उनमें से कुछ भी श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है, श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है ।

।। इति श्रीवृहदविज्ञान परमेश्वरतंत्रे त्रिपुराशिवसंवादे श्रीगुरोःस्तोत्रम् ।।

*****

अध्याय–52

गुरु का पतन कब

एक वर्षसे यथाविधि गुरुकी सेवा करते हुए उनके समीप निवास करनेवाले शिष्यको यदि गुरु यथार्थ ज्ञानका उपदेश देना प्रारम्भ नहीं करते हैं तो शिष्यके दुष्कृत उस गुरु में आ जाते हैं।

और गुरु का पतन आरंभ हो जाता है इसी कारण जिसको यथार्थ ज्ञान नहीं हुआ और जो मनुष्य जितेन्द्रिय और अनासक्त नहीं उसको शिष्यों का संग्रह नहीं करना चाहिए, धन या प्रतिष्ठा के लोभ से जो अवीतरागी और लोभी, कामिनी के दास,स्त्री लम्पट, क्रोधी, क्षमाहीन और चित्तविश्रांतहीन नर दीक्षा देते हैं वे भवरोग से मुक्त न होकर उनके शिष्यों के पापों का फल ही भोगते रहते हैं।

संवत्सरोषिते शिष्ये गुरुर्ज्आनमनिर्दिशन् ।
हरते दुष्कृतं तस्य शिष्यस्य वसतो गुरुः ॥

*****

अध्याय–53

कूर्म पुराण की गुरुगीता उपरिविभाग से

1. आप जिससे लौकिक, वैदिक अथवा आध्यात्मिक किसी भी प्रकारका ज्ञान प्राप्त करे, उससे कभी भी द्रोह न करे।
2. महापातक युक्त कार्य और अकार्यको न जाननेवाले तथा कुमार्गगामी गुरु का त्याग कर देना चाहिये.... ऐसा मनुका कहना है ॥ गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः । उत्पथप्रतिपन्नस्य मनुस्त्यागं समब्रवीत् ।।
3. गुरु के गुरु का यदि संनिधान प्राप्त हो तो उनके प्रति गुरुके समान ही अभिवादन आदि व्यवहार करना चाहिये और (गुरुगृहमें रहते हुए शिष्यको) गुरुकी अनुमतिके बिना अपने (माता–पितादि) गुरुजनोंका अभिवादन नहीं करना चाहिये।
4. विद्या देनेवाले गुरुओं (उपाध्यायों), अपने जन्मके कारण–रूप (माता–पितादि), अधर्मसे रोकने वालों और हितकारी धर्मतत्त्वका उपदेश देनेवालों संतों के प्रति नित्य गुरुके समान ही आचरण करना चाहिये।
5. विद्या एवं तपमें अपनी अपेक्षा अधिक समृद्ध ज्ञानी (ज्ञान की उच्चस्तरीय भूमिका को प्राप्त संत) या तपोनिष्ठ के प्रति सदा गुरुके समान ही आदरपूर्ण व्यवहार करना चाहिये।
6. गुरु के आसन, शय्या तथा यान पर कभी भी नहीं बैठना चाहिये। गुरुके दौड़नेपर उनके पीछे दौड़े और चलनेपर उनके पीछे चलना चाहिये।
7. बैल, ऊँट एवं घोड़ेकी सवारी, प्रासाद, प्रस्तर, चटाई, शिलाखण्ड तथा नौकामें गुरुके साथ समान आसनपर बैठा जा सकता है (ऐसी जगहोंपर भी नीचे ही बैठा जाय ऐसा नियम नहीं है)। ब्रह्मचारी सदा

जितेन्द्रिय रहे, अपने मनको वशमें रखे, क्रोध न करे, पवित्र रहे, सदा मधुर और हित करनेवाली वाणीका प्रयोग करे।

शिष्य इनका परित्याग करे

1. ब्रह्मचारी को चाहिये कि वह प्रयत्नपूर्वक सुगन्धित पदार्थों,
2. माला,
3. रस (तीखे रसवाले गुड़ आदि),
4. मद्य, शुक्त' अर्थात् गुड़ आदिके मिश्रणसे बने मादक तीक्ष्ण पदार्थ,
5. प्राणियोंकी हिंसा,
6. तैल आदिका मर्दन,
7. अञ्जन,
8. जूता,
9. छाता का धारण करना,
10. काम,
11. लोभ,
12. भय,
13. अतिनिद्रा,
14. गायन,
15. वादन तथा नृत्य दर्शन
16. , डाँट–फटकार लगाना,
17. निन्दा,
18. स्त्रीदर्शन तथा उसका स्पर्श,
19. दूसरोंको मारना और चुगलखोरी आदिका परित्याग करे ॥
20. जलका घड़ा, पुष्प, गोबर, मिट्टी और कुश इन्हें प्रयोजन भर ही लाना चाहिये ।
21. प्रतिदिन भिक्षा माँगनी चाहिये।
22. कृत्रिम लवण और जो भी बासी वस्तु हो, उन सबका त्याग करना चाहिये।

23. (ब्रह्मचारी को) नृत्य नहीं देखना चाहिये और गायन आदिसे निःस्पृह रहना चाहिये।

24. सूर्यकी ओर (उदय–अस्तके समय तथा अपवित्र दशामें) नहीं देखना।

25. इनका (गुरुका) केवल नाम (सम्मानबोधक उपाधि आदिसे शून्य नाम) परोक्षमें भी नहीं लेना चाहिये। इनके चलनेकी क्रिया, बात करनेके ढंग और अन्य क्रियाओंकी नकल उपहास की दृष्टिसे नहीं करनी चाहिये॥

26. गुरुका जहाँ परीवाद (विद्यमान दोषका कथन) हो रहा हो अथवा जहाँ उनकी निन्दा हो रही हो, वहाँ अपने दोनों कानोंको बंद कर ले अथवा वहाँसे अन्यत्र चला जाय।

27. दूर विद्यमान शिष्य (किसी अन्यको गुरुकी पूजाके लिये नियुक्त कर उसके द्वारा) गुरुकी पूजा न करवाये, (यदि स्वयं गुरुके समीप जाकर पूजा करनेमें समर्थ हो । स्वयं गुरुके समीप जानेमें असमर्थ होनेपर तो अन्यके द्वारा भी गुरुकी पूजा करवायी जा सकती है।) क्रोधके आवेशमें रहनेपर शिष्यको स्वयं भी गुरुकी पूजा नहीं करनी चाहिये। यदि गुरु स्त्रीके समीप हों तो उस समय उनकी पूजा नहीं करनी चाहिये। गुरुकी बातका उत्तर नहीं देना चाहिये और गुरुके निकट रहनेपर उनकी आज्ञाके बिना बैठना भी नहीं चाहिये ॥

28. शिष्यको चाहिये कि गुरुके लिये सर्वदा जलसे पूर्ण घड़ा, कुश, पुष्प तथा समिधा लाये और नित्य उनके अङ्गोंका मार्जन (गुरुको स्नान कराना) तथा (गन्धादिद्वारा) लेपन (शरीरका सुगन्धीकरण) करे।

29. उनके निर्माल्य (गुरुकी सेवामें समर्पित माला आदि), शय्या, खड़ाऊँ, जूता, आसन तथा छाया आदिका कभी भी लंघन नहीं करना चाहिये। गुरुके लिये दन्तकाष्ठ (दाँतोंको स्वच्छ करनेके लिये दतुअन) आदि लाये और (भिक्षादिमें) प्राप्त पदार्थोंको गुरुको निवेदित करे। गुरुसे बिना पूछे कहीं जाये नहीं तथा सदा गुरुके प्रिय तथा हित करनेमें लगा रहे ॥

30. गुरुके समीप कभी भी पैर फैलाकर बैठना नहीं चाहिये और उनके समीप जँभाई, हँसी, कण्ठाच्छादन (सुन्दर माला, हार आदि गलेमें पहनना) तथा ताली इत्यादिकी ध्वनि (ताल ठोंकना आदि निरर्थक) न करें।

31. गुरुके आसन, शय्या तथा यानपर कभी भी नहीं बैठना चाहिये। गुरुके दौड़नेपर उनके पीछे दौड़े और चलनेपर उनके पीछे चलना चाहिये ।।

32. बैल, ऊँट एवं घोड़ेकी सवारी, प्रासाद, प्रस्तर, चटाई, शिलाखण्ड तथा नौकामें गुरुके साथ समान आसनपर बैठा जा सकता है (ऐसी जगहोंपर भी नीचे ही बैठा जाय ऐसा नियम नहीं है)। ब्रह्मचारी सदा जितेन्द्रिय रहे, अपने मनको वशमें रखे, क्रोध न करे, पवित्र रहे, सदा मधुर और हित करनेवाली वाणीका प्रयोग करे ॥

33. ब्रह्मचारीको चाहिये कि वह प्रयत्नपूर्वक सुगन्धित पदार्थों, माला, रस (तीखे रसवाले गुड़ आदि), मद्य, शुक्त' अर्थात् गुड़ आदिके मिश्रणसे बने मादक तीक्ष्ण पदार्थ, प्राणियोंकी हिंसा, तैल आदिका मर्दन, अञ्जन, जूता, छाताका धारण करना, काम, लोभ, भय, निद्रा, गायन, वादन तथा नृत्य, डाँट–फटकार लगाना, निन्दा, स्त्रीदर्शन तथा उसका स्पर्श, दूसरोंको मारना और चुगलखोरी आदिका परित्याग करे।

34. जलका घड़ा, पुष्प, गोबर, मिट्टी और कुश इन्हें प्रयोजन भर ही लाना चाहिये । प्रतिदिन भिक्षा माँगनी चाहिये। कृत्रिम लवण और जो भी बासी वस्तु हो, उन सबका त्याग करना चाहिये। (ब्रह्मचारीको) नृत्य नहीं देखना चाहिये और गायन आदिसे निःस्पृह रहना चाहिये। सूर्यकी ओर (उदय–अस्तके समय तथा अपवित्र दशामें) नहीं देखना चाहिए।

*****

अध्याय–54

ज्ञान प्राप्त

आत्मज्ञान प्राप्ति का सदा प्रयास करना तथा वेदान्तके अर्थका विचार करना या परम गुरुओं को सुनना इन उक्त साधनोंसे तो ज्ञान प्राप्त होता है और इनके विपरीत आचरण करनेसे विपरीत फल (अज्ञान) मिलता है । जिससे आरंभ में ऐसा बोध होता है कि मैं बुद्धि, प्राण, मन, देह और अहंकार आदिसे विलक्षण नित्य शुद्ध बुद्ध चेतन आत्मा हूं पर यह आरंभ में परोक्ष होता है पूर्णतः तद् भाव नहीं आता । वही परोक्षज्ञान है । जिस समय इसका साक्षात् अनुभव होता है उस समय मैं परम ब्रह्म ही हूँ जीव नहीं और परम अभिन्नता का अनुभव होने लगता है। ऐसी सततता को ही विज्ञान कहते हैं ॥

आत्मज्ञाने सदोद्योगो वेदान्तार्थावलोकनम् ।

उक्तैरेतैर्भवेज्ज्ञानं विपरीतैर्विपर्ययः ॥

बुद्धिप्राणमनोदेहाहङ्कृतिभ्यो विलक्षणः।

चिदात्माहं नित्यशुद्धो बुद्ध एवेति निश्चयम् ॥

येन ज्ञानेन संवित्ते तज्ज्ञानं निश्चितं च मे।

विज्ञानं च तदैवैतत्साक्षादनुभवेद्यदा ॥

अध्यात्म रामायण अरण्यकाण्ड सर्ग 4

*****

अध्याय–55

गुरु और पति सावधान–

दुष्टों का साथ देने पर विष्णु जी भी अचेत हो जाते हैं अतः हे दुष्टों ! भगवान का नाम लेते हो तो पाप छोड़ दो एक बार पापी दक्ष का पक्ष लेने के चक्कर में विष्णु जी को भी भयंकर कष्ट झेलना पड़ा।और दुष्ट बाणासुर का साथ देने के चक्कर में भगवान शंकर को भी श्रीकृष्ण से पराजित होना पड़ा अतः भगवान को अपने पाप के बीच में घसीटना बंद करो। आप चाहे जैसे भी हो पर आपके इष्ट हमेशा आपके पक्ष के लिए युद्ध करते हैं यह सत्य है। पर आप पापी हो तो आपके चक्कर में भगवान भी कष्ट पाते हैं।

यही दक्ष यज्ञ में हुआ भगवान विष्णु को दक्ष ने पुकारा कि मैं तुम्हारा भक्त हूँ अतः चाहे जो भी हो रक्षा करो।

अब विष्णु भगवान ही धर्म संकट में पड़ गए तब सोचा यदि मैं पुण्यप्रद और धर्मपरायण वीरभद्र पर अपनी शक्ति का प्रहार करूँगा तो यह अन्याय और पाप होगा। शास्त्र विष्णु और महेश को समान बलशाली बोलते हैं पर आज मैं निर्बल हो जाऊँगा क्योंकि दुष्ट दक्ष मुझ शान्तस्वरूप इष्ट को पुकार रहा है ।

अतः

महाबली वीरभद्र ने पहले तो विष्णु जी के बलशाली पार्षदों को मार भगाया फिर वीरभद्र ने विष्णु जी की छाती पर त्रिशूल से प्रहार कर दिया।

ततश्चोरसि तं विष्णुं
लीलयैव रणाजिरे।
जघान वीरभद्रो हि
त्रिशूलेन महाबली। ।

यह आप शिव पुराण की रुद्र संहिता के सती खण्ड में और भी विस्तार से देखना।

सार यही है कि हे मनुष्यों !

आपके पाप से इष्ट को भी कष्ट होता है और आपके गुरु को भी 10 प्रतिशत पापों के फलों को (दण्ड रूप में) भोगना पड़ता है।

सुनों अब –

यदि आपने 10 पराई नारियों को निर्वस्त्र देख लिया तो आपके दीक्षागुरु को 1 नारी को निर्वस्त्र देखने का दंड भोगना ही पड़ेगा विश्वास न हो तो गरुडपुराण और अन्य दण्डात्मक आज्ञा देने वाले ग्रंथ पढ़ लेना।

पति को भी कुलटा नारी के पाप का दण्ड मिलता है इसी कारण विवेकवैराग्य से युक्त ब्रह्मनिष्ठ या तो विवाह नहीं करते या युवती की घोर परीक्षा लेकर ही विवाह करते हैं।

वीतरागी को नारी नामक शरीर से क्या काम जो विवाह करके रिस्क भी ले इसी कारण वह सतत् ब्रह्मानंद से युक्त होकर सोऽहम् मय रहते हैं अथवा कोई उनको पाने के लिए तप करे तो भी उस नारी को तप , परीक्षा, कष्ट आदि देकर भयंकर तपाते हैं तब वह पात्र हो जाये तो ही अनेक शर्तपर विवाह करते हैं। अन्यथा भाड़ में जाये तमोगुणी और रजोगुणी युवती। भले ही उनका मुख और देह तिलोत्तमा और उर्वशी की भाँति अतुलनीय सौन्दर्य से परिपूर्ण हो चाहे उनके तन से सत्यवती सी गंध आने लगे पर वे ऐसी दुष्टा नारी को अपने सांस की वायु से भी दूर रखते हैं तो तन को कैसे पास लायेंगे।हे शम्भो ! मेरी आत्मा तुम हो, बुद्धि पार्वतीजी हैं, प्राण आपके गण हैं, शरीर आपका मन्दिर है, सम्पूर्ण विषयभोगकी रचना आपकी पूजा है, निद्रा समाधि है, मेरा चलना–फिरना आपकी परिक्रमा है तथा सम्पूर्ण शब्द आपके स्तोत्र हैं; इस प्रकार मैं जो–जो भी कार्य करता हूँ, वह सब आपकी आराधना ही है।

*****

अध्याय–56
लिंग पुराण की श्रीगुरुगीता

पूर्व में स्कंदपुराण की गुरुगीता ,द्वयोपनिषद तथा वृहद विज्ञान तंत्र के त्रिपुरा शिव संवाद से ही आप परमगुरु के माहात्म्य को समझ ही चुके हो अब पुनः अति संक्षिप्त में लिंगपुराण का सार श्रवण करें। पुनः सुनें गुरु की महिमा सातों मोक्षदायक पुरियों से भी अधिक है तथा नर्मदा गंगा यमुना आदि से भी अधिक; पर श्शर्त एक ही है कि गुरु में वही गुण होना चाहिए जो गुरुगीता में श्रीमहादेव ने गौरी से कहे हैं अन्यथा पूर्वजन्म की भाँति सूचक या वाचक अथवा बोधक गुरु को परम गुरु मान लोगे तो पुनः माँ को कष्ट तो दोगे ही स्वयं भी गर्भ में गंदगी में लिपटे रहोगे। सार सुनें अपरोक्ष ज्ञानी ही परम गुरु होता है पर जो मात्र मंत्र का ज्ञान रखता हो पर तद्भावी न हो ,अभिन्नभावी न हो वह एकत्वहीन गुरु को सामान्य व बोधक कहा है गुरुगीता में।

श्रीमद्भागवत महापुराण में भी सारभूत तीन प्रकार के गुरुओं का वर्णन श्रीकृष्ण जी ने सुदामा से किया है।पहला तो पिता पर वृहद विज्ञान तंत्र के अनुसार यदि पिता ज्ञानी न हो तो उसमें हरि देखकर सेवा से भी बहुत से बहुत कुछ कल्पों तक परमधाम या प्राजापत्य लोक मिलेगा, फिर यहीं रोना पड़ेगा। पर हाँ पिता के कृतज्ञ अवश्य ही बने रहो और उनको अनिवार्य वस्तु अर्पित करते रहो;क्योन्कि उन्होंने बड़ा किया और पढ़ाया लिखाया और गुरुगीता में भी कहा है कि हे देवी! माता का कुल और पिता का कुल सब कुछ यथार्थ ज्ञाननिष्ठ को ही मानो न कि स्त्रीलम्पटय दुराचारी या लोभी पिता को। हिरण्याकविपु के पुत्र की भाँति अनुचित आज्ञा न मानों , भक्ति भी पिता के कहने पर न छोड़े ।

और दूसरा गुरु कहा है शिक्षा व संस्कार दाता को। पर ब्रह्मनिष्ठ गुरु को ही श्रीकृष्ण जी ने भागवत में , ;शिव पुराण में शिव जी ने तथा श्रीमद्देवीभागवत में माँ दुर्गा जी ने हिमाचल से कहा है कि ऐसा मुझसे एकाकार वाला अभिन्न ज्ञानी ही मेरा स्वरूप है साधारण नहीं।

और शिव महापुराण में उस अक्षय आनंद से युक्त महात्मा को साक्षात महादेव का स्वरूप और परात्पर ब्रह्म कहा है ।

यो गुरुः स शिवः प्रोक्तो यः शिवः स गुरुः स्मृतः ।
यथा शिवस्तथा विद्या यथा विद्या तथा गुरुः ।।
शिवविद्या गुरोस्तस्माद्भक्त्या च सदृशं फलम् ।
सर्वदेवमयो देवि सर्वशक्तिमयो हि सः ।।
सगुण निर्गुणो वापि तस्याज्ञां शिरसा वहेत् ।
श्रेयोऽर्थी यस्तु गुर्वाज्ञां मनसापि न लङ्घयेत् ।।
गुर्वाज्ञापालकः सम्यक् ज्ञानसम्पत्तिमश्नुते ।
गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन् भुञ्जन् यद्यत्कर्म समाचरेत् ॥
समक्षं यदि तत्सर्वं कर्तव्यं गुर्वनुज्ञया ।
गुरोर्देवसमक्षं वा न यथेष्टासनो भवेत् ॥
गुरुर्देवो यतः साक्षात्तद्गृहं देवमन्दिरम् ।
पापिनां च यथासङ्गात्तत्पापैः पतनं भवेत् ॥
तद्वदाचार्यसङ्गेन तद्धर्मफलभाग्भवेत्।
यथैव वह्निसम्पर्कान्मलं त्यजति काञ्चनम् ॥
तथैव गुरुसम्पर्कात्पापं त्यजति मानवः ।
यथा वह्निसमीपस्थो घृतकुम्भो विलीयते ॥
तथा पापं विलीयेत आचार्यस्य समीपतः ।
यथा प्रज्वलितो वह्निर्विष्ठां काष्ठं च निर्दहेत् ॥
गुरुस्तुष्टो दहत्येवं पापं तन्मन्त्रतेजसा ।
ब्रह्मा हरिस्तथा रुद्रो देवाश्च मुनयस्तथा ।।
कुर्वन्त्यनुग्रहं तुष्टा गुरौ तुष्टे न संशयः ।
कर्मणा मनसा वाचा गुरोः क्रोधं न कारयेत् ॥
तस्य क्रोधेन दह्यन्ते आयुः श्रीर्ज्ञानसत्क्रियाः ।
तत्क्रोधं ये करिष्यन्ति तेषां यज्ञाश्च निष्फलाः ।।
जपान्यनियमाश्चौव नात्र कार्या विचारणा ।

गुरोर्विरुद्धं यद्वाक्यं न वदेत्सर्वयत्नतः ॥
वदेद्यदि महामोहाद्रौरवं नरकं व्रजेत् ।
चित्तेनैव च वित्तेन तथा वाचा च सुव्रताः ।।
मिथ्या न कारयेद्देवि क्रियया च गुरोः सदा ।

दुर्गुणे ख्यापिते तस्य नैर्गुण्यशतभाग्भवेत् ॥
गुणे तु ख्यापिते तस्य सार्वगुण्यफलं भवेत्।

गुरोर्हितं प्रियं कुर्यादादिष्टो वा न वा सदा ॥
असमक्षं समक्षं वा गुरोः कार्यं समाचरेत् ।

गुरोर्हितं प्रियं कुर्यान्मनोवाक्कायकर्मभिः ॥
कुर्वन् पतत्यधो गत्वा तत्रैव परिवर्तते ।

तस्मात्स सर्वदोपास्यो वन्दनीयश्च सर्वदा ॥
समीपस्थोऽप्यनुज्ञाप्य वदेत्तद्विमुखो गुरुम् ।

एवमाचारवान् भक्तो नित्यं जपपरायणः ॥
त्रिसन्ध्यं तु गुरोः पूजा कर्तव्या हितमिच्छता।

अर्थात्

1. जो गुरु हैं, वे शिव कहे गये हैं और जो शिव हैं, वे गुरु कहे गये हैं।
2. जैसे शिव हैं, वैसे ही विद्या जैसी विद्या वैसे ही गुरु होते हैं।
3. शिवविद्या उन गुरुसे ही ग्रहण की जा सकती है और भक्तिके द्वारा अनुकूल फल प्राप्त होता है।
4. हे देवि! वे गुरु एकाकी निस्पृहा व चिंतारहितता से सर्वदेवस्वरूप तथा सर्वशक्तिस्वरूप हैं।
5. गुरु सगुण हों अथवा निर्गुण–उनकी आज्ञाको शिरोधार्य करना चाहिये।
6. जो कल्याणका इच्छुक है, उसे मनसे भी परमगुरु की आज्ञाका उल्लंघन नहीं करना चाहिये।

7. पूर्णरूपसे गुरुकी आज्ञाका पालन करनेवाला शिष्य, ज्ञानसम्पदा प्राप्त करता है।
8. चलते हुए, बैठते हुए, सोते हुए अथवा खाते हुए शिष्य , जो भी कर्म यदि गुरुके समक्ष करे, वह समस्त कार्य उनकी आज्ञासे ही करना चाहिये ।।
9. गुरुदेवके समक्ष इच्छानुसार आसनपर नहीं बैठना चाहियेय क्योंकि गुरु साक्षात् देवता हैं और उनका घर देवमन्दिर है । जिस प्रकार पापियोंकी संगतिके कारण उनके पापोंसे व्यक्तिका, पतन हो जाता है, उसी प्रकार गुरुकी संगतिसे व्यक्ति, उनके धर्मफलका भागी होता है। जैसे सुवर्ण अग्निके सम्पर्कसे अपने मैलका त्याग करता है, वैसे ही मनुष्य गुरुके सम्पर्कसे पापका त्याग करता है।
10. जैसे अग्निके समीप स्थित कुम्भका घृत पिघल जाता है, वैसे ही आचार्य (गुरु)–के सम्पर्कसे मनुष्यका, पाप विलीन हो जाता है।
11. जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि मल तथा काष्ठको जला डालती है, उसी प्रकार प्रसन्नहुए गुरु अपने मन्त्रके तेजसे शिष्यके, पापको भस्म कर देते हैं।
12. गुरुके प्रसन्न रहनेपर ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, सभी देवता तथा मुनि भी उस व्यक्तिपर, प्रसन्न होकर कृपा करते हैं। इसमें सन्देह नहीं है।
13. मन, वचन तथा कर्मसे गुरुको क्रोधित नहीं करना चाहियेय उनके क्रोधसे आयु, लक्ष्मी (वैभव), ज्ञान और सत्कर्म दग्ध हो जाते हैं।
14. जो लोग उन्हें कुपित करते हैं, उनके यज्ञ, जप तथा अन्य अनुष्ठान व्यर्थ हो जाते हैं इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये ।
15. पूर्ण प्रयत्नपूर्वक गुरुके विरुद्ध कुछ भी वचन नहीं बोलना चाहिए।
16. यदि कोई अज्ञानवश ऐसा बोलता है, तो वह रौरव नरकमें पडता है।
17. हे देवि ! मन, धन, वचन तथा कर्मसे गुरुको कभी झूठा सिद्ध नहीं करना चाहिये।
18. उनका दुर्गुण कहनेपर व्यक्ति सौ दुर्गुणोंसे युक्त हो जाता है और उनका गुण कहनेपर सभी गुणोंका फल मिलता है। पर शिव पुराण के अनुसार गुरु से भी उच्च ज्ञानभूमिका वाला गुरु मिल जाए तो पूर्व गुरु का अहित किये बिना उस उच्चस्तरीय ज्ञानभूमिका वाले

गुरु की सेवा ही करना चाहिए;पर हाँ उनके लिए अन्नादि की सेवा में कमी नहीं करना चाहिए पर तन मन व सामर्थ्य से नवीन गुरु को ही अधिक समर्पण हो पर पुराना गुरु यदि शिष्य की पत्नी या पुत्री पर कुभाव रखे या बार बार वित का ही हरण करे तो गुरुगीता के अनुसार उसका त्याग करके धैर्यवान गुरु की शरण में ही चले जाना चाहिए।

19. गुरुने आदेश दिया हो अथवा नहीं, सर्वदा उनका हित तथा प्रिय करना चाहियेय गुरु सामने हों अथवा परोक्षमें हों, उनका कार्य करना चाहिये। मन, वचन, शरीर तथा कर्मसे गुरुका हित तथा प्रिय करना चाहिये। ऐसा न करनेवाला नरकमें गिरता है और वहाँ जाकर वहींपर विचरण करता रहता है। अतः सर्वदा उनकी उपासना तथा वन्दना करनी चाहिये। पास रहते हुए भी गुरुसे आज्ञा लेकर तथा उनकी ओर मुख न करके बोलना चाहिये। अपना हित चाहनेवालेको तीनों सन्ध्याओंमें गुरुकी पूजा करनी चाहिये।

*****

अध्याय–57

श्री गुरुगीता

प्रभु का शाब्दिक कैवल्या रूप श्री गुरुगीता तथा आवरणात्मक रूप गुरु मूर्ति ही हैं।

श्री गुरुगीताजी के रूप में साक्षात् श्री भुवनेश्वरी, श्री सदाशिव प्रत्यक्ष है ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि श्रीमद्भागवत में साक्षात् श्रीकृष्ण जी हैं।

जीवात्मा–परमात्मा का ज्ञान, दान, ध्यान, योग पुरी, काशी या गंगा तट पर मृत्यु इन सबमें से कुछ भी श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है, श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है। यह सब गुरुगीता में विस्तृत है।

प्राण, शरीर, गृह, राज्य, स्वर्ग, भोग, योग, मुक्ति, पत्नी, इष्ट, पुत्र, मित्र –इन सबमें से कुछ भी श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है, श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है।

वानप्रस्थ धर्म, यति विषयक धर्म, परमहंस के धर्म, भिक्षुक अर्थात् याचक के धर्म –इन सबमें से कुछ भी श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है, श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है ।

भगवान विष्णु की भक्ति, उनके पूजन में अनुरक्ति, विष्णु भक्तों की सेवा, माता की भक्ति, श्रीविष्णु ही पिता रूप में हैं, इस प्रकार की पिता सेवा–इन सबमें से कुछ भी श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है, श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है ।

प्रत्याहार और इन्द्रियों का दमन, प्राणायाम, न्यास–विन्यास का विधान, इष्टदेव की पूजा, मंत्र जप, तपस्या व भक्ति – इन सबमें से कुछ भी श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है, श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है ।

काली, दुर्गा, लक्ष्मी, भुवनेश्वरि, त्रिपुरासुन्दरी, भीमा, बगलामुखी (पूर्णा), मातंगी, धूमावती व तारा ये सभी मातृशक्तियाँ भी श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है, श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है।

भगवान के मत्स्य, कूर्म, वाराह, नरसिंह, वामन, नर–नारायण आदि अवतार, उनकी लीलाएँ, चरित्र एवं तप आदि भी श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है, श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है।

भगवान के श्री भृगु, राम, कृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि आदि वेदों में वर्णित दस अवतार श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है, श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है ।

गंगा, यमुना, रेवा आदि पवित्र नदियाँ, काशी, कांची, पुरी, हरिद्वार, द्वारिका, उज्जयिनी, मथुरा, अयोध्या आदि पवित्र पुरियाँ व पुष्करादि तीर्थ भी श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है, श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है।

हे सुन्दरी ! हे मातेश्वरी ! गोकुल यात्रा, गौशालाओं में भ्रमण एवं श्री वृन्दावन व मधुपुर आदि शुभ नामों का रटन – ये सब भी श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है, श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है ।

तुलसी की सेवा, विष्णु व शिव की भक्ति, गंगा सागर के संगम पर देह त्याग और अधिक क्या कहूँ परात्पर भगवान श्री कृष्ण की भक्ति भी श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है, श्री गुरुदेव से बढ़कर नहीं है ।

नित्य 12 पाठ 90 दिन तक का संकल्प लेने पर कुछ साधकों को मात्र 16 से 21 दिन में भी दर्शन हो जाते हैं। जिनका गुरु नहीं वह जिनके दर्शन करना चाहता है उन प्रभु से भी गुरुदीक्षा ले सकता है। अनेक प्रकाशनों से यह गुरुगीता प्राप्त हो जाती है। विद्वानों नें अनेक छन्दों में अलग अलग लिखा है पर प्रत्येक ही सिद्ध हैं। शान्तिकुंज हरिद्वार से प्रकाशित व्याख्या सहित गुरुगीता में कुछ भक्तों के नाम भी बताये गए हैं जिन्होनें श्री गुरुगीता के अनुष्ठान से ही प्रभु परम वीर हनुमान जी से ही मंत्र दीक्षा ली थी।

प्रभु शिव जी ने एक अति गुप्त विद्या का उपदेश देवी पार्वती के पूछने पर कैलास शिखर पर दिया था वही श्री गुरुगीता कहलाती है। जो अपरोक्षज्ञानी संत की सेवा के निमित्त है जिनको परम गुरु की संज्ञा दी है प्रभु ने और इसमें बोधक,वाचक आदि अनेक प्रकार के गुरुओं के बारे में भी बताया गया है और गुरु चरणामृत का अद्वितीय फल भी। अतः श्रवण करें–

संक्षिप्त में कुछ जानकारी –

श्रीगुरुगीता का एक एक अक्षर मंत्रराज है। अन्य जो विविध मंत्र हैं वे इसका सोलहवाँ भाग भी नहीं।''यह–अकाल मृत्यु को रोकती है, सब संकटों का नाश करती है, यक्ष, राक्षस, भूत, चोर और शेर आदि का घात करती है।''

''जो पवित्र ज्ञानवान पुरुष इस श्रीगुरुगीता का जप–पाठ करते हैं उनके दर्शन और स्पर्श से पुनर्जन्म नहीं होता।'' ''इस श्री गुरुगीता का पाठ शत्रु का मुख बन्द करने वाला है, गुणों की वृद्धि करने वाला है,

दुष्कृत्यों का नाश करने वाला और सत्कर्म में सिद्धि देने वाला है।''

इस श्रीगुरुगीता के श्लोक भवरोग–निवारण के लिए अमोघ औषधि हैं। साधकों के लिए परमअमृत है। स्वर्ग का अमृत पीने से पुण्य क्षीण होते हैं जबकि इस गीता का अमृत पीने से पापनष्ट होकर परम शांति मिलती है, स्वस्वरूप का भान होता है।

गुरुगीता

श्रीगुरुगीता के नित्य 12 पाठ 90 दिन तक का संकल्प लेने पर कुछ साधकों को मात्र 16 से 21 दिन में भी दर्शन हो जाते हैं। जिनका गुरु नहीं वह जिनके दर्शन करना चाहता है उन प्रभु से भी गुरुदीक्षा ले सकता है। अनेक प्रकाशनों से यह गुरुगीता प्राप्त हो जाती है। विद्वानों नें अनेक छन्दों में अलग अलग लिखा है पर प्रत्येक ही सिद्ध हैं। शान्तिकुंज हरिद्वार से प्रकाशित व्याख्या सहित गुरुगीता में कुछ भक्तों के नाम भी बताये गए हैं जिन्होनें श्री गुरुगीता के अनुष्ठान से ही प्रभु परम वीर हनुमान जी से ही मंत्र दीक्षा ली थी।

प्रभु शिव जी ने एक अति गुप्त विद्या का उपदेश देवी पार्वती के पूछने पर कैलास शिखर पर दिया था वही श्री गुरुगीता कहलाती है। जो अपरोक्षज्ञानी संत की सेवा के निमित्त है जिनको परम गुरु की संज्ञा दी है प्रभु ने और इसमें बोधक,वाचक आदि अनेक प्रकार के गुरुओं के बारे में भी बताया गया है और गुरु चरणामृत का अद्वितीय फल भी। अतः श्रवण करें–

संक्षिप्त में कुछ जानकारी –

1. श्रीगुरुगीता का एक एक अक्षर मंत्रराज है। अन्य जो विविध मंत्र हैं वे इसका सोलहवाँ भाग भी नहीं।''
2. यह–अकाल मृत्यु को रोकती है,
3. सब संकटों का नाश करती है,
4. यक्ष, राक्षस, भूत,चोर और शेर आदि का घात करती है।''
5. ''जो पवित्र ज्ञानवान पुरुष इस श्रीगुरुगीता का जप–पाठ करते हैं उनके दर्शन और स्पर्श से पुनर्जन्म नहीं होता।''
6. 'इस श्री गुरुगीता का पाठ शत्रु का मुख बन्द करने वाला है, गुणों की वृद्धि करने वाला है,
7. दुष्कृत्यों का नाश करने वाला
8. और सत्कर्म में सिद्धि देने वाला है।''
9. इस श्रीगुरुगीता के सभी श्लोक भवरोग–निवारण के लिए अमोघ औषधि हैं।
10. साधकों के लिए परमअमृत है।
11. स्वर्ग का अमृत पीने से पुण्य क्षीण होते हैं जबकि इस गीता का अमृत पीने से पापनष्ट होकर परम शांति मिलती है, स्व–स्वरूप का भान होता है।

.......................पहले आप गुरुगीता जी के पाठ की महिमा श्रवण करें–

प्रभु ने कहा कि हे प्रिये !

इस गुरुगीता का पाठ करने से जो कार्य सिद्ध होता है अब वह कहता हूँ हेदेवी ! लोगों के लिए यह उपकारक है मात्र लौकिक का त्याग करना चाहिए।

लौकिकाद्धर्मतो याति ज्ञानहीनो भवार्णवे ।
ज्ञानभावे च यत्सर्वं कर्म निष्कर्म शाम्यति ।।

जो कोई इसका उपयोग लौकिक कार्य के लिए करेगा वह ज्ञानहीन होकर संसाररूपी सागर में गिरेगा

ज्ञान भाव से जिस कर्म में इसका उपयोग किया जाएगा वह कर्म निष्कर्म में परिणत होकर शांत हो जाएगा

इमां तु भक्तिभावेन पठेद्वै शृणुयादपि।
लिखित्वा यत्प्रसादेन तत्सर्वं फलमश्नुते ।।
गुरुगीतामिमां देवि हृदि नित्यं विभावय।
महाव्याधिगतैदुःखैः सर्वदा प्रजपेन्मुदा।।

भक्ति भाव से इस गुरुगीता का पाठ करने से, सुनने से और लिखने से वह (भक्त) सब फल भोगता है ।

हे देवी ! इस गुरुगीता को नित्य भावपूर्वक हृदय में धारण करो । महाव्याधिवाले दुःखी लोगों को सदा आनंद से इसका जप करना चाहिए।

गुरुगीताक्षरैकैकं मंत्रराजमिदं प्रिये ।
अन्ये च विविधा मंत्राः कलां नार्हन्ति षोड्शीम्।।
अनन्तफलमाप्नोति गुरुगीताजपेन तु।
सर्वपापहरा देवि सर्वदारिद्रयनाशिनी ।।

हे प्रिये ! गुरुगीता का एक–एक अक्षर मंत्रराज है । अन्य जो विविध मंत्र हैं वे इसका सोलहवाँ भाग भी नहीं।। हे देवी ! गुरुगीता के जप से अनंत फल मिलता है । गुरुगीता सर्व पाप को हरने वाली और सर्व दारिद्रय का नाश करने वाली है ।

अकालमृत्युहंत्री च सर्वसंकटनाशिनी
यक्षराक्षसभूतादिचोरव्याघ्रविघातिनी ।।
सर्वोपद्रवकुष्ठदिदुष्टदोषनिवारिणी ।
यत्फलं गुरुसान्निध्यात्तत्फलं पठनाद् भवेत् ।।

गुरुगीता अकाल मृत्यु को रोकती है, सब संकटों का नाश करती है, यक्ष राक्षस, भूत, चोर और बाघ आदि का घात करती है।

गुरुगीता सब प्रकार के उपद्रवों, कुष्ठ और दुष्ट रोगों और दोषों का निवारण करनेवाली है श्री गुरुदेव के सान्निध्य से जो फल मिलता है वह फल इस गुरुगीता का पाठ करने से मिलता है ।

महाव्याधिहरा सर्वविभूतेः सिद्धिदा भवेत्।
अथवा मोहने वश्ये स्वयमेव जपेत्सदा ।।
मोहनं सर्वभूतानां बन्धमोक्षकरं परम्।
देवराज्ञां प्रियकरं राजानं वश्मानयेत्।।

इस गुरुगीता का पाठ करने से महाव्याधि दूर होती है, सर्व ऐश्वर्य और सिद्धियों की प्राप्ति होती है ।

मोहन में अथवा वशीकरण में इसका पाठ स्वयं ही करना चाहिए ।

इस गुरुगीता का पाठ करनेवाले पर सर्व प्राणी मोहित हो जाते हैं बन्धन में सेपरम मुक्ति मिलती है, देवराज इन्द्र को वह प्रिय होता है और राजा उसके वश होता है ।

मुखस्तम्भकरं चैव गुणाणां च विवर्धनम्।
दुष्कर्मनाश्नं चौव तथा सत्कर्मसिद्धिदम्।।
असिद्धं साधयेत्कार्यं नवग्रहभयापहम्।
दुःस्वप्ननाशनं चौव सुस्वप्नफलदायकम्।।

इस गुरुगीता का पाठ शत्रु का मुख बन्द करनेवाला है, गुणों की वृद्धि करनेवाला है, दुष्कृत्यों का नाश करनेवाला और सत्कर्म में सिद्धि देनेवाला है ।

इसका पाठ असाध्य कार्यों की सिद्धि कराता है, नव ग्रहों का भय हरता है, दुःस्वप्न का नाश करता है और सुस्वप्न के फल की प्राप्ति कराता है ।

मोहशान्तिकरं चौव बन्धमोक्षकरं परम्
स्वरूपज्ञाननिलयं गीतशास्त्रमिदं शिवे ।।
यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चयम्।
नित्यं सौभाग्यदं पुण्यं तापत्रयकुलापहम्।।

हे शिवे ! यह गुरुगीतारूपी शास्त्र मोह को शान्त करनेवाला, बन्धन में से परम मुक्त करनेवाला और स्वरूपज्ञान का भण्डार है। व्यक्ति जो–जो अभिलाषा करके इस गुरुगीता का पठन–चिन्तन करता है उसेवह निश्चय ही प्राप्त होता है । यह गुरुगीता नित्य सौभाग्य और पुण्य प्रदान करनेवाली तथा तीनों तापों (आधि–व्याधि–उपाधि) का शमन करनेवाली है ।।

सर्वशान्तिकरं नित्यं तथा वन्ध्यासुपुत्रदम्।
अवैधव्यकरं स्त्रीणां सौभाग्यस्य।।
स्मशाने बिल्वमूले वा वटमूलान्तिके तथा ।
सिद्धयन्ति कानके मूले चूतवृक्षस्य सन्निधौ ।।

यह सब प्रकार से परम शान्ति देने वाली, निपुत्र को संतान देने वाली, सुहाग की रक्षा करने वाली है।

स्मशान में, बिल्व, वटवृक्ष या कनकवृक्ष के नीचे और आम्रवृक्ष के पास जप करने से से सिद्धि जल्दी होती है

आकल्पजन्मकोटीनां यज्ञ व्रततपः क्रियाः।
ताः सर्वाः सफला देवि गुरुसंतोषमात्रतः ।।

हे देवी ! कल्प पर्यन्त के, करोंड़ों जन्मों के यज्ञ, व्रत, तप और शास्त्रोक्त क्रियाएँ, ये सब गुरुदेव के संतोषमात्र से सफल हो जाते हैं ।

मंदभाग्या ह्यशक्ताश्च ये जना नानुमन्वते ।
गुरुसेवासु विमुखाः पच्यन्ते नरकेऽशुचौ ।।
विद्या धनं बलं चौव तेषां भाग्यं निरर्थकम्।
येषां गुरुकृपा नास्ति अधो गच्छन्ति पार्वति

भाग्यहीन, शक्तिहीन और गुरुसेवा से विमुख जो लोग इस उपदेश को नहीं मानते वे घोर नरक में पड़ते हैं जिसके ऊपर श्री गुरुदेव की कृपा नहीं है उसकी विद्या, धन, बल और भाग्य निरर्थक है। हे पार्वती ! उसका अधःपतन होता है।

धन्या माता पिता धन्यो गोत्रं धन्यं कुलोदभवः।
धन्या च वसुधा देवि यत्र स्याद् गुरुभक्तता ।।

जिसके अंदर गुरुभक्ति हो उसकी माता धन्य है, उसका पिता धन्य है, उसकावंश धन्य है, उसके वंश में जन्म लेनेवाले धन्य हैं, समग्र धरती माता धन्य है।

शरीरमिन्द्रियं प्राणच्चार्थः स्वजनबन्धुतां ।
मातृकुलं पितृकुलं गुरुरेव न संशयः ।।

शरीर, इन्द्रियाँ, प्राण, धन, स्वजन, बन्धु–बान्धव, माता का कुल, पिता का कुलये सब गुरुदेव ही हैं इसमें संशय नहीं है।

गुरुर्देवो गुरुर्धर्मो गुरौ निष्ठा परं तपः।
गुरोः परतरं नास्ति त्रिवारं कथयामि ते ।।

गुरु ही देव हैं, गुरु ही धर्म हैं, गुरु में निष्ठा ही परम तप है । गुरु से अधिक और कुछ नहीं है यह मैं तीन बार कहता हूँ।

समुद्रे वै यथा तोयं क्षीरे क्षीरं घृते घृतम्।
भिन्ने कुंभे यथाऽऽकाशं तथाऽऽत्मा परमात्मनि ।।

जिस प्रकार सागर में पानी, दूध में दूध, घी में घी, अलग–अलग घटों में आकाश एक और अभिन्न है उसी प्रकार परमात्मा में जीवात्मा एक और अभिन्न है ।

तथैव ज्ञानवान् जीव परमात्मनि सर्वदा।
ऐक्येन रमते ज्ञानी यत्र कुत्र दिवानिशम्।।

इसी प्रकार ज्ञानी सदा परमात्मा के साथ अभिन्न होकर रात–दिन आनंदविभोर होकर सर्वत्र विचरते हैं

गुरुसन्तोषणादेव मुक्तो भवति पार्वति।
अणिमादिषु भोक्तृत्वं कृपया देवि जायते ।।

हे पार्वति ! गुरुदेव को संतुष्ट करने से शिष्य मुक्त हो जाता है हे देवी ! गुरुदेव की कृपा से वह अणिमादि सिद्धियों का भोग प्राप्त करता है।

साम्येन रमते ज्ञानी दिवा वा यदि वा निशि ।
एवं विधौ महामौनी त्रैलोक्यसमतां व्रजेत्।।
गुरुभावः परं तीर्थमन्यतीर्थं निरर्थकम्।
सर्वतीर्थमयं देवि श्रीगुरोश्चरणाम्बुजम्।।

ज्ञानी दिन में या रात में, सदा सर्वदा समत्व में रमण करते हैं । इस प्रकार के महामौनी अर्थात् ब्रह्मनिष्ठ महात्मा तीनों लोकों मे समान भाव से गति करते हैं ।।

गुरुभक्ति ही सबसे श्रेष्ठ तीर्थ है अन्य तीर्थ निरर्थक हैं हे देवी ! गुरुदेव के चरणकमल सर्वतीर्थमय है।

कन्याभोगरतामन्दाः स्वकान्तायाः पराङ्मुखाः।
अतः परं मया देवि कथितन्न मम प्रिये ।।

हे देवी ! हे प्रिये ! कन्या के भोग में रत, स्वस्त्री से विमुख (परस्त्रीगामी) ऐसे बुद्धिशून्य लोगों को मेरा यह आत्मप्रिय परमबोध मैंने नहीं कहा।

अभक्ते वंचके धूर्ते पाखंडे नास्तिकादिषु ।
मनसाऽपि न वक्तव्या गुरुगीता कदाचन ।।

अभक्त, कपटी, धूर्त, पाखण्डी, नास्तिक इत्यादि को यह गुरुगीता कहने का मन में सोचना तक नहीं ।

गुरवो बहवः सन्ति शिष्यवित्तापहारकाः।
तमेकं दुर्लभं मन्ये शिष्यह्यत्तापहारकम्।।
एवं बहुविधालोके गुरवः सन्ति पार्वति ।
तेषु सर्वप्रत्नेन सेव्यो हि परमो गुरुः ।।

हे पर्वती ! इस प्रकार संसार में अनेक प्रकार के गुरु होते हैं इन सबमें एकपरम गुरु का ही सेवन सर्व प्रयत्नों से करना चाहिए ।

पार्वत्युवाच

स्वयं मूढा मृत्युभीताः सुकृताद्विरतिं गताः ।
दैवन्निषिद्धगुरुगा यदि तेषां तु का गतिः ।।

पर्वती ने कहा–प्रकृति से ही मूढ, मृत्यु से भयभीत, सत्कर्म से विमुख लोग यदि दैवयोग से निषिद्ध गुरु का सेवन करें तो उनकी क्या गति होती है ?

श्रीमहादेव उवाच–

निषिद्धगुरुशिष्यस्तु दुष्टसंकल्पदूषितः।
ब्रह्मप्रलयपर्यन्तं न पुनर्याति मृत्यताम्।।

श्री महादेवजी बोले– निषिद्ध गुरु का शिष्य दुष्ट संकल्पों से दूषित होने के कारण ब्रह्मप्रलय तक मनुष्य नहीं होता, पशुयोनि में ही रहता है ।

श्रृणु तत्वमिदं देवि यदा स्याद्विरतो नरः ।
तदाऽसावधिकारीति प्रोच्यते श्रुतमस्तकैः।।

हे देवी ! इस तत्व को ध्यान से सुनो मनुष्य जब विरक्त होता है तभी वह अधिकारी कहलाता है, ऐसा उपनिषद कहते हैं अर्थात् दैव योग से गुरु प्राप्त होने की बात अलग है और विचार से गुरु चुनने की बात अलग है।

अखण्डैकरसं ब्रह्म नित्यमुक्तं निरामयम्।
स्वस्मिन संदर्शितं येन स भवेदस्य देशिकः।।

अखण्ड, एकरस, नित्यमुक्त और निरामय ब्रह्म जो अपने अंदर ही दिखाते हैं वेही गुरु होने चाहिए।

जलानां सागरो राजा यथा भवति पार्वति।
गुरुणां तत्र सर्वेषां राजायं परमो गुरुः।।

हे पार्वती ! जिस प्रकार जलाशयों में सागर राजा है उसी प्रकार सब गुरुओं में से ये परम गुरु राजा हैं

मोहादिरहितः शान्तो नित्यतृप्तो निराश्रयः।
तृणीकृतब्रह्मविष्णुवैभवः परमो गुरुः।।

मोहादि दोषों से रहित, शांत, नित्य तृप्त, किसीके आश्रयरहित अर्थात् स्वाश्रय,ब्रह्मा और विष्णु के वैभव को भी तृणवत् समझनेवाले गुरु ही परम गुरु हैं।

सर्वकालविदेशेषु स्वतंत्रो निश्चलस्सुखी ।
अखण्डैकरसास्वादतृप्तो हि परमो गुरुः।।

सर्व काल और देश में स्वतंत्र, निश्चल, सुखी, अखण्ड, एक रस के आनन्द सेतृप्त ही सचमुच परम गुरु हैं।

द्वैताद्वैतविनिर्मुक्तः स्वानुभूतिप्रकाशवान्
अज्ञानान्धमश्छेत्ता सर्वज्ञ परमो गुरुः।।

द्वैत और अद्वैत से मुक्त, अपने अनुभुवरूप प्रकाशवाले, अज्ञानरूपी अंधकार कोछेदनेवाले और सर्वज्ञ ही परमगुरु हैं।

यस्य दर्शनमात्रेण मनसः स्यात प्रसन्नता।
स्वयं भूयात धृतिश्शान्तिः स भवेत् परमो गुरुः।।

जिनके दर्शनमात्र से मन प्रसन्न होता है, अपने आप धैर्य और शांति आ जातीहै वे परम गुरु हैं (181)

स्वशरीरं शवं पश्यन् तथा स्वात्मानमद्वयम्।
यः स्त्रीकनकमोहघ्नः स भवेत परमो गुरुः।।

जो अपने शरीर को शव समान समझते हैं अपने आत्मा को अद्वय जानते हैं, जो कामिनी और कंचन के मोह का नाशकर्ता हैं वे परम गुरु हैं ।

मौनी वाग्मीति तत्वज्ञो द्विधाभूच्छृणु पार्वति ।
न कश्चिन्मौनिना लाभो लोकेऽस्मिन्भवति प्रिये।।
वाग्मी तूत्कटसंसारसागरोत्तारणक्षमः।
यतोऽसौ संशयच्छेत्ता शास्त्रयुक्त्यनुभूतिभिः।।

हे पार्वती ! सुनो–तत्वज्ञ दो प्रकार के होते हैं।

1. **मौनी**
2. **वक्ता ।**

हे प्रिये ! इन दोंनों में से मौनी गुरु द्वारा लोगों को कोई लाभ नहीं होता, परन्तु वक्ता गुरु भयंकर संसारसागर को पार कराने में समर्थ होते हैं द्य क्योंकि शास्त्र, युक्ति (तर्क) और अनुभूति से वे सर्व संशयों का छेदन करते हैं।

गुरुनामजपाद्येवि बहुजन्मार्जितान्यपि ।
पापानि विलयं यान्ति नास्ति सन्देहमण्वपि।।

हे देवी ! गुरुनाम के जप से अनेक जन्मों के इकठ्ठे हुए पाप भी नष्ट होते हैं, इसमें अणुमात्र संशय नहीं है।

कुलं धनं बलं शास्त्रं बान्धवास्सोदरा इमे ।
मरणे नोपयुज्यन्ते गुरुरेको हि तारकः ।।

अपना कुल, धन, बल, शास्त्र, नाते–रिश्तेदार, भाई, ये सब मृत्यु के अवसर पर काम नहीं आते ।

एकमात्र गुरुदेव ही उस समय तारणहार हैं ।

कुलमेव पवित्रं स्यात् सत्यं स्वगुरुसेवया ।
तृप्ताः स्युस्स्कला देवा ब्रह्माद्या गुरुतर्पणात् ।।

सचमुच, अपने गुरुदेव की सेवा करने से अपना कुल भी पवित्र होता है । गुरुदेव के तर्पण से ब्रह्मा आदि सब देव तृप्त होते हैं।

स्वरूपज्ञानशून्येन कृतमप्यकृतं भवेत्।
तपो जपादिकं देवि सकलं बालजल्पवत्।।

हे देवी ! स्वरूप के ज्ञान के बिना किये हुए जप–तपादि सब कुछ नहीं कियेहुएके बराबर हैं, बालक के बकवाद के समान (व्यर्थ) हैं।

न जानन्ति परं तत्वं गुरुदीक्षापराङ्मुखाः।
भ्रान्ताः पशुसमा ह्येते स्वपरिज्ञानवर्जिताः।।

गुरुदीक्षा से विमुख रहे हुए लोग भ्रांत हैं, अपने वास्तविक ज्ञान से रहित हैं वे सचमुच पशु के समान हैं । परम तत्व को वे नहीं जानते ।

तस्मात्कैवल्यसिद्ध्यर्थं गुरुमेव भजेत्प्रिये ।
गुरुं विना न जानन्ति मूढास्तत्परमं पदम्।।

इसलिये हे प्रिये ! कैवल्य की सिद्धि के लिए गुरु का ही भजन करना चाहिए। गुरु के बिना मूढ लोग उस परम पद को नहीं जान सकते ।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते सर्वकर्माणि गुरोः करुणया शिवे ।।

हे शिवे ! गुरुदेव की कृपा से हृदय की ग्रन्थि छिन्न हो जाती है, सब संशय कट जाते हैं और सर्व कर्म नष्ट हो जाते हैं ।

कृताया गुरुभक्तेस्तु वेदशास्त्रनुसारतः।
मुच्यते पातकाद् घोराद् गुरुभक्तो विशेषतः।।

वेद और शास्त्र के अनुसार विशेष रूप से गुरु की भक्ति करने से गुरुभक्त घोर पाप से भी मुक्त हो जाता है।

दुःसंगं च परित्यज्य पापकर्म परित्यजेत्।
चित्तचिह्नमिदं यस्य तस्य दीक्षा विधीयते ।।
चित्तत्यागनियुक्तश्च क्रोधगर्वविवर्जितः।
द्वैतभावपरित्यागी तस्य दीक्षा विधीयते ।।

दुर्जनों का संग त्यागकर पापकर्म छोड़ देने चाहिए । जिसके चित्त में ऐसा चिह्न देखा जाता है उसके लिए गुरुदीक्षा का विधान है । चित्त का त्याग करने में जो प्रयत्नशील है, क्रोध और गर्व से रहित है, द्वैतभावका जिसने त्याग किया है उसके लिए गुरुदीक्षा का विधान है ।

एतल्लक्षणसंयुक्तं सर्वभूतहिते रतम्
निर्मलं जीवितं यस्य तस्य दीक्षा विधीयते ।।

जिसका जीवन इन लक्षणों से युक्त हो, निर्मल हो, जो सब जीवों के कल्याण में रत हो उसके लिए गुरुदीक्षा का विधान है।

अत्यन्तचित्तपक्वस्य श्रद्धाभक्तियुतस्य च।
प्रवक्तव्यमिदं देवि ममात्मप्रीतये सदा ।।
सत्कर्मपरिपाकाच्च चित्तशुद्धस्य धीमतः।
साधकस्यैव वक्तव्या गुरुगीता प्रयत्नतः।।

हे देवी ! जिसका चित्त अत्यन्त परिपक्व हो, श्रद्धा और भक्ति से युक्त हो उसेयह तत्व सदा मेरी प्रसन्नता के लिए कहना चाहिए ।

सत्कर्म के परिपाक से शुद्ध हुए चित्तवाले बुद्धिमान् साधक को ही गुरुगीता प्रयत्नपूर्वक कहनी चाहिए।

नास्तिकाय कृतघ्नाय दांभिकाय शठाय च।
अभक्ताय विभक्ताय न वाच्येयं कदाचन ।।
स्त्रीलोलुपाय मूर्खाय कामोपहतचेतसे।
निन्दकाय न वक्तव्या गुरुगीतास्वभावतः।।

नास्तिक, कृतघ्न, दंभी, शठ, अभक्त और विरोधी को यह गुरुगीता कदापि नहीं कहनी चाहिए।

स्त्रीलम्पट, मूर्ख, कामवासना से ग्रस्त चित्तवाले तथा निंदक को गुरुगीता बिलकुल नहीं कहनी चाहिए।

एकाक्षरप्रदातारं यो गुरुर्नैव मन्यते ।
श्वनयोनिशतं गत्वा चाण्डालेष्वपि जायते ।।
गुरुत्यागाद्भ वेन्मृत्युर्मन्त्रत्यागाद्यरिद्रता ।
गुरुमंत्रपरित्यागी रौरवं नरकं व्रजेत्।।

एकाक्षर मंत्र का उपदेश करनेवाले अनासक्त – निर्लोभी – ज्ञाननिष्ठ – और – परमगुरु को जो गुरु नहीं मानता वह सौ जन्मों में कुत्ता होकर फिर चाण्डाल की योनि में जन्म लेता है।

शिवक्रोधाद् गुरुस्त्राता गुरुक्रोधाच्छिवो न हि ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गुरोराज्ञां न लंघयेत् ।।

सप्तकोटिमहामंत्राश्चित्तविभ्रंशकारकाः।
एक एव महामंत्रो गुरुरित्यक्षरद्वयम् ।।

न मृषा स्यादियं देवि मदुक्तिः सत्यरूपिणि
गुरुगीतासमं स्तोत्रं नास्ति नास्ति महीतले ।

गुरुगीतामिमां देवि भवदुःखविनाशिनीम् ।
गुरुदीक्षाविहीनस्य पुरतो न पठेत्क्वचित् ।।

रहस्यमत्यन्तरहस्यमेतन्न पापिना लभ्यमिदं महेश्वरि ।
अनेकजन्मार्जितपुण्यपाकाद् गुरोस्तु तत्वं लभते मनुष्यः।।

सर्वतीर्थवगाहस्य संप्राप्नोति फलं नरः।
गुरोः पादोदकं पीत्वा शेषं शिरसि धारयन् ।।

गुरुपादोदकं पानं गुरोरुच्छिष्टभोजनम् ।
गुरुर्मूर्ते सदा ध्यानं गुरोर्नाम्नः सदा जपः।।

गुरुरेको जगत्सर्वं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ।
गुरोः परतरं नास्ति तस्मात्संपूजयेद् गुरुम् ।।

ज्ञानं विना मुक्तिपदं लभ्यते गुरुभक्तितः।
गुरोः समानतो नान्यत् साधनं गुरुमार्गिणाम् ।।

गुरोः कृपाप्रसादेन ब्रह्मविष्णुशिवादयः।
सामर्थ्यमभजन् सर्वे सृष्टिस्थित्यंतकर्मणि।।

मंत्रराजमिदं देवि गुरुरित्यक्षरद्वयम्।
स्मृतिवेदपुराणानां सारमेव न संशयः।।

यस्य प्रसादादहमेव सर्वं मय्येव सर्वं परिकल्पितं च।
इत्थं विजानामि सदात्मरूपं त्स्यांघ्रिपद्मं प्रणतोऽस्मि नित्यम् ।।

अज्ञानतिमिरान्धस्य विषयाक्रान्तचेतसः।
ज्ञानप्रभाप्रदानेन प्रसादं कुरु मे प्रभो ।।

अब मूल पाठ देखें–

अपने सम्मुख बाजोट पर स्वच्छ वस्त्र बिछाकार श्रीगुरुगीता को स्थान दें और स्वयं कुशासन पर बैठकर हाथ में जल लें और विनियोग पढे निम्नलिखित विनियोग पढकर जल पृथ्वी पर छोडना है। यदि किसी स्थान पर जल न हो तो कंठी या हृदय को स्पर्श करके भी विनियोग कर सकते हैं।

विनियोग–

ॐ अस्य श्रीगुरुगीतास्तोत्रमालामंत्रस्य भगवान सदाशिवः ऋषि। विराट्

छन्दः। श्री गुरुपरमात्मा देवता। हं

बीजम्। सः शक्तिः। सोऽहम् कीलकम्। श्रीगुरुकृपाप्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।।

।। अथ करन्यासः।।

ॐ हं सां सूर्यात्मने अंगुष्ठाभ्यां नमः।

ॐ हं सीं सोमात्मने तर्जनीभ्यां नमः।

ॐ हं सूं निरंजनात्मने मध्यमाभ्यां नमः।

ॐ हं सैं निराभासात्मने अनामिकाभ्यां नमः।

ॐ हं सौं अतनुसूक्ष्मात्मने कनिष्ठिकाभ्यां नमः।

ॐ हं सः अव्यक्तात्मने करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।
।। इति करन्यासः।।

।। अथ हृदयादिन्यासः।।

ॐ हं सां सूर्यात्मने हृदयाय नमः।

ॐ हं सीं सोमात्मने शिरसे स्वाहा।

ॐ हं सूं निरंजनात्मने शिखायै वषट्।

ॐ हं सैं निराभासात्मने कवचाय हुम्।

ॐ हं सौं अतनुसक्षमात्मने नेत्रत्रयाय वौषट्।

ॐ हं सः अव्यक्तात्मने अस्त्राय फट्।

।। इति हृदयादिन्यासः।।

।। अथ ध्यानम्।।

नमामि सदगुरुं शान्तं प्रत्यक्षं शिवरूपिणम्।
शिरसा योगपीठस्थं मुक्तिकामर्थासिद्धिदम्।। 1 ।।

प्रातः शिरसि शुक्लाब्जो द्विनेत्रं द्विभुजं गुरुम्।
वराभयकरं शान्तं स्मरेत्तन्नामपूर्वकम्।। 2 ।।

प्रसन्नवदनाक्षं च सर्वदेवस्वरूपिणम।
तत्पादोदकजा धारा निपतन्ति स्वमूर्धनि।। 3 ।।

तया संक्षालयेद् देहे ह्यान्तर्बाह्यगतं मलम्।
तत्क्षणाद्विरजो भूत्वा जायते स्फटिकोपमः।। 4 ।।

तीर्थानि दक्षिणे पादे वेदास्तन्मुखरक्षिताः।
पूजयेदर्चितं तं तु तदभिध्यानपूर्वकम्।। 5 ।।

।। इति ध्यानम् ।।

।। मानसोपचारैः श्रीगुरुं पूजयित्वा ।।

लं पृथिव्यात्मने गंधतन्मात्रा–प्रकृत्यानन्दात्मने–श्रीगुरुदेवाय नमः पृथिव्यात्मकं गंधं समर्पयामि।।

हं आकाशात्मने शब्दतन्मात्रा–प्रकृत्यानन्दात्मने श्रीगुरुदेवाय नमः आकाशात्मकं पुष्पं समर्पयामि।।

यं वायव्वात्मने स्पर्शतन्मात्रा–प्रकृत्यानन्दात्मने श्रीगुरुदेवाय नमः वायव्वात्मकं धूपं आघ्रापयामि।।

रं तेजात्मने रूपतन्मात्रा–प्रकृत्यानन्दात्मने श्रीगुरुदेवाय नमः तेजात्मकं दीपं दर्शयामि।।

वं अपात्मने रसतन्मात्रा–प्रकृत्यानन्दात्मने श्रीगुरुदेवाय नमः अपात्मकं नैवेद्यकं निवेदयामि।।

सं सर्वात्मने सर्वतन्मात्रा–प्रकृत्यानन्दात्मने श्रीगुरुदेवाय नमः सर्वात्मकान् सर्वोपचारान् समर्पयामि।।

।। इति मानसपूजा ।।

अथ प्रथमोऽध्यायः

अचिन्त्याव्यक्तरूपाय निर्गुणाय गुणात्मने।
समस्त जगदाधारमूर्तये ब्रह्मणे नमः।।

जो ब्रह्म अचिन्त्य, अव्यक्त तीनों गुणों से रहित पर लीलावश तीनों गुणों से युक्त भी, और समस्त जगत का अधिष्ठान रूप है ऐसे ब्रह्म को नमस्कार है।1।

ऋषयः ऊचुः

सूत सूत महाप्राज्ञ निगमागमपारग ।
गुरुस्वरूपमस्माकं ब्रूहि सर्वमलापहम्।।

ऋषियों ने कहा : हे महाज्ञानी, हे वेद–वेदांगों के निष्णात ! प्यारे सूत जी ! सर्व पापों का नाश करनेवाले गुरु का स्वरूप हमें सुनाओ ।2।

यस्य श्रवणमात्रेण देही दुःखाद्विमुच्यते ।
येन मार्गेण मुनयः सर्वज्ञत्वं प्रपेदिरे ।।
यत्प्राप्य न पुनर्याति नरः संसारबन्धनम्।
तथाविधं परं तत्वं वक्तव्यमधुना त्वया ।।

जिसको सुनने मात्र से मनुष्य दुःख से विमुक्त हो जाता है । जिस उपाय से मुनियों ने सर्वज्ञता प्राप्त की है, जिसको प्राप्त करके मनुष्य फिर से संसार बन्धन में बँधता नहीं है ऐसे परम तत्व का कथन आप करें ।3,4।

गुह्यादगुह्यतमं सारं गुरुगीता विशेषतः ।
त्वत्प्रसादाच्च श्रोतव्या तत्सर्वं ब्रूहि सूत नः।।

जो तत्व परम रहस्यमय एवं श्रेष्ठ सारभूत है और विशेष कर जो गुरुगीता है वह आपकी कृपा से हम सुनना चाहते हैं प्यारे सूतजी ! वे सब हमें सुनाइये ।5।

इति संप्राथितः सूतो मुनिसंघैर्मुहुर्मुहुः ।
कुतूहलेन महता प्रोवाच मधुरं वचः ।।

इस प्रकार बार–बार प्रर्थना किये जाने पर सूतजी बहुत प्रसन्न होकर मुनियों के समूह से मधुर वचन बोले ।6।

सूत उवाच–

श्रृणुध्वं मुनयः सर्वे श्रद्धया परया मुदा ।
वदामि भवरोगघ्नीं गीता मातृस्वरूपिणीम्।।

सूतजी ने कहा : हे सर्व मुनियों ! संसाररूपी रोग का नाश करनेवाली, मातृस्वरूपिणी (माता के समान ध्यान रखने वाली) गुरुगीता कहता हूँ उसको आप अत्यंत श्रद्धा और प्रसन्नता से सुनिये।7।

पुरा कैलासशिखरे सिद्धगन्धर्वसेविते।
तत्र कल्पलता–पुष्प–मन्दिरेऽत्यन्तसुन्दरे ।।

व्याघ्राजिने समासिनं शुकादिमुनिवन्दितम्।
बोधयन्तं परं तत्वं मध्येमुनिगणंक्वचित् ।।

प्रणम्रवदना शश्वन्नमस्कुर्वन्तमादरात् ।
दृष्ट्वा विस्मयमापन्ना पार्वती परिपृच्छति।।

प्राचीन काल में सिद्धों और गन्धर्वों के आवास रूप कैलास पर्वत के शिखर पर कल्पवृक्ष के फूलों से बने हुए अत्यंत सुन्दर मंदिर में, मुनियों के बीच व्याघ्रचर्म पर बैठे हुए, शुक आदि मुनियों द्वारा वन्दन किये जानेवाले और परम तत्व का बोध देते हुए भगवान शंकर को बार–बार नमस्कार करते देखकर, अतिशयनम्र मुखवाली पार्वति ने आश्चर्यचकित होकर पूछा ।8–10।

पार्वत्युवाच

ॐ नमो देव देवेश परात्पर जगदगुरो।
त्वां नमस्कुर्वते भक्त्या सुरासुरनराः सदा ।।

पार्वती ने कहाः हे ॐकार के अर्थस्वरूप, देवों के देव, श्रेष्ठों के श्रेष्ठ, हे जगदगुरो! आपको प्रणाम हो देवदानव और मानव सब आपको सदा भक्तिपूर्वकप्रणाम करते हैं ।11।

विधिविष्णुमहेन्द्राद्यैर्वन्द्यः खलु सदा भवान् ।
नमस्करोषि कस्मै त्वं नमस्काराश्रयः किलः ।।

आप ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि के नमस्कार के योग्य हैं ऐसे नमस्कार के आश्रयरूप होने पर भी आप किसको नमस्कार करते हैं ।12।

भगवन् सर्वधर्मज्ञ व्रतानां व्रतनायकम्।
ब्रूहि मे कृपया शम्भो गुरुमाहात्म्यमुत्तमम्

हे भगवान् ! हे सर्व धर्मों के ज्ञाता ! हे शम्भो ! जो व्रत सब व्रतों में श्रेष्ठ है ऐसा उत्तम गुरु–माहात्म्य कृपा करके मुझे कहें ।13।

इति संप्रार्थितः शश्वन्महादेवो महेश्वरः
आनंदभरितः स्वान्ते पार्वतीमिदमब्रवीत्।।

इस प्रकार (पार्वती देवी द्वारा) बार–बार प्रार्थना किये जाने पर महादेव ने अंतर से खूब प्रसन्न होते हुए पार्वती से इस प्रकार कहा ।14।

महादेव उवाच

न वक्तव्यमिदं देवि रहस्यातिरहस्यकम् ।
न कस्यापि पुरा प्रोक्तं त्वद्भक्त्यर्थं वदामि तत् ।।

श्री महादेव जी ने कहाः हे देवी ! यह तत्व रहस्यों का भी रहस्य है इसलिए कहना उचित नहीं पहले किसी से भी नहीं कहा फिर भी तुम्हारी भक्ति देखकर वह रहस्य कहता हूँ ।15।

मम् रूपासि देवि त्वमतस्तत्कथयामि ते।
लोकोपकारकः प्रश्नो न केनापि कृतः पुरा।।

हे देवी ! तुम मेरा ही स्वरूप हो इसलिए (यह रहस्य) तुमको कहता हूँ तुम्हारा यह प्रश्न लोक का कल्याणकारक है ऐसा प्रश्न पहले कभी किसीने नहीं किया।16।

यस्य देवे परा भक्ति, यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।।

जिसको ईश्वर में उत्तम भक्ति होती है, जैसी ईश्वर में वैसी ही भक्ति जिसको गुरु में होती है ऐसे महात्माओं को ही यहाँ कही हुई बात समझ में आयेगी ।17।

यो गुरु स शिवः प्रोक्तो, यः शिवः स गुरुस्मृतः।
विकल्पं यस्तु कुर्वीत स नरो गुरुतल्पगः।।

जो गुरु हैं वे ही शिव हैं, जो शिव हैं वे ही गुरु हैं दोनों में जो अन्तर मानता है वह गुरुपत्नीगमन करने वाले के समान पापी है ।18 ।

वेद्शास्त्रपुराणानि चेतिहासादिकानि च।
मंत्रयंत्रविद्यादिनिमोहनोच्चाटनादिकम्।।
शैवशाक्तागमादिनि ह्यन्ये च बहवो मताः ।
अपभ्रंशाः समस्तानां जीवानां भ्रांतचेतसाम्।।
जपस्तपोव्रतं तीर्थं यज्ञो दानं तथैव च ।
गुरु तत्वं अविज्ञाय सर्वं व्यर्थं भवेत् प्रिये।।

हे प्रिये ! वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास आदि मंत्र, यंत्र, मोहन, उच्चाट्न आदि विद्या शैव, शाक्त आगम और अन्य सर्व मत मतान्तर, ये सब बातें गुरुतत्व को जाने बिना भ्रान्त चित्तवाले जीवों को पथभ्रष्ट करने वाली हैं और जप, तप व्रत तीर्थ, यज्ञ, दान, ये सब व्यर्थ हो जाते है। 19, 20, 21 ।

गुरुबुध्यात्मनो नान्यत् सत्यं सत्यं वरानने
तल्लभार्थं प्रयत्नस्तु कर्तव्यश्च मनीषिभिः

हे सुमुखी ! आत्मा में गुरु बुद्धि के सिवा अन्य कुछ भी सत्य नहीं है सत्य नहीं है इसलिये इस आत्मज्ञान को प्राप्त करने के लिये बुद्धिमानों को प्रयत्न करना चाहिये ।22।

गूढाविद्या जगन्माया देहश्चाज्ञानसम्भवः ।
विज्ञानं यत्प्रसादेन गुरुशब्देन कथयते ।।

जगत गूढ़ अविद्यात्मक मायारूप है और शरीर अज्ञान से उत्पन्न हुआ है इनका विश्लेषणात्मक ज्ञान जिनकी कृपा से होता है उस ज्ञान को गुरु कहते हैं ।23।

देही ब्रह्म भवेद्यस्मात् त्वत्कृपार्थंवदामि तत्।
सर्वपापविशुद्धात्मा श्रीगुरोः पादसेवनात्।।

जिस गुरुदेव के पादसेवन से मनुष्य सर्व पापों से विशुद्धात्मा होकर ब्रह्मरूप हो जाता है वह तुम पर कृपा करने के लिये कहता हूँ ।24।

शोषणं पापपंकस्य दीपनं ज्ञानतेजसः
गुरोः पादोदकं सम्यक् संसारार्णवतारकम्।।

श्री गुरुदेव का चरणामृत पापरूपी कीचड़ का सम्यक् शोषक है, ज्ञानतेज का सम्यक् उद्दीपक है और संसारसागर का सम्यक तारक है ।25।

अज्ञानमूलहरणं जन्मकर्मनिवारकम्।
ज्ञानवैराग्यसिद्ध्यर्थं गुरुपादोदकं पिबेत् ।।

अज्ञान की जड़ को उखाड़नेवाले, अनेक जन्मों के कर्मों को निवारनेवाले, ज्ञान और वैराग्य को सिद्ध करने वाले श्रीगुरुदेव के चरणामृत का पान करना चाहिये ।26।

स्वदेशिकस्यैव च नामकीर्तनम्।
भवेदनन्तस्यशिवस्य कीर्तनम्।।
स्वदेशिकस्यैव च नामचिन्तनम्।
भवेदनन्तस्यशिवस्य नामचिन्तनम्।।

अपने गुरुदेव के नाम का कीर्तन अनंत स्वरूप भगवान शिव का ही कीर्तन है अपने गुरुदेव के नाम का चिंतन अनंत स्वरूप भगवान शिव का ही चिंतन है।27।

काशीक्षेत्रं निवासश्च जाह्नवी चरणोदकम्।
गुरुर्विश्वेश्वरः साक्षात्तारकं ब्रह्मनिश्चयः।।

गुरुदेव का निवासस्थान काशी क्षेत्र है श्री गुरुदेव का पादोदक गंगाजी है ।गुरुदेव भगवान विश्वनाथ और निश्चय ही साक्षात् तारक ब्रह्म हैं ।28।

गुरुसेवा गया प्रोक्ता देहः स्यादक्षयो वटः।
तत्पादं विष्णुपादं स्यात् तत्रदत्तमनस्ततम्।

गुरुदेव की सेवा ही तीर्थराज गया है । गुरुदेव का शरीर अक्षय वटवृक्ष है गुरुदेव के श्रीचरण भगवान विष्णु के श्रीचरण हैं वहाँ लगाया हुआ मन तदाकार हो जाता है ।29।

गुरुवक्त्रे स्थितं ब्रह्म प्राप्यते तत्प्रसादतः ।
गुरोर्ध्यानं सदा कुर्यात् पुरूषं स्वैरिणी यथा।।

ब्रह्म श्रीगुरुदेव के मुखारविन्द (वचनामृत) में स्थित है वह ब्रह्म उनकी कृपा से प्राप्त हो जाता है इसलिये जिस प्रकार स्वेच्छाचारिणी स्त्री अपने प्रियतम का स्मरण करती है उसी प्रकार सदा परमगुरु रूपी ब्रह्म का सदा ध्यान करना चाहिए।30।

स्वाश्रमं च स्वजातिं च स्वकीर्ति पुष्टिवर्धनम्।
एतत्सर्वं परित्यज्य गुरुमेव समाश्रयेत्।।

अपने आश्रम (ब्रह्मचर्याश्रमादि) जाति, कीर्ति (पदप्रतिष्ठा), पालन–पोषण, ये सब छोड़ कर गुरुदेव का ही सम्यक् आश्रय लेना चाहिये ।31।

गुरुवक्त्रे स्थिता विद्या गुरुभक्त्या च लभ्यते ।
त्रैलोक्ये स्फुटवक्तारो देवर्षिपितृमानवाः।।

विद्या गुरुदेव के मुख में रहती है और वह गुरुदेव की भक्ति से ही प्राप्त होती है यह बात तीनों लोकों में देव, ऋषि, पितृ और मानवों द्वारा स्पष्ट रूप से कही गई है ।32।

गुकारश्चान्धकारो हि रुकारस्तेज उच्यते ।
अज्ञानग्रासकं ब्रह्म गुरुरेव न संशयः।।

'गु' शब्द का अर्थ है अंधकार (अज्ञान) और 'रु' शब्द का अर्थ है प्रकाश (ज्ञान) अज्ञान को नष्ट करनवाल जो ब्रह्मरूप प्रकाश है वह गुरु है इसमें कोई संशय नहीं है ।33।

गुकारश्चान्धकारस्तु रुकारस्तन्निरोधकृत्।
अन्धकारविनाशित्वात् गुरुरित्यभिधीयते ।।

'गु' कार अंधकार है और उसको दूर करनेवाल 'रु' कार है अज्ञानरूपी अन्धकार को नष्ट करने के कारण ही गुरु कहलाते हैं। 34।

गुकारश्च गुणातीतो रूपातीतो रुकारकः ।
गुणरूपविहीनत्वात् गुरुरित्यभिधीयते ।।

'गु' कार से गुणातीत कहा जाता है,'रु' कार से रूपातीत कहा जाता है । गुण और रूप से परे होने के कारण ही गुरु कहलाते हैं । 35।

गुकारः प्रथमो वर्णो मायादि गुणभासकः ।
रुकारोऽस्ति परं ब्रह्म मायाभ्रान्तिविमोचकम् ।।

गुरु शब्द का प्रथम अक्षर गु माया आदि गुणों का प्रकाशक है और दूसरा अक्षर रु कार माया की भ्रान्तिसे मुक्ति देनेवाला परब्रह्म है। 36।

सर्वश्रुतिशिरोरत्नविराजितपदांबुजम्।
वेदान्तार्थप्रवक्तारं तस्मात्संपूजयेद् गुरुम् ।।

गुरु सर्व श्रुतिरूप श्रेष्ठ रत्नों से सुशोभित चरणकमलवाले हैं और वेदान्त के अर्थ के प्रवक्ता हैं इसलिये श्रीगुरुदेव की पूजा करनी चाहिये। 37।

यस्यस्मरणमात्रेण ज्ञानमुत्पद्यते स्वयम् ।
सः एव सर्वसम्पत्तिः तस्मात्संपूजयेद् गुरुम्।।

जिनके स्मरण मात्र से ज्ञान अपने आप प्रकट होने लगता है और वे ही सर्व (शमदमदि) सम्पदारूप हैं अतःश्री गुरुदेव की पूजा करनी चाहिये। 38।

संसारवृक्षमारूढ़ाः पतन्ति नरकार्णवे ।
यस्तानुद्धरते सर्वान् तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

संसाररूपी वृक्ष पर चढ़े हुए लोग नरकरूपी सागर में गिरते हैं उन सबका उद्धार करनेवाले श्री गुरुदेव को नमस्कार हो। 39।

एक एव परो बन्धुर्विषमे समुपस्थिते ।
गुरुः सकलधर्मात्मा तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।

जब विकट परिस्थिति उपस्थित होती है तब वे ही एकमात्र परम बांधव हैं औरसब धर्मों के आत्मस्वरूप हैं ऐसे श्रीगुरुदेव को नमस्कार हो ।40।

भवारण्यप्रविष्टस्य दिङ्मोहभ्रान्तचेतसः ।
येन सन्दर्शितः पन्थाः तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।

संसार रूपी अरण्य में प्रवेश करने के बाद दिग्मूढ़ की स्थिति में (जब कोई मार्ग नहीं दिखाई देता है), चित्त भ्रमित हो जाता है, उस समय जिसने मार्ग दिखाया उन श्री गुरुदेव को नमस्कार हो ।41।

तापत्रयाग्नितप्तानां अशान्तप्राणीनां भुवि ।
गुरुरेव परा गंगा तस्मै श्रीगुरुवे नमः ।।

इस पृथ्वी पर त्रिविध ताप (आधि–व्याधि–उपाधि) रूपी अग्नी से जलने के कारण अशांत हुए प्राणियों के लिए गुरुदेव ही एकमात्र उत्तम गंगाजी हैं । ऐसे श्री गुरुदेवजी को नमस्कार हो ।42।

सप्तसागरपर्यन्तं तीर्थस्नानफलं तु यत्।
गुरुपादपयोबिन्दोः सहस्रांशेन तत्फलम्।।

सात समुद्र पर्यन्त के सर्व तीर्थों में स्नान करने से जितना फल मिलता है वहफल श्रीगुरुदेव के चरणामृत के एक बिन्दु के फल का हजारवाँ हिस्सा है।43।

शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन।
लब्ध्वा कुलगुरुं सम्यग्गुरुमेव समाश्रयेत।।
गुकारं च गुणातीतं रुकारं रुपवर्जितम्।
गुणातीतमरूपं च यो दद्यात् स गुरुः स्मृतः।।

यदि शिवजी नारज हो जायें तो गुरुदेव बचानेवाले हैं, किन्तु यदि गुरुदेव नाराज हो जायें तोबचाने वाला कोई नहीं अतः गुरुदेव को संप्राप्त करके सदा उनकी शरण में रेहना चाहिए।

गुरु शब्द का गु अक्षर गुणातीत अर्थ का बोधक है और रु अक्षर रूपरहित स्थिति का बोधक है ये दोनों (गुणातीत और रूपातीत) स्थितियाँ जो देते हैं उनको गुरु कहते हैं।44–45।

अत्रिनेत्रः शिवः साक्षात् द्विबाहुश्च हरिः स्मृतः।
योऽचतुर्वदनो ब्रह्मा श्रीगुरुः कथितः प्रिये ।।
देवकिन्नरगन्धर्वाः पितृयक्षास्तु तुम्बुरुः।
मुनयोऽपि न जानन्ति गुरुशुश्रूषणे विधिम्।।

हे प्रिये ! गुरु ही त्रिनेत्ररहित (दो नेत्र वाले) साक्षात् शिव हैं, दो हाथ वाले भगवान विष्णु हैं और एक मुख वाले ब्रह्माजी हैं।देव, किन्नर, गंधर्व, पितृ, यक्ष, तुम्बुरु और मुनि लोग भी गुरुसेवा की विधि नहीं जानते। ।46–47।

तार्किकाश्छान्दसाश्चैव देवज्ञाः कर्मठः प्रिये ।
लौकिकास्ते न जानन्ति गुरुतत्वं निराकुलम्।।

हे प्रिये ! तार्किक, वैदिक, ज्योतिषि, कर्मकांडी तथा लोकिकजन निर्मल गुरुतत्व को नहीं जानते । 48।

महाहंकारगर्वेण तपोविद्याबलेन च ।
भ्रमन्त्येतस्मिन् संसारे घटीयन्त्रं तथा पुनः ॥

तप और विद्या के बल के कारण से और महा अहंकार के कारण से जीव इस संसार में रहट की तरह बार–बार भटकता है ।।49।।

यज्ञिनोऽपि न मुक्ताः स्युः न मुक्ताः योगिनस्तथा।
तापसा अपि नो मुक्त गुरुतत्वात्पराङ्मुखाः।।

यदि गुरुतत्व से प्राङ्मुख हो जाये तो याज्ञिक मुक्ति नहीं पा सकते, योगी मुक्त नहीं हो सकते और तपस्वी भी मुक्त नहीं हो सकते । 50।

न मुक्तास्तु गन्धर्वः पितृयक्षास्तु चारणाः।
ऋष्यः सिद्धदेवाद्याः गुरुसेवापराङ्मुखाः ।।

गुरुसेवा से विमुख गंधर्व पितृ, यक्ष, चारण,ऋषि,सिद्ध और देवता आदि भी मुक्त नहीं होंगे । 51 ।

इति श्री स्कान्दोत्तरखण्डे उमामहेश्वरसंवादे श्री गुरुगीतायां प्रथमोऽध्यायः

''नोट– मात्र यही एक पाठ करना हो तो इति कहें अन्यथा इति न कहें और लास्ट का अध्याय शब्द भी न कहें।'' अर्थात् श्लोक 51 से भी अभी ही पढना हो तो यह कहें–

श्री स्कान्दोत्तरखण्डे उमामहेश्वरसंवादे श्री गुरुगीतायां प्रथमः ऊँ तत् सत्

।।श्रीगुरुगीता अथ द्वितीयोऽध्यायः ।।

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्ति
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्वमस्यादिलक्ष्यम्।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतम्
भावतीतं त्रिगुणरहितं सदगुरुं तं नमामि ।।52

जो ब्रह्मानंदस्वरूप हैं, परम सुख देनेवाले हैं जो केवल ज्ञानस्वरूप हैं, (सुख, दुःख, मान–अपमान, शीत–उष्ण ,जन्म–मृत्यु आदि) द्वन्द्वों से रहित हैं, आकाश के समान सूक्ष्म और सर्वव्यापक हैं, तत्त्वमसि ,सोऽहं, शिवोऽहम् , अयमात्मा ब्रह्म'' आदि महावाक्यों के लक्ष्यार्थ हैं, एक हैं, नित्य हैं, मलरहित हैं, अचल हैं, सर्व बुद्धियों के साक्षी हैं, भावना से परे हैं, सत्व, रज और तम तीनों गुणों से रहित हैं ऐसे श्री सदगुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूँ ।

गुरुपदिष्टमार्गेण मनः शुद्धिं तु कारयेत्
अनित्यं खण्डयेत्सर्वं यत्किंचिदात्मगोचरम्।। 53

श्री गुरुदेव के द्वारा उपदिष्ट मार्ग से मन की शुद्धि करनी चाहिए जो कुछ भी अनित्य वस्तु अपनी इन्द्रियों की विषय हो जायें उनका खण्डन (निराकरण) करना चाहिए।।

किमत्रं बहुनोक्तेन शास्त्रकोटिशतैरपि।
दुर्लभा चित्तविश्रान्तिः विना गुरुकृपां पराम्।।54

यहाँ ज्यादा कहने से क्या लाभ ? श्री गुरुदेव की परम कृपा के बिना करोड़ों शास्त्रों से भी चित्त की विश्रांति दुर्लभ है।

करुणाखड्गपातेन छित्त्वा पाशाष्टकं शिशोः ।
सम्यगानन्दजनकः सदगुरु सोऽभिधीयते ।।55

एवं श्रुत्वा महादेवि गुरुनिन्दा करोति यः ।
स याति नरकान् घोरान् यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।।56

करुणारूपी तलवार के प्रहार से शिष्य के आठों पाशों को काटकर निर्मल आनंद देनेवाले को सदगुरु कहते हैं ऐसा सुनने पर भी जो मनुष्य गुरुनिन्दा करता है, वह जब तक सूर्यचन्द्र का अस्तित्व रहता है तब तक घोर नरक में रहता है।

यावत्कल्पान्तको देहस्तावद्देवि गुरुं स्मरेत्।
गुरुलोपो न कर्त्तव्यः स्वच्छन्दो यदि वा भवेत्।।57

हे देवी ! देह कल्प के अन्त तक रहे तब तक श्री गुरुदेव का स्मरण करना चाहिए और आत्मज्ञानी होने के बाद भी (स्वच्छन्द अर्थात स्वरूप का छन्द मिलने पर भी) शिष्य को गुरुदेव कीशरण नहीं छोड़नी चाहिए ।

हुंकारेण न वक्तव्यं प्राज्ञशिष्यै कदाचन।
गुरुराग्रे न वक्तव्यमसत्यं तु कदाचन ।। 58

श्री गुरुदेव के समक्ष प्रज्ञावान् शिष्य को कभी हुँकार शब्द से (मैने ऐसे किया वैसा किया) नहीं बोलना चाहिए और कभी असत्य नहीं बोलना चाहिए ।

गुरुं त्वंकृत्य हुंकृत्य गुरुसान्निध्यभाषणः ।
अरण्ये निर्जले देशे संभवेद् ब्रह्मराक्षसः ।। 59

गुरुदेव के समक्ष जो हुँकार शब्द से बोलता है अथवा गुरुदेव को तू कहकर जो बोलता है वह निर्जन मरुभूमि में ब्रह्मराक्षस होता है।

अद्वैतं भावयेन्नित्यं सर्वावस्थासु सर्वदा ।
कदाचिदपि नो कुर्यादद्वैतं गुरुसन्निधौ ।। 60

सदा और सर्व अवस्थाओं में अद्वैत की भावना करनी चाहिए परन्तु गुरुदेव के साथ अद्वैत की भावना कदापिनहीं करनी चाहिए।

दृश्यविस्मृतिपर्यन्तं कुर्याद् गुरुपदार्चनम्।
तादृशस्यैव कैवल्यं न च तद्व्यतिरेकिणः ।। 61

जब तक दृश्य प्रपंच की विस्मृति न हो जाय तब तक गुरुदेव के पावन चरणारविन्द की पूजाअर्चना करनी चाहिए ऐसा करनेवाले को ही कैवल्यपद(अपरोक्ष ज्ञान ही परम पद है यही परामुक्ति है। जो परमगुरु के द्वारा प्राप्त महावाक्यों के चिंतन से ही संभव है न कि अन्य कार्यो से उसी पद) की प्रप्ति होती है, इसके विपरीत करनेवाले को नहीं होती ।

अपि संपूर्णतत्त्वज्ञो गुरुत्यागी भवेद्यदा।
भवेत्येव हि तस्यान्तकाले विक्षेपमुत्कटम्।। 62

संपूर्ण तत्त्वज्ञ भी यदि परमगुरु का त्याग कर दे तो मृत्यु के समय उसे महान् विक्षेप अवश्य ही होता है ''पर निषिद्य गुरु तो इसी गीता के अग्रवर्णित वचनों के अनुसार तत्काल त्यागने के योग्य है। अतः यहां परम गुरु की सतत् सेवा की ही आज्ञा दी गई है न कि पाखण्डी और पापरत की, विस्तार हेतु श्लोक 102 से 107 देखें ''

गुरौ सति स्वयं देवी परेषां तु कदाचन ।
उपदेशं न वै कुर्यात् तदा चेद्राक्षसो भवेत्।। 63

हे देवी ! गुरु के रहने पर अपने आप कभी किसी को उपदेश नहीं देना चाहिए इस प्रकार उपदेश देनेवाला ब्रह्मराक्षस होता है।

न गुरुराश्रमे कुर्यात् दुष्पानं परिसर्पणम् ।
दीक्षा व्याख्या प्रभुत्वादि गुरोराज्ञां न कारयेत्।। 64

गुरु के आश्रम में नशा नहीं करना चाहिए, टहलना नहीं चाहिए दीक्षा देना, व्याख्यान करना,प्रभुत्व दिखाना और गुरु को आज्ञा करना, ये सब निषिद्ध हैं।

नोपाश्रमं च पर्यंकं न च पादप्रसारणम्
नांगभोगादिकं कुर्यान्न लीलामपरामपि ।।65

गुरु के आश्रम में अपना छप्पर और पलंग नहीं बनाना चाहिए, (गुरुदेव के सम्मुख) पैर नहीं पसारना, शरीर के भोग नहीं भोगने चाहिए और अन्य लीलाएँ नहीं करनी चाहिए।

गुरुणां सदसद्वापि यदुक्तं तन्न लंघयेत्।
कुर्वन्नाज्ञां दिवारात्रौ दासवन्निवसेद् गुरौ।। 66

गुरुओं की बात सच्ची हो या झूठी, परन्तु उसका कभी उल्लंघन नहीं करना चाहिए रात और दिन गुरुदेव की आज्ञा का पालन करते हुए उनके सान्निध्य में दास बन कर रहना चाहिए।

अदत्तं न गुरोर्द्रव्यमुपभुंजीत कर्हिचित्।
दत्तं च रंकवद् ग्राह्यं प्राणोप्येतेन लभ्यते।। 67

जो–दृव्य गुरुदेव ने नहीं दिया हो उसका उपयोग कभी नहीं करना चाहिए गुरुदेव के दिये हुए द्रव्य को भी गरीब की तरह ग्रहण करना चाहिए उससे प्राण भी प्राप्त हो सकते हैं ।

पादुकासन शय्यादि गुरुणा यदभिष्टितम्।
नमस्कुर्वीत तत्सर्वं पादाभ्यां न स्पृशेत् क्वचित्।। 68

पादुका, आसन, बिस्तर आदि जो कुछ भी गुरुदेव के उपयोग में आते हों उन सर्व को नमस्कार करने चाहिए और उनको पैर से कभी नहीं छूना चाहिए ।

गच्छतः पृष्ठतो गच्छेत् गुरुच्छायां न लंघयेत् ।
नोल्बणं धारयेद्वेषं नालंकारास्ततोल्बणान्।।69

चलते हुए गुरुदेव के पीछे चलना चाहिए, उनकी परछाईं का भी उल्लंघन नहीं करना चाहिए । गुरुदेव के समक्ष कीमती वेशभूषा, आभूषण आदि धारण नहीं करने चाहिए ।

गुरुनिन्दाकरं दृष्ट्वा धावयेदथ वासयेत्।
स्थानं वा तत्परित्याज्यं जिह्वाच्छेदाक्षमो यदि ।। 70

गुरुदेव की निन्दा करनेवाले को देखकर यदि उसकी जिह्वा काट डालने में समर्थ न हो तो उसे अपने स्थान से भगा देना चाहिए यदि वह ठहरे तो स्वयं उस स्थान का परित्याग करना चाहिए ।

मुनिभिः पन्नगैर्वापि सुरैवा शापितो यदि।
कालमृत्युभयाद्वापि गुरुः संत्राति पार्वति ।। 71

हे पर्वती ! मुनियों पन्नगों और देवताओं के शाप से तथा यथा काल आये हुए मृत्यु के भय से भी शिष्य को गुरुदेव बचा सकते हैं।

विजानन्ति महावाक्यं गुरोश्चरणसेवया।
ते वै संन्यासिनः प्रोक्ता इतरे वेषधारिणः।। 72

गुरुदेव के श्रीचरणों की सेवा करके महावाक्य के अर्थ को जो समझते हैं वे ही सच्चे संन्यासी हैं, अन्य तो मात्र वेशधारी हैं।

नित्यं ब्रह्म निराकारं निर्गुणं बोधयेत् परम्।
भासयन् ब्रह्मभावं च दीपो दीपान्तरं यथा ।। 73

गुरु वे हैं जो नित्य, निर्गुण, निराकार, परम ब्रह्म का बोध देते हुए, जैसे एक दीपक दूसरे दीपक को प्रज्ज्वलित करता है वैसे, शिष्य में ब्रह्मभाव को प्रकटाते हैं।

गुरुप्रसादतः स्वात्मन्यात्मारामनिरिक्षणात्।
समता मुक्तिमर्गेण स्वात्मज्ञानं प्रवर्तते।। 74

श्री गुरुदेव की कृपा से अपने भीतर ही आत्मानंद प्राप्त करके समता और मुक्ति के मार्ग द्वार शिष्य आत्मज्ञान को उपलब्ध होता है।

स्फटिके स्फाटिकं रूपं दर्पणे दर्पणो यथा।
तथात्मनि चिदाकारमानन्दं सोऽहमित्युत ।। 75

जैसे स्फटिक मणि में स्फटिक मणि तथा दर्पण में दर्पण दिख सकता है उसी प्रकार आत्मा में जो चित् और आनंदमय दिखाई देता है वह मैं हूँ।

अंगुष्ठमात्रं पुरुषं ध्यायेच्च चिन्मयं हृदि ।
तत्र स्फुरति यो भावः श्रुणु तत्कथयामि ते।। 76

हृदय में अंगुष्ठ मात्र परिणाम वाले चैतन्य पुरुष का ध्यान करना चाहिए वहाँ जो भाव स्फुरित होता है वहमैं तुम्हें कहता हूँ, सुनो ।

अजोऽहममरोऽहं च ह्यनादिनिधनोह्यहम् ।
अविकारश्चिदानन्दो ह्यणियान् महतो महान्।। 77

मैं अजन्मा हूँ, मैं अमर हूँ, मेरा आदि नहीं है, मेरी मृत्यु नहीं है । मैं निर्विकार हूँ, मैं चिदानन्द हूँ, मैं अणु से भी छोटा हूँ और महान् से भी महान् हूँ।

अपूर्वमपरं नित्यं स्वयं ज्योतिर्निरामयम्।
विरजं परमाकाशं ध्रुवमानन्दमव्ययम्।। 78
अगोचरं तथाऽगम्यं नामरूपविवर्जितम्।
निःशब्दं तु विजानीयात्स्वाभावाद् ब्रह्म पार्वति ।। 79

हे पर्वती ! ब्रह्म को स्वभाव से ही अपूर्व (जिससे पूर्व कोई नहीं ऐसा), अद्वितीय, नित्य, ज्योतिस्वरूप, निरोग, निर्मल, परम आकाशस्वरूप, अचल, आनन्दस्वरूप, अविनाशी, अगम्य, अगोचर, नाम–रूप से रहित तथा निःशब्द जानना चाहिए।

यथा गन्धस्वभावत्वं कर्पूरकुसुमादिषु ।
शीतोष्णस्वभावत्वं तथा ब्रह्मणि शाश्वतम्।। 80

जिस प्रकार कपूर, फूल इत्यादि में गन्धत्व,(अग्नि में) उष्णता और (जल में) शीतलता स्वभाव से ही होते हैं उसी प्रकार ब्रह्म में शश्वतता भी स्वभावसिद्ध है।

यथा निजस्वभावेन कुंडलकटकादयः।
सुवर्णत्वेन तिष्ठन्ति तथाऽहं ब्रह्म शाश्वतम्।। 81

जिस प्रकार कटक, कुण्डल आदि आभूषण स्वभाव से ही सुवर्ण हैं उसी प्रकार मैं स्वभाव से ही शाश्वत ब्रह्म हूँ।

स्वयं तथाविधो भूत्वा स्थातव्यं यत्रकुत्रचित्।
कीटो भृंग इव ध्यानात् यथा भवति तादृशः।। 82

स्वयं वैसा होकर किसी–न–किसी स्थान में रहना जैसे कीडा भ्रमर का चिन्तन करते–करते भ्रमर हो जाता है वैसे ही जीव ब्रह्म का ध्यान करते–करते ब्रह्मस्वरूप हो जाता है।

गुरोर्ध्यानेनैव नित्यं देही ब्रह्ममयो भवेत्।
स्थितश्च यत्रकुत्रापि मुक्तोऽसौ नात्र संशयः।। 83

सदा गुरुदेव का ध्यान करने से जीव ब्रह्ममय हो जाता है वह किसी भी स्थान में रहता हो फिर भी मुक्त ही है। इसमें कोई संशय नहीं है ।

ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं यशः श्री समुदाहृतम्।
षड्गुणैश्वर्ययुक्तो हि भगवान् श्री गुरुः प्रिये।। 84

हे प्रिये ! भगवत्स्वरूप श्री गुरुदेव–

1. ज्ञान,
2. वैराग्य,
3. ऐश्वर्य,
4. यश,
5. लक्ष्मी और
6. मधुरवाणी, ये छः

गुणरूप ऐश्वर्य से संपन्न होते हैं ।

गुरुः शिवो गुरुर्देवो गुरुर्बन्धुः शरीरिणाम्।
गुरुरात्मा गुरुर्जीवो गुरोरन्यन्न विद्यते।। 85

मनुष्य के लिए गुरु ही–

1. शिव हैं,
2. गुरु ही देव हैं,
3. गुरु ही बांधव हैं
4. गुरु ही आत्मा हैं और
5. गुरु ही जीव हैं
6. (सचमुच) गुरु के सिवा अन्य कुछ भी नहीं है ।

एकाकी निस्पृहः शान्तः चिंतासूयादिवर्जितः ।
बाल्यभावेन यो भाति ब्रह्मज्ञानी स उच्यते।। 86

अकेला, कामनारहित, शांत, चिन्तारहित, ईर्ष्यारहित और बालक की तरह जो शोभता है वह ब्रह्मज्ञानी कहलाता है ।

अर्थात्

1. अकेला,
2. कामनारहित,

3. शांत,
4. चिन्तारहित,
5. ईर्ष्यारहित और
6. बालक की तरह जो शोभता है वह ब्रह्मज्ञानी कहलाता है अन्य को ब्रह्मज्ञानी न समझें।

न सुखं वेदशास्त्रेषु न सुखं मंत्रयंत्रके ।
गुरोः प्रसादादन्यत्र सुखं नास्ति महीतले ।। 87

वेदों और शास्त्रों में सुख नहीं है, मंत्र और यंत्र में सुख नहीं है इस पृथ्वी पर गुरुदेव के कृपाप्रसाद के सिवा अन्यत्र कहीं भी सुख नहीं है ।

चावार्कवैष्णवमते सुखं प्रभाकरे न हि ।
गुरोः पादान्तिके यद्वत्सुखं वेदान्तसम्मतम्।। 88

गुरुदेव के श्री चरणों में जो वेदान्तनिर्दिष्ट सुख है वह सुख न चावार्क मत में, न वैष्णव मत में और न प्रभाकर (सांखय) मत में है।

न तत्सुखं सुरेन्द्रस्य न सुखं चक्रवर्तिनाम्
यत्सुखं वीतरागस्य मुनेरेकान्तवासिनः।। 89

एकान्तवासी वीतराग मुनि को जो सुख मिलता है वह सुख न इन्द्र को और न चक्रवर्ती राजाओं को मिलता है ।।

नित्यं ब्रह्मरसं पीत्वा तृप्तो यः परमात्मनि ।
इन्द्रं च मन्यते रंकं नृपाणां तत्र का कथा ।। 90

हमेशा ब्रह्मरस का पान करके जो परमात्मा में तृप्त हो गया है वह (मुनि) इन्द्र को भी गरीब मानता है तो राजाओं की तो बात ही क्या ?

यतः परमकैवल्यं गुरुमार्गेण वै भवेत्।
गुरुभक्तिरतिः कार्या सर्वदा मोक्षकांक्षिभिः।।

मोक्ष की आकांक्षा करनेवालों को गुरुभक्ति खूब करनी चाहिए, क्योंकि गुरुदेव के द्वारा ही परम मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

एक एवाद्वितीयोऽहं गुरुवाक्येन निश्चितः।
एवमभ्यस्यता नित्यं न सेव्यं वै वनान्तरम्।।92

अभ्यासान्निमिषणैव समाधिमधिगच्छति ।
आजन्मजनितं पापं तत्क्षणादेव नश्यति।। 93

गुरुदेव के वाक्य की सहायता से जिसने ऐसा निश्चय कर लिया है कि मैं एक और अद्वितीय हूँ (ब्रह्म केवल एक ही है और वह मैं ही हूँ वही एकमात्र त्रिदेव रूप में लीलारत है, वही सब कुछ है) और उसी अभ्यास में जो रत है उसके लिए अन्य वनवास का सेवन आवश्यक नहीं है, क्योंकि अभ्यास से ही एक क्षण में समाधि लग जाती है और उसी क्षण इस जन्म तक के सब पाप नष्ट हो जाते हैं।

गुरुर्विष्णुः सत्त्वमयो राजसश्चतुराननः ।
तामसो रूद्ररूपेण सृजत्यवति हन्ति च ।। 94

गुरुदेव ही सत्वगुणी होकर विष्णुरूप से जगत का पालन करते हैं, रजोगुणी होकर ब्रह्मारूप से जगत का सर्जन करते हैं और तमोगुणी होकर शंकर रूप से जगत का संहार करते हैं।

तस्यावलोकनं प्राप्य सर्वसंगविवर्जितः।
एकाकी निःस्पृहः शान्तः स्थातव्यं तत्प्रसादतः।। 95

सर्वज्ञपदमित्याहुर्देही सर्वमयो भुवि ।
सदाऽनन्दः सदा शान्तो रमते यत्र कुत्रचित्।। 96

उनका (गुरुदेव का) दर्शन पाकर, उनके कृपाप्रसाद से सर्व प्रकार की आसक्ति छोड़कर एकाकी, निःस्पृह और शान्त होकर रहना चाहिए। जो जीव इस जगत में सर्वमय, आनंदमय और शान्त होकरसर्वत्र विचरता है उस जीव को सर्वज्ञ कहते हैं।

यत्रैव तिष्ठते सोऽपि स देशः पुण्यभाजनः ।
मुक्तस्य लक्षणं देवी तवाग्रे कथितं मया।। 97

ऐसा पुरुष जहाँ रहता है वह स्थान पुण्यतीर्थ है हे देवी ! तुम्हारे सामने मैंने मुक्त पुरूष का लक्षण कहा।

यद्यप्यधीता निगमाः षडंगा आगमाः प्रिये ।
आध्यामादिनि शास्त्राणि ज्ञानं नास्ति गुरुं विना ।। 98

हे प्रिये ! मनुष्य–

1. चाहे चारों वेद पढ़ ले,
2. वेद के छः अंग पढ़ ले,
3. आध्यात्मशास्त्र आदि अन्य सर्व शास्त्र पढ़ ले फिर भी गुरु के बिना ज्ञान नहीं मिलता।

शिवपूजारतो वापि विष्णुपूजारतोऽथवा।
गुरुतत्वविहीनश्चेत्तत्सर्वं व्यर्थमेव हि ।।99

शिवजी की पूजा में रत हो या विष्णु की पूजा में रत हो, परन्तु गुरुतत्व के ज्ञान से रहित होतो वह सब व्यर्थ है

सर्वं स्यात्सफलं कर्म गुरुदीक्षाप्रभावतः ।
गुरुलाभात्सर्वलाभो गुरुहीनस्तु बालिशः ।।100

गुरुदेव की दीक्षा के प्रभाव से सब कर्म सफल होते हैं । गुरुदेव की संप्राप्ति रूपी परम लाभ से अन्य सर्वलाभ मिलते हैं जिसका गुरु नहीं वह मूर्ख है।।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन, सर्वसंगविवर्जितः ।
विहाय शास्त्रजालानि, गुरुमेव समाश्रयेत् ।।101

इसलिए सब प्रकार के प्रयत्न से अनासक्त होकर, शास्त्रों का मायाजाल छोड़कर गुरुदेव की ही शरण लेनी चाहिए।

ज्ञानहीनो गुरुस्त्याज्यो, मिथ्यावादी विडंबकः।
स्वविश्रान्ति न जानाति, परशान्तिं करोति किम् ।।102

ज्ञानरहित, मिथ्या बोलनेवाले और दिखावट करनेवाले गुरु का त्याग कर देना चाहिए, क्योंकि जो अपनी ही शांति पाना नहीं जानता वह दूसरों को क्या शांति दे सकेगा।

शिलायाः किं परं ज्ञानं, शिलासंघप्रतारणे।
स्वयं तर्तुं न जानाति, परं निस्तारयेत्कथम्।।103

पत्थरों के समूह को तैराने का ज्ञान पत्थर में कहाँ से हो सकता है ? जो खुद तैरना नहीं जानता वह दूसरों को क्या तैरायेगा।

न वन्दनीयास्ते कष्टं, दर्शनाद् भ्रान्तिकारकाः।
वर्जयेत्तान् गुरुन् दूरे, धीरानेव समाश्रयेत्।।104

जो गुरु अपने दर्शन से शिष्य को भ्रान्ति में डालता है ऐसे गुरु को प्रणाम नहीं करना चाहिए इतना ही नहीं दूर से ही उसका त्याग करना चाहिए, ऐसी स्थिति में धैर्यवान् गुरु का ही आश्रय लेना चाहिए ।।

पाखण्डिनः पापरताः, नास्तिका भेदबुद्धयः।
स्त्रीलम्पटा दुराचाराः, कृतघ्ना बकवृतयः ।।
कर्मभ्रष्टाः क्षमानष्टाः, निन्द्यतर्कैश्च वादिनः।
कामिनः क्रोधिनश्चैव, हिंस्राश्चंडाः शठास्तथा।।
ज्ञानलुप्ता न कर्तव्या, महापापास्तथा प्रिये ।
एभ्यो भिन्नो गुरुः सेव्यः एकभक्त्या विचार्य च।।105–107

1. पाखण्डि
2. पापरत
3. नास्तिक
4. भेद बुद्धि उत्पन्न करनेवाले,
5. स्त्रीलम्पट,

6. दुराचारी,
7. नमकहराम,
8. बगुले की तरह ठगनेवाले,
9. क्षमा रहित
10. निन्दनीय तर्कों से वितंडावाद करनेवाले,
11. कामी
12. क्रोधी,
13. हिंसक,
14. उग्र,
15. शठ
16. अज्ञानी और
17. महापापी

ऐसे पुरुष को गुरु नहीं करना चाहिए ऐसा विचार करके ऊपर दिये लक्षणों से भिन्न लक्षणोंवाले गुरु की एकनिष्ठ भक्ति से सेवा करनी चाहिए।।

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं, धर्मसारं मयोदितम् ।
गुरुगीता समं स्तोत्रं नास्ति तत्त्वं गुरोः परम्।।108

गुरुगीता के समान अन्य कोई स्तोत्र नहीं है, गुरु के समान अन्य कोई तत्त्व नहीं है । समग्र धर्म का यह सार मैंने कहा है, यह सत्य है, सत्य है और बार– बार सत्य है।

इति श्री स्कान्दोत्तरखण्डे उमामहेश्वरसंवादे श्री गुरुगीतायां ओम् तत्सत्

अतः जो भी शिष्य अपने गुरुदेव के समीप प्रत्यक्ष न जा पाये वह इसी स्तोत्र के पाठ मात्र से संपूर्ण सान्निध्यफल प्राप्त कर सकता है। तथा हनुमान जी या श्रीशंकरजी से मंत्रदीक्षा या शाम्भवीदीक्षा या दर्शन के लिये भी इसके 1000 पाठ कर सकता है। इस जगत में श्रीगुरुगीता से बडा कोई भी स्तोत्र नहीं।

एक भक्त की जिज्ञासा –

मुझे भक्ति और ज्ञान दोनों चाहिए?

उत्तर–

भक्तियोग और ज्ञानयोग दो अलग अलग हैं। साथ में कभी नहीं मिलते।

प्रभु के दर्शन की उत्कंठा वाले भक्ति–योग पर आरुढ हैं और अभिन्नभाव वाले ज्ञानयोग पर स्थित।

भक्तियोग चाहिए तो अपने आपको दास समझने वाले भक्तों का संग करो।

और पराविज्ञान (अपरोक्ष ज्ञान) चाहिए तो ब्रह्मनिष्ठों का संग करो।

इस विश्व में 99.999 प्रतिशत भक्त मिल जायेंगे पर ज्ञानयोगी(अभिन्न भाव में रमण करने वाले एकत्व युक्त जो तत्त्वमसि और अयमात्माब्रह्म जैसे महावाक्यों से अपरोक्ष ज्ञाननिष्ठ हो चुके और तद्भावित ब्रह्मनिष्ठ संज्ञा को पा चुके।

हरि भक्ति चाहिए तो भागवत, गर्ग संहिता या ब्रह्म वैवर्त पुराण, विष्णु पुराण आदि वैष्णव शास्त्र पढ़े। और शैव भक्त (शिव जी के लिए अनन्य भक्ति युक्त) होना है तो इस अक्षयरुद्र अंशभूतशिव की तरह शिव पुराण, स्कन्द पुराण, लिंग पुराण की कथाओं तथा हमारा ग्रंथ शिव चरित मानस, भैरव गीता का अवलोकन अनिवार्य है।

और यथार्थ पराविज्ञान प्राप्त करना हो (पर ब्रह्मनिष्ठ तद्भावित न दिखे, यह अति दुर्लभ हैं) तो शिव गीता, अवधूत उपनिषद, अवधूत गीता, विवेक चूडामणि,देवी गीता, रामगीता या हमारी पुस्तक मैं ब्रह्म हूँ का पठन–चिन्तन व अभ्यास आदि करो। इन गीताओं में यथार्थ संभाषण है ।

प्रश्न –

बिना पराविज्ञान के हर कार्तिक मास में मात्र तुलसियों से क्या मोक्ष मिल जायेगा?

बिना पराविज्ञान के हर कार्तिक मास में तुलसियों या हर सावन में बिल्वपत्र अर्पित करने पर मात्र तीन युगों तक वैकुंठ / कैलास मिलता है। और पर पुनः जन्म होता है।

– ब्रह्म वैवर्त और देवीभागवत महापुराण

अतः ये फूल पत्ता दिया बाती को ही मुक्ति दाता मत मान लेना ये सहायक मात्र हैं पर इनका निष्काम सेवन करने पर जो अपरोक्ष ज्ञाननिष्ठ (तद्भावी गुरु) प्राप्त होता है या सीधे ही वेदान्त श्रवण या पठन से जो अपरोक्ष भाव मिलता है वही मुक्ति का कारक (सर्टिफिकेट) है।

एक ग्रुप से प्राप्त प्रश्न–

क्या इस विश्व में कोई गुरु ब्रह्मज्ञानी है या कोई नहीं बचा ?

उत्तर –

इस विश्व में सब हैं स्त्री भी और पुरुष भी। भूत प्रेत भी , मनुष्य भी, बलात्कारी भी पुण्यात्मा भी। पतिव्रता भी और कुलटा भी। भक्ति–योग के भक्त भी और ज्ञानयोग की चरम वाले ब्रह्मज्ञानी भी। अर्थात अपरोक्ष ज्ञाननिष्ठ अभिन्नभावी ब्रह्मनिष्ठ भी हैं ।

यहाँ जीवभावी द्वैतात्मक भी जो अपने आपको अंश या अंशभूत मानते हैं या परिपूर्ण होते हुये भी अंशभूत नाम रखकर लीला करते हुए दिखायी देते हैं। वे अपरोक्ष ज्ञाननिष्ठ भी जो महावाक्यों को यथार्थ आत्मसात करके मैं ब्रह्म हूँ के भाव और भावातीत भी से युक्त हैं।

सब कुछ है यहाँ। जब तक महा पुण्यात्मा यहाँ रहेंगे तब तक उनके घर महावाक्यों के लक्ष्यार्थ व कृपा से अपरोक्ष ज्ञाननिष्ठ भी लोककल्याण के लिए देह धारण करते रहेंगे।

प्रश्न– व्रत, पूजा,जप और उपवास आदि का संक्षिप्त फल बताएं?

उत्तर–

1. जो पुरुष शुक्ल कृष्ण पक्षकी एकादशीका व्रत करता है, उसे दीर्घकालिक समय तक वैकुण्ठ रहनेकी सुविधा प्राप्त होती है। फिर भारत वर्षमें आकर वह भगवान् श्रीकृष्णका अनन्य उपासक होता है।

2. क्रमशः भगवान् श्रीहरिके प्रति उसकी भक्ति सुदृढ़ होती जाती है। तब जाकर शरीर त्यागनेके बाद पुनः गोलोक में जाकर वह भगवान् श्रीकृष्णका सारूप्य प्राप्त करके कभी भी संसार में नहीं आता।

3. जो सकामी पुरुष भाद्रपद मासकी शुक्ल द्वादशी तिथिके दिन इन्द्रकी पूजा करता है, वह निश्चित ही परम सम्मानित होता ।

4. जो प्राणी भारतवर्ष में रहकर रविवार, संक्रान्ति अथवा शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथिको भगवान् सूर्यकी पूजा करके हविष्यान्न भोजन करता है, वह सूर्यलोकमें विराजमान होता है। फिर भारतवर्ष में जन्म पाकर आरोग्यवान् और धनाढ्य पुरुष होता है।

5. प्रत्येक मास में कम से कम एक बार चतुर्दशी को या अनिवार्य रूप से ज्येष्ठ महीनेकी कृष्ण चतुर्दशीके दिन जो व्यक्ति भगवती गायत्री (वेद माता) की पूजा करता है, वह ब्रह्मा के लोकमें प्रतिष्ठित होता है। फिर वह पृथ्वीपर आकर श्रीमान् एवं अतुल पराक्रमी पुरुष होता है। साथ ही वह चिरञ्जीवी, परम ज्ञानी और वैभवसम्पन्न होता है और सहज ही अपरोक्ष ज्ञान को पाकर अर्थात् कैवल्यमय ब्रह्मानंद पाकर ब्रह्म हो जाता है।

6. जो मानव माघ मासके शुक्ल पक्षकी पञ्चमी तिथिके दिन संयमपूर्वक उत्तम भक्तिके साथ षोडशोपचारसे भगवती दुर्गा की खुशी के लिए सरस्वतीकी अर्चना करता है, वह मणिद्वीपमें स्थान पाता है।

7. जो भारतवासी व्यक्ति जीवनभर भक्तिके साथ नित्यप्रति संध्यापूत ब्राह्मण या ब्रह्मनिष्ठ को गौ और सुवर्ण आदि प्रदान करता है, वह वैकुण्ठमें सुख भोगता है।

8. भारतवर्षमें जो प्राणी ब्राह्मणों या ब्रह्मनिष्ठ को सहज और सरल विनम्रतापूर्वक मिष्टान्न भोजन कराता है, वह विष्णुलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।

9. जो भारतवासी व्यक्ति भगवान् श्रीहरिके नामका स्वयं कीर्तन करता है अथवा दूसरेको कीर्तन या भजन सुमिरन करनेके लिये उत्साहित करता है, वह निष्पाप होकर एक युग (एक चतुर्युग) वैकुण्ठमें विराजमान होता है।पर सदा के लिए भवरोग से मुक्त होने के लिए स्वयं ही निस्पृह और अनन्य भक्त होना होगा।

10. यदि नारायण क्षेत्र (गंगा नदी के निकट) में नामोच्चारण किया जाय तो करोड़ गुना अधिक फल मिलता है।अतः अतिशीघ्र कल्याण के इच्छुक मनुष्य को यथासंभव सप्तगंगा के दर्शन करते हुए वहाँ प्रभु का भजन करते ही रहना चाहिए अतः भवरोग से मुक्ति को सरल न समझें आग की भट्टी में तपकर ही सदा परम लाभ होता है।

11. पवित्र दर्शन, धर्मपरायणता, संयम और त्याग के साथ सतत् ध्यान सुमिरन ही भवरोग का नाशक है। तथा................

12. जो पुरुष नारायणक्षेत्रमें भगवान श्रीहरिके नाम का 10000000 बार अर्थात् एक करोड़ जप करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर जीवन्मुक्त हो जाता है – यह ध्रुव सत्य है। वह पुनः जन्म न पाकर विष्णुलोकमें विराजमान होता है' । उसे भगवान्की सारूप्यता प्राप्त हो जाती है। वहाँसे वह फिर गिर नहीं सकता। उसके हृदयमें भक्ति सुदृढ़ हो जाती है। फिर वह भगवन्मय बन जाता है।

प्रश्न–श्री गुरु पादुका पंचकम् में क्या है?

उत्तर– अद्भुत खजाना

ॐ नमो गुरुभ्यो गुरुपादुकाभ्यो ।

नमः परेभ्यः परपादुकाभ्यः ।।
आचार्य सिद्धेश्वर पादुकाभ्यो ।
नमोस्तु लक्ष्मीपति पादुकाभ्यः।।
सभी गुरुओं को नमस्कार सभी गुरुओं की पादुकाओं को नमस्कार

श्री गुरुदेव जी के गुरुओं अथवा परगुरुओं एवं उनकी पादुकाओं को नमस्कार

आचार्यों एवं सिद्ध विद्याओं के स्वामी की पादुकाओं को नमस्कार बारंबार श्री गुरुपादुकाओं को नमस्कार।

कामादि सर्प व्रजगारुडाभ्यां ।
विवेक वैराग्य निधि प्रदाभ्यां ।।
बोध प्रदाभ्यां द्रुत मोक्षदाभ्यां ।
नमो नमः श्री गुरु पादुकाभ्यां ।।

यह अंतः करण के काम क्रोध आदि महा सर्पों के विष को उतारने वाली विष वैद्य है विवेक अर्थात अन्तरज्ञान एवं वैराग्य का भंडार देने वाली है द्य जो प्रत्यक्ष ज्ञान प्रदायिनी एवं शीघ्र मोक्ष प्रदान करने वाली हैं द्य श्री गुरुदेव की ऐसी पादुकाओं को नमस्कार है नमस्कार है।

अनंत संसार समुद्रतार,
नौकायिताभ्यां स्थिर भक्तिदाभ्यां।।
जाड्याब्धि संशोषण बाड़याभ्यां,
नमो नमः श्री गुरु पादुकाभ्यां ।।

अंतहीन संसार रूपी समुद्र को पार करने के लिये जो नौका बन गई है अविचल भक्ति देने वाली आलस्य प्रमाद और अज्ञान रूपी जड़ता के समुद्र को भस्म करने के लिये जो

वडवाग्नि समान है ऐसी श्री गुरुदेव की चरण की चरण पादुकाओं को नमस्कार हो, नमस्कार हो।

ऊँकार ह्रींकार रहस्ययुक्त।
श्रींकार गुढ़ार्थ महाविभुत्या।।
ऊँकार मर्म प्रतिपादिनीभ्यां।
नमो नमः श्री गुरु पादुकाभ्या।।

जो वाग बीज ऐं कार माया बीज ह्रीं कार के रहस्य से युक्त षोडशी बीज श्रींकार के गुढ़ अर्थ को महान ऐश्वर्य से ॐ कार के मर्मस्थान को प्रगट करनेवाली हैं द्य ऐसी श्री गुरुदेव की चरण पादुकाओं को नमस्कार हो, नमस्कार हो

होत्राग्नि, हौत्राग्नि हविष्य होतृ।
होमादि सर्वकृति भासमानम् ।।
यद ब्रह्म तद वो धवितारिणीभ्यां।।
नमो नमः श्री गुरु पादुकाभ्यां

होत्र और हौत्र ये दोनों प्रकार की अग्नियों में हवन

सामग्री होम करने वाला होता हैं और होम आदि रूप में भासित एक ही परब्रह्म तत्त्व का साक्षात अनुभव कराने वाले श्री गुरुदेव की चरण पादुकाओं को नमस्कार हो,

नमस्कार हो ।

ब्रह्मज्ञान ही यथार्थ में अपरोक्ष ज्ञान है जो आज की स्थिति में इतनी आसानी से प्राप्त नहीं होता । लेकिन आजकल के लोग ब्रह्म के बार बार सुमिरन को ही ब्रह्मज्ञान मान बैठे हैं। महा श्रवण या महा शास्त्रों से पहले परोक्ष रूप में ही ज्ञान प्राप्त होता है पर वह तत्काल अपरोक्ष रूप में घटित नहीं हो जाता। हालांकि लम्बे वाक्य जालों में यथार्थ वाक्य ही मानव नहीं पहचान पाता और सामान्य जानकारी या कथाओं को ही परोक्ष ज्ञान या महाज्ञान नाम दे देता है फिर वह किस ज्ञान को अपरोक्ष रूप में प्राप्त करेगा ?

हे राम ! ब्रह्म का बार बार सुमिरन तो वह व्यक्ति करता है जो द्वितीय तथा तृतीय ज्ञान भूमिका पर आरूढ़ हो। पर इन दोनों भूमिकाओं का ब्रह्मज्ञान से कोई संबंध नहीं।

यह सुमिरन उस ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति में सहायक अवश्य हो सकता है पर यह नाम जप या सुमिरन ब्रह्मज्ञान नहीं।

यदि जप की सततता ही ब्रह्मज्ञान होता तो अखंड ब्रह्मचर्य पूर्वक छः या 12 वर्ष तक या अधिक समय तक संतों या गुरुओं सेवा की आवश्यकता ही क्या रह जाती।

ब्रह्मज्ञानी ही समाधिस्थ हो सकता है अज्ञानी नहीं।

अतः जो लोग भोगी या दूसरे ज्ञान स्तर पर होकर भी अपनी समाधि के विषय में बड़ी बड़ी बात करते हैं वे बातें मात्र लोगों को मूर्ख बनाने के लिए हैं।

प्रश्न–

कैसे पता करे की गुरु के लिए उपयुक्त है या नहीं है जबकी वह महावाक्यों जैसे शिवोहम तत्वत्वम् असि अहम ब्रह्म अस्मि जैसे वाक्यों का भी प्रयोग करता हो अच्छाई की बात भी करता हो पर धीरे धीरे जब आपको पता चलता है की सिर्फ आपसे साधना दीक्षा के नाम पर धन लिया जा रहा है शास्त्र विरुद्ध भी कुछ बाते आपके जानने मे आ रही है और कुछ बाते अन्तःकरण स्वीकार नहीं कर पा रहा है तब क्या और कैसे निर्णय करें सबके कल्याण की भावना से जिज्ञासा

हमें तो लगता है अगर शिष्य संतुष्ट नहीं है उसका अन्तःकरण स्वीकार नहीं कर पा रहा है ऐसे गुरु को तो उसे अधिकार है आगे बढ़ने का आपका मार्गदर्शन भक्तो को सुलभ हो इस आशा से इसे प्रकट किया

उत्तर–

जब तक शोषण न हो तब तक विश्वास करना भी चाहिए।

शोषण की भनक मिलते ही उसे उसी क्षण हटाओ लाईन से।

उसके अज्ञान या शोषण देखकर भी अंधविश्वासी बनकर गुरु की सेवा न करें। ऐसा गुरुगीता का आदेश समझें। और गुरु को देखकर ही चित्त अशान्त होने लगे या भय लगने लगे तो भी गुरु का त्याग कर दो।

फिर भले ही वह संसार में लाखों चिलवाओं का गुरु ही क्यों न हो।

प्रश्न– उशना पुराण तथा आश्चर्य पुराण ये नाम पहली बार सुनें हैं ये क्या है हे अक्षयरुद्र!

उत्तर–

18 उप पुराणों में नवें उपपुराण का नाम उशना उपपुराण है इसे कुछ भक्त उशना पुराण भी कहते हैं।

तथा हे जिज्ञासु! महर्षि दुर्वासा जी ने अद्‌भुत और अद्वितीय वचन कहे थे उन वचनों का संग्रह ही आश्चर्य पुराण नाम से प्रसिद्ध है। यह पंचम उपपुराण है।

अब आप सभी उप पुराणों के नाम सुन लीजिए।

1. जो सनत्कुमार जी ने कहा था उसे सनत्कुमार उपपुराण

2. नरसिंह उपपुराण

3. कार्तिकेय जी के ज्ञान से ओतप्रोत स्कन्द उपपुराण इसे गुह उपपुराण या कार्तिकेय उपपुराण भी कहते हैं।

4. आश्चर्य उपपुराण

6.नारद जी के ही उपदेश जिसमें समाये हैं वह उपपुराण नारद उपपुराण है। (नारद महापुराण तो अन्य है जो 18 महापुराणों में शामिल है)

7.कपिल 8. मानव , 9.उशना 10. ब्रह्माण्ड

11.वरुण देव की वाणी वाला वरुण उपपुराण

12. देवी काली जी का अद्भुत माहात्म्य वाला कालिका उपपुराण

13. माहेश्वर उपपुराण

14.साम्ब,15. सौर पुराण,16. पराशर उपपुराण (यह वेदव्यास जी के पिता के अमोघ रहस्यो से युक्त है)

17. मारीच उपपुराण

18. भार्गव उपपुराण

अब आप 18 पुराणों के नाम भी सुन लीजिए जिनको हमने भ्ठड्च फाईल में भी लिखा है ये 18 के 18 ही विष्णु पुराण में वर्णित है यही भागवत, ये ही उमा संहिता ये ही कूर्म व नारद पुराण में भी सेम टू सेम है। मात्र दो पुराणों में थोड़ी–बहुत भिन्नता है (वायु , शिव , देवीभागवत और कृष्ण भागवत को लेकर , शिव पुराण की उमा संहिता कृष्ण भागवत के पक्ष में नहीं और अन्य पुराण की भागवत मात्र कृष्ण जी के पक्ष में है ; खैर ये खींचातानी तो सांप्रदायिक तनाव का कारण शुरु से ही रहे हैं। हम तो दोनों में ही ब्रह्मानंद खोज लेते हैं।

✍18 पुराणों के नाम सुन ही लीजिए ✍

उत्तर– इन 18 पुराणों के नाम

जो शिव पुराण की उमा संहिता के अध्याय 44 तथा श्रीमद्भागवत महापुराण के 12वें स्कन्ध के अध्याय 13 में एक समान है। सुनें –

बस थोड़ा–बहुत क्रम में अंतर है पर 19वाँ कोई भी पुराण नहीं पर हाँ उपपुराण अवश्य 18 हैं वे अलग हैं।

यह क्रम हम शिवपुराण से दे रहे हैं पर श्लोक संख्या श्रीमद्भागवत महापुराण के द्वादश स्कन्ध से ।

1.ब्रह्म (10,000 श्लोक)

2.पद्म(55,000 श्लोक)

3.विष्णु (23000 श्लोक)

4.शिव महापुराण (24000 श्लोक)

5.भागवत (18000 श्लोक)–

शिव पुराण उमा संहिता अध्याय 44 का श्लोक 129 यह घोषित करता है कि भागवत श्रीमद्देवीभागवत नाम से ही इस लोक में सुप्रसिद्ध है।

भगवत्याश्च दुर्गायाश्चरितं यत्र विद्यते।
तत्तु भागवतं प्रोक्तं ननु देवी पुराणकम्। ।

(नोट– देवी और कृष्ण दो भेद ; दोनों में समान स्कन्ध और श्लोक संख्या भी समान हैं ऐसा सुना है पर आधुनिक कृष्ण भागवत में 14500 के लगभग ही श्लोक उपलब्ध है) श्रीधर की टीका में इन दोनों के संदर्भ में एक डाऊटेबिल थोट भी है पर वह खास नहीं ; क्योंकि मानव को ज्ञान से मतलब होना चाहिए न कि उवाच प्रोसेसिंग से कि किसने किससे और कब कहा , शिव पुराण में कहा है कि 18 पुराणों में जो भागवत नाम आया है वह मात्र पराशक्ति (देवी) के चरित से युक्त है न कि श्रीकृष्ण से युक्त , और परीक्षित का उद्धार देवी भागवत से ही हुआ था अन्य किसी भी प्रकार से नहीं , क्योंकि (श्रीधर टीका और भविष्य पुराण तथा में कहा है कि देवीभागवत की तर्ज पर एक परम भक्त ने श्रीमद्भागवत की रचना करने की इच्छा की , वह सन् 1300 के समीप वृन्दावन गया और उसने कठोर तपस्या की तब भगवान परब्रह्म श्रीकृष्ण प्रकट हुये, तब भगवान ने उस भक्त को त्रिकालज्ञ बनाया तब उसने श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के समान श्लोकों में

श्रीमद्भागवत महापुराण की रचना की और उसमें जो भी लिखा वह हर श्लोक परम सिद्ध ही है क्योंकि भगवान श्रीकृष्ण ने ही उसे आज्ञा दी कि हे भक्तराज जो भी आपके द्वारा रचित इस पुराण को पढ़ेगा वह मेरा धाम

निश्चित ही पायेगा और कालान्तर में इस पुराण को ही वैष्णवजन देवीभागवत के समतुल्य स्थान देंगे और इसके हर श्लोक के पाठ से अनेक यज्ञों, दानों और समस्ततीर्थस्थल पर यात्रा करने का फल भी मिलेगा और गोलोक भी , अतः दोनों ही प्रकार से यह भागवत स्वयं सिद्ध ही है और परम फल देने वाली कल्पलता है।

अतः शैव व शाक्त लोग भी इस वैष्णवीय भागवत का परम सम्मान करें और वैष्णव मत के अनुसार 18 पुराणों में जो भागवत है वही वेदव्यास जी की अंतिम पुराण हैं।

अक्षयरुद्र अंशभूतशिव यह कहता है कि दोनों मत वाले उलझे न जो श्रीकृष्णमयी श्रीमद्भागवत महापुराण पढ़ेंगे वह गोलोक ही जायेंगे और जो देवी भागवत पढ़ेंगे वे मणिद्वीप जायेंगे। काहे फालतू में झगड़े करते हो। कहीं लड़ाई करते करते मर गए तो (सात दिन में परीक्षित तो तर गए पर आप माराकाटी लड़ाई झगड़े में निश्चित ही नरक जाओगे । यथार्थ भागवत श्रीमद्देवीभागवत है या कृष्ण भागवत यह केवल 1000 साल पुरानी पाण्डुलिपी ही प्रमाणित करेगी। पाण्डुलिपि के अभाव में यदि आप दोनों संप्रदाय के लोग लड़ते हो तो मूर्खता है। खैर आज एक भक्त ने प्रश्न किया कि अठारह पुराणों में कौन कौन सी है इस कारण बता रहे हैं जो ईश्वर की कृपा से आपके प्रश्न पुस्तक की शोभा बनेगा यह प्रश्न। दोनों की

समान फलश्रुति है और श्रीकृष्ण चरित्र से युक्त होने से हमारे अनुसंधान के अनुसार यही नंबर वन ग्रंथ है वैष्णवों का ; इसमें ब्रह्मवैवर्त पुराण और विष्णु पुराण का ही सार समाया है जो कि श्रीकृष्णद्वैपायन जी ने लिखी;

6.भविष्य पुराण (14000)

7.नारदीय (25000)

8. मार्कण्डेय (9000)

9.अग्नि(15400 श्लोक)

10.ब्रह्मवैवर्त (18000 श्लोक)

11.लिंग (11000 श्लोक)

12.वराह (24000 श्लोक, पर यह गिनना पड़ेगा क्योंकि इसका आकार अत्यन्त लघु है जो आजकल प्राप्त हो रहा है ऐसा लगता है कि इसमें 9000 के लगभग ही कुल श्लोक होंगे)

13.वामन (10,000 श्लोक)

14.कूर्म (17000 श्लोक)

15.मत्स्य (14000 श्लोक)

16.गरुड (19000 श्लोक)

17. स्कन्द (81,000+101 इसके लिए श्लोक 12/13/7 पढ़े श्रीमद्भागवत में)

तथा

18.ब्रह्माण्ड(12000 श्लोक) ये अठारह पुराण कहे गये हैं।

शिवजीका यश सुननेवाले मनुष्योंको ये 18 पुराण यश तथा पुण्य प्रदान करते हैं ।

सूतजी बोले– हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! आपने जिन अठारह पुराणोंके नाम कहे हैं, अब उनका निर्वचन कीजिये ॥

व्यासजी बोले – (हे सूत!) यही प्रश्न ब्रह्मयोनि तण्डीने नन्दिकेश्वरसे किया था, तब उन्होंने जो उत्तर दिया था, उसीको मैं कह रहा हूँ ॥ १२४ ॥

(शिवपुराण)

नन्दिकेश्वर बोले – हे तण्डि मुने! साक्षात् चतुर्मुख ब्रह्मा स्वयं जिसमें वक्ता हैं, उस प्रथम पुराणको इसीलिये ब्रह्मपुराण कहा गया है ॥ १२५ ॥

जिसमें पद्मकल्पका माहात्म्य कहा गया है, वह है ॥ १२६ ॥

दूसरा पद्मपुराण कहा गया पराशर ने जिस पुराणको कहा है, वह विष्णुका द्य ज्ञान करानेवाला पुराण विष्णुपुराण कहा गया है। पिता एवं पुत्रमें अभेद होनेके कारण यह व्यासरचित भी माना जाता है ॥ १२७ ॥

जिसके पूर्व तथा उत्तरखण्डमें शिवजीका विस्तृत चरित्र है, उसे पुराणज्ञ शिवपुराण कहते हैं ॥ १२८ ॥

जिसमें भगवती दुर्गाका चरित्र है, उसे देवीभागवत नामक पुराण कहा गया है ॥ १२९ ॥

नारदजीद्वारा कहा गया पुराण नारदीय पुराण कहा जाता है । हे तण्डि मुने! जिसमें मार्कण्डेय महामुनि वक्ता हैं, उसे सातवाँ मार्कण्डेयपुराण कहा गया है। अग्निद्वारा कथित होनेसे अग्निपुराण एवं भविष्यका वर्णन होनेसे भविष्यपुराण कहा गया है । १३०–१३१ ॥

ब्रह्मके विवर्तका आख्यान होनेसे ब्रह्मवैवर्त– पुराण कहा जाता है तथा लिंगचरित्रका वर्णन होनेसे लिंगपुराण कहा जाता है ॥ १३२ ॥

हे मुने! भगवान् वराहका वर्णन होनेसे बारहवाँ वाराह पुराण है, जिसमें साक्षात् महेश्वर वक्ता हैं और स्वयं स्कन्द श्रोता हैं, उसे स्कन्दपुराण कहा गया है।

वामनका चरित्र होनेसे वामनपुराण है। कूर्मका चरित्र

होनेसे कूर्मपुराण है तथा मत्स्यके द्वारा कथित (सोलहवाँ)

मत्स्यपुराण है ॥ १३३–१३४॥

जिसके वक्ता स्वयं गरुड हैं, वह (सत्रहवाँ) गरुडपुराण है। ब्रह्माण्डके चरित्रका वर्णन होनेके कारण (अठारहवाँ) ब्रह्माण्डपुराण कहा गया है ॥ १३५

●●●●●●●●●●●●●●●●●

भागवत पुराण

भागवत दो हैं। एक श्रीमद् कृष्ण भागवत और दूसरा श्रीमद्देवीभागवत महापुराण।

श्री विष्णु या नारायण अथवा श्रीकृष्ण जी के भक्त कृष्ण मयी श्रीमद्भागवत को 18 पुराणों में गिनते हैं जबकि देवी के भक्त देवी भागवत को।

आइये दोनों की विषय सूची देखें।

श्रीमद्भागवत वैष्णव ग्रंथ है जबकि देवी भागवत शाक्त ग्रंथ है। बस यही भेद है। तत्वतः हरि और शिव, दुर्गा और श्री समान ही हैं। ये सब कुछ मात्र एक परम तत्व है।

000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000000

श्रीमद्भागवत –

श्रीमद्भागवत में 12 स्कंध हैं। सभी स्कंधों को मिलाकर 335 अध्याय हैं। इसमें 18000 श्लोक हैं पर गिनने पर 14000–15000 के आसपास ही निकलते हैं, शायद कुछ श्लोक हटा दिए या मिले ही नहीं इस कारण जितने मिले उतने ही प्रकाशित कर दिये।

वर्णित विषय

पहला स्कंध –नैमिष क्षेत्र की कथा, अवतार कथा के प्रसंग में भगवान श्रीकृष्ण के चरित्र का वर्णन, श्री कृष्ण द्वारा परीक्षित की रक्षा, श्री कृष्ण का द्वारिका गमन, धृतराष्ट्र का स्वर्ग के लिए प्रस्थान इत्यादि।

दूसरा स्कंध– विष्णु की भक्ति की महिमा, विराट सृष्टि का वर्णन, विराट पुरुष की विभूति का वर्णन इत्यादि। दूसरे स्कंध से ही भागवत की कथा का आरंभ होता है।

तीसरा स्कंध – विदुर–उद्धव संवाद, कृष्ण द्वारा कंस का वध, विराट पुरुष की सृष्टि की कथा, ब्रह्मा की सृष्टि, भगवान विष्णु के वराह अवतार की कथा, कपिल मुनि का जन्म, ध्यान में योग के द्वारा आत्म स्वरूप का ज्ञान इत्यादि।

चौथा स्कंध– मनु की कन्याओं का वर्णन, दक्ष का यज्ञ, ध्रुव के पराक्रम का वर्णन, राजा पृथु द्वारा अश्वमेध यज्ञ इत्यादि।

पांचवां स्कंध– प्रियव्रत की कथा, भगवान विष्णु का जन्म, राजा भरत का विवाह, सुमेरु पर्वत के आसपास का वर्णन, समुद्र सहित छह द्वीपों का वर्णन, सूर्य की गति, चंद्रमा और उसकी गतियों, शेषनाग इत्यादि।

छठा स्कंध– प्रजा की रचना करने के लिए दक्ष का हरिभजन, इंद्र को नारायण कवच का उपदेश, वृत्रासुर की कथा, चित्रकेतु की कथा, दिति के पुंसवन व्रत की कथा इत्यादि।

सातवां स्कंध– भगवान विष्णु के नरसिंह अवतार की कथा और हिरण्यकशिपु का वध, चारों आश्रमों के धर्म का वर्णन इत्यादि।

आठवां स्कंध–स्वायंभुव, स्वारोचिष, उत्तम और तामस इन चार मनुओं का वर्णन, गजेंद्र मोक्ष का वर्णन, समुद्र मंथन का वर्णन, भगवान विष्णु का वामन अवतार एवं मत्स्य भगवान की लीलाओं का वर्णन इत्यादि।

नवां स्कंध– वैवस्वत मनु के पुत्र का वंश वर्णन, मांधाता के जामाता सौभरि की कथा, कुश और इक्ष्वाकु के पुत्र शशाद के कुल का वर्णन, निमि के वंश का वर्णन, परशुराम के पिता जमदग्नि का वध, विश्वामित्र के वंश की कथा, नहुष के पुत्र ययाति की कथा, दिवोदास की कथा, अनु द्रुहु व तुर्वसु के वंश की कथा इत्यादि।

दसवां स्कंध – भगवान विष्णु के कृष्ण अवतार की कथा कही गई है। कृष्ण के जन्म, उनकी लीलाओं, कंस का वध, कृष्ण के विवाह, सुदामा की कथा, युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ, सुभद्रा हरण इत्यादि।

ग्यारहवां स्कंध – यदुवंश के विध्वंस के लिए मूसल के पैदा होने की कथा, श्री कृष्ण का वैकुंठ गमन, विष्णु के अवतारों की विभूति का वर्णन, ज्ञान की कथा, आत्मा और अन्य सब पदार्थों की उत्पत्ति और नाश, भक्ति योग का वर्णन, कुसंग से योग मार्ग में रुकावट इत्यादि।

बारहवां स्कंध – कलियुग का प्रभाव, वर्णसंकरता का वर्णन, मगध वंश के भविष्य के राजाओं की नामावली, कल्कि अवतार की कथा, राजा परीक्षित को मोक्ष की प्राप्ति, जनमेजय का सर्प यज्ञ, पुराणों के लक्षण, महापुरुषों का वर्णन, मार्कण्डेय की तपस्या इत्यादि।

श्रीमद्देवीभागवत–

श्रीमद्भागवत की तरह देवी भागवत में भी 12 स्कंध हैं। इसकी भी श्लोक संख्या 18000 ही है। इसमें कुल 317 अध्याय हैं।

वेदव्यास जी ने मात्र एक भागवत लिखा था दो नहीं।

शाक्त भक्तों के अनुसार केवल श्रीमद्देवीभागवत ही वेदव्यास जी द्वारा रचित हैं। और इसी मे 18000 श्लोक है। इसमें देवी के विराट रूप के दर्शन और देवी गीता है।

वर्णित विषय–

पहला स्कंध– पुराण के लक्षण, 18 महापुराणों के नाम, उपपुराणों के नाम, शुकदेव जी के जन्म व जीवन की कथा, नारद–व्यास संवाद, हयग्रीव अवतार की कथा, मधु–कैटभ दैत्यों की कथा, बृहस्पति की स्त्री तारा के साथ चंद्रमा का मेल–मिलाप, पुरूरवा का जन्म, धृतराष्ट्र, विदुर व पांडु की उत्पत्ति की कथा इत्यादि।

दूसरा स्कंध– सत्यवती की कथा, मत्स्यगंधा की कथा, व्यासदेव के जन्म की कथा, महामिष राजा का वृतांत, राजा शांतनु की उत्पत्ति व गंगा से विवाह, कर्ण की जन्म कथा, धृतराष्ट्र की मृत्यु, श्रीकृष्ण का वैकुंठ गमन, परीक्षित की कथा, जन्मेजय का सर्प यज्ञ इत्यादि।

तीसरा स्कंध – निर्गुण सगुण की कथा, सगुण के लक्षण, सत्यव्रत ऋषि की कथा, देवदत्त ब्राह्मण की कथा, ध्रुवसंधि की कथा, जयद्रथ का द्रौपदी हरण, विश्वामित्र की कथा, सुदर्शन की कथा, श्री राम का जन्म एवं वन गमन, नवरात्र का व्रत–उपदेश इत्यादि।

चौथा स्कंध– कृष्ण अवतार की कथा का प्रश्न, कर्म फल की प्रधानता, वरुण का धेनु हरण, पुत्र के लिए दिति का व्रत, प्रहलाद का राज्यारोहण, शुक्राचार्य का पुत्र यज्ञ, देवासुर संग्राम इत्यादि।

पांचवां स्कंध– सभी देवों में शिव की प्रधानता का वर्णन, महिषासुर की कथा, मंदोदरी उपाख्यान, धूमलोचन युद्ध, शुंभ–निशुंभ की कथा, चंड–मुंड का वध, रक्तबीज का युद्ध, महामाया का महात्म्य वर्णन, शिवलिंग की थाह लेने के लिए ब्रह्मा और विष्णु का उद्योग, सुरथ और समाधि की देवी उपासना इत्यादि।

छठा स्कंध – वृत्रासुर की कथा, इंद्र के स्वर्ग छोड़कर मानसरोवर जाने की कथा, इंद्र और नहुष की कथा, कलियुग महिमा, शुनःशेप की कथा, लक्ष्मी को शिव का वरदान, अगस्त्य और वशिष्ठ की उत्पत्ति, जनक की उत्पत्ति, हैहय–गण की कथा, नारद के पुत्र से जुड़ी कथा इत्यादि।

सातवां स्कंध– इंद्र और सूर्य वंश की कथा, च्यवन ऋषि की कथा, शर्याति की कथा, मांधाता के वंश का वर्णन, सत्यव्रत की कथा, हरिश्चंद्र एवं उसके पुत्र रोहित की कथा, शताक्षी देवी का महात्म्य, दक्ष के घर सती की उत्पत्ति, तारकासुर का वर्णन, योग का वर्णन, ब्रह्म ज्ञान का उपदेश, भक्ति और ज्ञान का वर्णन, देवी पूजा का विधान इत्यादि।

आठवां स्कंध– वराह अवतार की कथा, जंबूद्वीप का वर्णन, सुमेरु पर्वत का वर्णन, नद, नदी और देवी का वर्णन, सूर्य व चंद्रमा की गति का वर्णन, नरकों के नाम इत्यादि।

नवां स्कंध– देवी की अनेक मूर्तियों का वर्णन और पूजा विधि, विष्णु और महादेव की उत्पत्ति, सरस्वती कवच और स्तोत्र, कलि का वर्णन, कल्कि अवतार की कथा, पृथ्वी की उत्पत्ति, गंगा की उत्पत्ति व पूजा, तुलसी की कथा, विश्वध्वज का उपाख्यान, सीता हरण, सीता का द्रौपदी रूप से जन्म ग्रहण, द्रोपदी के पांच पति होने का कारण, शंखचूड़ और शिव का युद्ध, महालक्ष्मी की कथा, समुद्र मंथन की कथा, सती सावित्री और सत्यवान की कथा, जन्माष्टमी और शिवरात्रि व्रत का विधान, 86 कुंडों का वर्णन, मनसा देवी की कथा, सुरभि की कथा, दुर्गा और राधा का महात्म्य इत्यादि।

दसवां स्कंध–शिव द्वारा विंध्याचल की गति रोकना, चाक्षुष मनु की कथा, महाकाली चरित, मधु–कैटभ वध, शुंभ–निशुंभ वध, महिषासुर वध, भ्रामरी देवी की कथा इत्यादि।

ग्यारहवां स्कंध –सदाचार और नित्यक्रिया का वर्णन, रुद्राक्ष की महिमा, भस्म धारण का महात्म्य, त्रिपुंड का महात्म्य, गायत्री की 24 मुद्रा और गायत्री जाप के महात्म्य इत्यादि।

बारहवां स्कंध–गायत्री की अद्भुत महिमा का वर्णन, गायत्री सहस्त्रनाम, गायत्री स्तोत्र, गायत्री की कृपा से गौतम की सिद्धि की कथा इत्यादि।

●●●●●●●●●●●●●●●●●

एक श्लोक भी 18 पुराणों को लेकर प्रसिद्ध है जो विष्णु पुराण से है। पर उस श्लोक में शिव पुराण का स्थान वायु पुराण ने लिया है। ऐसा ही भाव नारद पुराण का है।

पर वैष्णवीय भागवत में शिव पुराण का ही वर्णन है और शाक्त संहिता उमा संहिता में भी शिव पुराण का ही नाम है। वैसे अनुक्रमणिका को देखा जाये तो शिव पुराण और वायु पुराण की अनुक्रमणिका एक समान नहीं पर हाँ वायु पुराण में भी 24000 श्लोक हैं यह नारद पुराण कहता है। और वायु पुराण में दो भाग है पूर्व और उत्तर।

पुराण अठारह हैं।

देखे विष्णु पुराण के अनुसार–

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम् ।

अनापलिंगकूस्कानि पुराणानि प्रचक्षते ॥

म–2, भ–2, ब्र–3, व–4 ।

अ–1,ना–1, प–1, लिं–1, ग–1, कू–1, स्क–1 ॥

विष्णु पुराण के अनुसार उनके नाम ये हैंकृ
विष्णु, पद्म, ब्रह्म, वायु
भागवत, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि,
ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वाराह, स्कंद,
वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड,
ब्रह्मांड और भविष्य।

और 18 पुराणों से युक्त ढाई श्लोक शिवपुराण की उमा संहिता के अध्याय 44 में भी है जो श्लोक 120,121 तथा 122 के आधे में है ।

*****

अध्याय–58

द्वयोपनिषद

यह उपनिषद मोक्ष का मूलमंत्र है जिसमें गुरुतत्व की प्राप्ति को ही सब कुछ बताया गया है, इसके अनुसार गुरुसेवा ही परम सेवा है ; और यह एक नहीं अपितु 100 प्रतिशत ग्रंथों में भी सारभूत वाणी है, परंतु गुरु अपरोक्ष ज्ञाननिष्ठ हो यही शर्त है। गुरु अपरविद्या से नहीं अपितु पराविद्या के कारण तद् रूप होना चाहिए।

अथ श्री द्वयोपनिषद्

आचार्यो वेदसंपन्नो विष्णुभक्तो विमत्सरः ।

मन्त्रज्ञो मन्त्रभक्तश्च सदामन्त्राश्रयः शुचिः ॥१॥

जो आचार्य वेद सम्पन्न, मंत्रों का ज्ञाता, मंत्रों का भक्त, मंत्रों का आश्रय लेने वाला, पुराणज्ञ, विशेषज्ञ, पवित्र, ईर्ष्यारहित, विष्णु भक्त और गुरु भक्त है, ऐसे लक्षणों से सम्पन्न व्यक्ति को 'गुरु' कहते हैं ॥

गुरुभक्तिसमायुक्तः पुराणज्ञो विशेषवित्।

एवं लक्षणसंपन्नो गुरुरित्यभिधीयते ॥२॥

जो आचार्य वेद सम्पन्न, मंत्रों का ज्ञाता, मंत्रों का भक्त, मंत्रों का आश्रय लेने वाला, पुराणज्ञ, विशेषज्ञ, पवित्र, ईर्ष्यारहित, विष्णु भक्त और गुरु भक्त है, ऐसे लक्षणों से सम्पन्न व्यक्ति को 'गुरु' कहते हैं ॥

आचिनोति हि शास्त्रार्थानाचारस्थापनादपि।

स्वयमाचरते यस्तु तस्मादाचार्य उच्यते ॥३॥

जो शास्त्रों के अर्थ को सम्यक् प्रकार से चुनता है (समझता है) और सदाचार की न केवल स्थापना करता है, वरन् स्वयं भी वैसा ही आचरण (सदाचरण) करता है, उसे आचार्य कहते हैं ॥

गुशब्दस्त्वन्धकारः स्यात् रुशब्दस्तन्निरोधकः।
अन्धकारनिरोधित्वाद्गुरुरित्यभिधीयते ॥४॥

गुरु शब्द में 'गु' का अर्थ अन्धकार और 'रु' शब्द का अर्थ उसका (अन्धकार का) निरोधक है। (अज्ञान के) अन्धकार को रोकने के कारण ही (अन्धकार रोकने वाले व्यक्ति को) गुरु कहते हैं ॥

गुरुरेव परं ब्रह्म गुरुरेव परा गतिः ।
गुरुरेव परं विद्या गुरुरेव परं धनम् ॥५॥

गुरु ही परम ब्रह्म है, गुरु ही परागति है, गुरु ही परम विद्या है और गुरु को ही परम धन कहा गया है।।

गुरुरेव परः कामः गुरुरेव परायणः ।
यस्मात्तदुपदेष्टासौ तस्मादगुरुतरो गुरुः ॥६॥

गुरु ही सर्वोत्तम अभिलषित वस्तु है, गुरु ही परम आश्रय स्थल है तथा परम ज्ञान का उपदेष्टा होने के कारण ही गुरु महान् (गुरुतर) होता है ॥

यस्सकृदुच्चारणः संसारविमोचनो भवति । सर्वपुरुषार्थसिद्धिर्भवति।
न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तत इति। य एवं वेदेत्युपनिषत् ॥७॥

'गुरु' शब्द का उच्चारण एक बार भी कर लेने से संसार से मुक्ति प्राप्त हो जाती है। उसके (शिष्य के गुरु उच्चारण से) सभी पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं। फिर वह कदापि इस संसार में पुनरागमन नहीं करता, कभी पुनरावर्तन नहीं

करता, यह सत्य है। जो इसे ठीक प्रकार समझता है (उसे सभी फल प्राप्त होते हैं) ||

इतिः द्वयोपनिषद् ||

हे प्रभु! हे दीनानाथ गुरुशिव रक्षा करो रक्षा करो रक्षा करो।

*****

अध्याय–59

श्री गुरु पादुका पंचकम्

ॐ नमो गुरुभ्यो गुरुपादुकाभ्यो। नमः परेभ्यः परपादुकाभ्यः ।।
आचार्य सिद्धेश्वर पादुकाभ्यो । नमोस्तु लक्ष्मीपति पादुकाभ्यः ।।1।।

सभी गुरुओं को नमस्कार, सभी गुरुओं की पादुकाओं को नमस्कार । श्री गुरुदेव जी के गुरुओं अथवा परगुरुओं एवंउनकी पादुकाओं को नमस्कार । सभी आचार्यों एवं सिद्ध विद्याओं के स्वामी की पादुकाओं को नमस्कार बारंबार श्री गुरुपादुकाओं को नमस्कार ।

कामादि सर्प व्रजगारुडाभ्यां। विवेक वैराग्य निधि प्रदाभ्यां ।।
बोध प्रदाभ्यां द्रुत मोक्षदाभ्यां । नमो नमः श्री गुरु पादुकाभ्यां ।।2।।

यह अंतःकरण के काम क्रोध आदि महा सर्पों के विष को उतारने वाली विष वैद्य है। विवेक अर्थात अन्तरज्ञान एवं वैराग्य का भंडार देने वाली है जो प्रत्यक्ष ज्ञान प्रदायिनी एवं शीघ्र मोक्ष प्रदान करनेवाली हैं श्री गुरुदेवकी ऐसी पादुकाओं को नमस्कार है नमस्कार है।

अनंत संसार समुद्रतार, नौकायिताभ्यां स्थिर भक्तिदाभ्यां ।
जाक्याब्धि संशोषण बाड़याभ्यां, नमो नमः श्री गुरु पादुकाभ्यां ।।3।।

अंतहीन संसार रूपी समुद्र को पार करने के लिये जो नौका बन गई है ।

अविचल भक्ति देने वाली आलस्यप्रमाद औरअज्ञान रूपी जड़ता के समुद्र को भस्म करने के लिये जो वडवाग्नि समान है ऐसी श्री गुरुदेव की चरण की चरण पादुकाओं को नमस्कार हो, नमस्कार हो ।।

ऊँकार ह्रींकार रहस्ययुक्त श्रींकार गुढ़ार्थ महाविभुत्या।
ऊँकार मर्मं प्रतिपादिनीभ्यां नमो नमः श्री गुरु पादुकाभ्यां ।।4।।

जो वाग बीज ऐं कार और माया बीज ह्रीं कार के रहस्य से युक्त षोडसी बीज श्रीं कार के गूढ़ अर्थ को महान ऐश्वर्य से ॐ कार के मर्मस्थान को प्रगट करनेवाली हैं ऐसी श्री गुरुदेव की चरण पादुकाओं को नमस्कार हो, नमस्कार हो।

होत्राग्नि, हौत्राग्नि हविष्य होतृ होमादि सर्वकृति भासमानम् ।
यद ब्रह्म तद वो धवितारिणीभ्यां, नमो नमः श्री गुरु पादुकाभ्यां ।।5।।

होत्र और हौत्र ये दोनों प्रकार की अग्नियों में हवन सामग्री होम करने वाला होता हैं और होम आदि रूप में भासित एक ही परब्रह्म तत्त्व का साक्षात अनुभव कराने वाले श्री गुरुदेव की चरण पादुकाओं को नमस्कार होनमस्कार हो । (हे श्रीगुरुदेव महादेव ! आपकी चरण पादुकाओं को मैं अंशभूत शिव नमस्कार करता हूँ, बार बार नमस्कार करता हूँ।)

इस प्रकार परब्रह्म श्रीगुरुप्रभु व उनकी चरण पादुकाओं की महिमा अनंत है।

*****

अध्याय–60
कुलार्णव तंत्रोक्त पादुका स्तोत्रम्

परम वीतरागी और ज्ञाननिष्ठ श्री नंदीश्वरजी, श्रीसनत्कुमार सनतादि ब्रह्मनिष्ठ देव, नारदजी, वाल्मीकि जी, इस वैवस्वत् मन्वंतर के 27 वेदव्यासजी ,शुकदेव जी, जड़भरत, कपिल प्रभु, ऋषभ जी तथा सभी ब्रह्मवेत्ताओं और उनकी चरणरज, चरण पादुकाओं व चरणामृत को कोटी कोटी बार नमन्।

परा श्री पादुका स्मृति

श्री देव्युवाच–

कुलेश श्रोतुमिच्छामि पादुका भक्तिलक्षणम्।
आचरमपि देवेंश वद मे करुणानिधे।।

ईश्वर उवाच–

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि।
तस्य श्रवणमात्रेण भक्तिराशु प्रजायते।।
कोटी कोटी महादानात् कोटिकोटिमहाव्रतात्।
कोटी कोटी महायज्ञात्। परा श्रीपादुकास्मृति।।
कोटी कोटी मंत्र जापात् कोटितीर्थावगाहनात।
कोटी देवार्चनाद्देवी परा श्री पादुकास्मृतिः।।
महारोगे महोत्पाते महादोषे महाभये।
महापदि महापापे स्मृता रक्षति पादुका।।
दुराचारे दुरालापे दुःसंगेदुष्प्रतिग्रहे।
दुराहारे च दुर्बुद्धौ स्मृता रक्षति पादुका।।
तेनाधीतं स्मृतं ज्ञातुम् इष्ट दत्तंच पूजितम्।
जिह्वाग्रे वर्तते यस्य सदा श्रीपादुकास्मृतिः।।
सकृत् श्रीपादुकां देवि यो वा जपति भक्तितः।

सः सर्व पापरहितः प्राप्नोति परमां गतिम।।
शुचिर्वाप्यशुचिर्वापि भक्त्या स्मरति पादुकाम्।
अनायासेन धर्मार्थकाममोक्षान लभते सः।।
श्रीनाथचरणाम्भोजं यस्यां दिशि विराजते।
तस्या दिशि नमस्कुर्यात् भक्त्या प्रतिदिनं प्रिये।

हे देवी! श्रीनाथ का मूल तत्व गुरुतत्व ही है अतः गुरुचरण पादुकाओं के स्मरण मात्र से शिष्य सब कुछ पा लेता है यहाँ तक कि चारों पुरुषार्थ भी मात्र पादुकाओं की स्थापना करके नित्य पंचोपचार से पूजा अथवा नित्य उन पादुकाओं को प्रणाम करके ही पा लेता है। कोटी कोटी व्रत, संपूर्ण ब्रह्माण्डों के दान का फल, नित्य नीलकोटी धन का संतों या गरीबों को दान, पृथ्वीभर के समूचे तीर्थों में नित्य त्रिकाल स्नान का फल और यज्ञादि भी जो फल देने में असमर्थ हैं वे फल भी मात्र पादुकाओं के सुमिरण से गुरुभक्त प्राप्त कर लेता है। इसमें तनिक भी संशय नहीं करना चाहिए क्योंकि फल देने वाला मैं महादेव ही हूँ।

महारोग, महोत्पात, महादोष, महाभय, महापाप में भी श्री गुरु चरण पादुकाओं का स्मरण तत्काल रक्षा करके परम विश्रांति देता है तथा यह सुमिरण धर्म, वैराग्य, भक्ति व ज्ञान विज्ञान सब कुछ पाकर भवरोग से मुक्त कर कृतकृत्य कर देता है।

*****

अध्याय–61

श्री गुरुपादुका स्तोत्रम्

गुरु चरण पादुकाओं की महिमा का गान तो सारे ब्रह्माण्डों के महान से भी महान नायक भी नहीं कर सकते, रामायण काल में भगवान श्रीराम की चरण पादुकाओं के माहात्म्य का वर्णन हुआ है।

अनंत–संसार समुद्र–तार नौकायिताभ्यां गुरुभक्तिदाभ्याम्।
वैराग्य साम्राज्यद पूजनाभ्यां नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम् ।1।

जिसका कहीं अंत नहीं है, ऐसे इस संसार सागर से जो तारने वाली नौका के समान हैं, जो गुरु की भक्ति प्रदान करती हैं, जिनके पूजन से वैराग्य रूपी आधिपत्य प्राप्त होता है, मेरे, उन श्री गुरुदेव की पादुकाओं को नमस्कार है।

कवित्व वाराशिनिशाकराभ्यां दौर्भाग्यदावांबुदमालिकाभ्याम्।
दूरिकृतानम्र विपत्ततिभ्यां नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम् ।2।

अज्ञान के अंधकार में जो पूर्ण चन्द्र के समान उज्जवल हैं, दुर्भाग्य की अग्नि के लिए जो वर्षा करने वाले मेघ के समान हैं (अर्थात जो दुर्भाग्य रुपी अग्नि को बुझा देती हैं) जो सभी विपत्तियों को दूर कर देती हैं, उन श्री गुरुदेव की पादुकाओं को नमस्कार है।

नता ययोः श्रीपतितां समीयुः कदाचिद–प्याशु दरिद्रवर्याः।
मूकाश्च वाचस्पतितां हि ताभ्यां नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम् ।3।

जिनके आगे नतमस्तक होने से श्री (धन आदि समृद्धि) की प्राप्ति होती है, दरिद्रता के कीचड़ में डूबा हुआ व्यक्ति भी समृद्ध हो जाता है, जो मूक (अज्ञानी, बिना सोचे समझे बोलने वाला) व्यक्ति को भी कुशल वक्ता बना देती हैं, उन श्री गुरुदेव की पादुकाओं को नमस्कार है।

नालीकनीकाश पदाहृताभ्यां नानाविमोहादि–निवारिकाभ्यां।
नमज्जनाभीष्टततिप्रदाभ्यां नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम् ।4।

श्री गुरुदेव के आकर्षक चरण कमल इस संसार से उत्पन्न हुए मोह और लोभ का नाश करते हैं, जो लोग इनके सम्मुख झुकते हैं उन्हें अभीष्ट (मनचाहा) फल की प्राप्ति होती है, मैं, श्री गुरुदेव की इन पादुकाओं को नमस्कार है।

नृपालि मौलिव्रजरत्नकांति सरिद्विराजत् झषकन्यकाभ्यां।
नृपत्वदाभ्यां नतलोक पंक्तेः नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम् ।5।

एक राजा के मुकुट की मणि के समान जिनकी चमक होती है, मगरमच्छों से भरी नदी के समीप मनभावन कन्या के समान (अभय का सौन्दर्य प्रकट करते हुए) जो उपस्थित होती हैं, जो इनके सामने झुकते वाले लोगों को नृपत्व (राजा की भांति सम्मान) प्रदान करती हैं, उन श्री गुरुदेव की पादुकाओं को मेरा नमस्कार है।

पापांधकारार्क परंपराभ्यां तापत्रयाहींद्र खगेश्र्वराभ्यां।
जाड्याब्धि संशोषण वाडवाभ्यां नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम् ।6।

जो पाप के असीम अन्धकार को नष्ट करने वाले सूर्य के समान है, जो संसार के तीनों ताप (दैहिक, दैविक और भौतिक ये तीन प्रकार के कष्ट होते हैं) रुपी सर्पोंको नष्ट करने वाले पक्षीराज गरुड़ के समान हैं, जो अज्ञान रुपी महासागर को सोखने वाली अग्नि रूप हैं, उन श्री गुरुदेव की पादुकाओं को नमस्कार है।

शमादिषट्क प्रदवैभवाभ्यां समाधिदान व्रतदीक्षिताभ्यां।
रमाधवांध्रिस्थिरभक्तिदाभ्यां नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम् ।7।

जो मन के नियंत्रण से प्राप्त होने वाले छः प्रकार के वैभवों को प्रदान करती हैं, जिनकी कृपा से समाधि व्रत के मार्ग की ओर अग्रसर होते हैं, जो

मोक्ष का मार्ग दिखाती हैं और भक्ति रस प्रदान करती हैं, उन श्री गुरुदेव की पादुकाओं को नमस्कार है।

स्वार्चापराणां अखिलेष्टदाभ्यां स्वाहासहायाक्षधुरंधराभ्यां।
स्वांताच्छभावप्रदपूजनाभ्यां नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम् ।8।

जो पुण्यात्मा लोग स्वयं को दूसरों की सहायता के लिए अर्पण कर देते हैं ये उनकी सभी इच्छाएं पूर्ण करती हैं, सच्चे भाव से पूजन करने पर जो मन को स्वछन्द कर देती हैं, उन श्री गुरुदेव की पादुकाओं को नमस्कार है।

कामादिसर्प व्रजगारुडाभ्यां विवेकवैराग्य निधिप्रदाभ्यां ।
बोधप्रदाभ्यां दृतमोक्षदाभ्यां नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम् ।9।

काम आदि दुर्गुण रुपी सर्पों के लिए ये गरुड़ के समान हैं, ये विवेक और वैराग्य की निधि प्रदान करती हैं, बुद्धि प्रदान करती हैं और तुरंत मोक्ष देती हैं, श्री गुरुदेव की इन चरण पादुकाओं को मेरा नमस्कार है।

। इति श्रीगुरुपादुकास्तोत्रं संपूर्णम्।

सद्‌गुरु ब्रह्म (इष्ट)से एकाकार होते हैं इस कारण वे परमात्मा ही हैं ।

अतः चाहो तो परमात्मा उनमें देखो चाहे उनको ही परमात्मा का अवतार मानो समान बाते हैं अथवा कैवल्या से एक ही एक सर्वमय देखो।

*****

अध्याय–62

गुरु कृपा से प्रारब्ध भी क्षय–

जब तक सुख और दुख का अनुभव होता है, तब तक इसे प्रारब्ध भोग मानना चाहिए, क्योंकि कोई भी फल (दुख या सुख की अनुभूति रूपी फल) पूर्व में क्रिया करने के कारण ही उदित होता है। बिना क्रिया के कोई फल नहीं मिलता ।

यदि आप किसी पदार्थ की प्राप्ति से उचक रहे हो तो आप उस पल यथार्थ ज्ञान में स्थित नहीं हो अथवा ज्ञानी नहीं।

और कोई चला गया (दूर गया या मर गया या बिछुड़ गया) तो भी आपको विक्षेप हुआ तो समझ लो कि यह पाप का फल है और यदि मन और मस्तिष्क शान्त है विचलित नहीं तो आपका पाप नष्ट हो चुका ही मानों बस उसका जाना केवल पंचभूतात्मकता का सिद्धांत है उससे आपको क्या?
सब अस्तित्व में कुछ समय तक आते हैं और एक दिन

फुर्र से चिता पर लेटकर गायब हो जाते हैं। यह सभी के जीवन में होता है कोई नवीन बात नहीं ।

आप दादा परदादा या माँ बाप का कितना भी इलाज करा लो यह आपका कर्तव्य अवश्य है पर वे मरेंगे अवश्य, उपचार से 65 वर्ष का वृद्ध बच भी गया तो 85–90 में तो जाएगा ही । अतः शोक, रोने या गिड़गिड़ाने से कुछ नहीं होगा।

बस जब तक है यथासंभव सेवा करके पुण्य कमा लो या सेवा करके फल अर्पित कर दो।

और अपने परम तत्व में स्थित रहो।

बस अक्षय आनंद इसी से मिलेगा अन्यथा हाय मेरी माता मर गई।

हाय मेरा बाप.......

यह सब मात्र अज्ञान और मोह का दुख है।

यथार्थ माता और पिता तो शिवा और शिव को जानों ।

सीता और राम को जानों।

यह सब भौतिक संबंध मात्र ऋणानुबंध हैं।

पर बहुत से बहुत कृतज्ञता व्यक्त कर सकते हो।

वृहद विज्ञान तंत्र भी यही कहता है कि –

माता की भक्ति, पिता में हरि देखकर सेवा (करना धर्म अवश्य है पर यह मुक्त नहीं करेगा अतः यह अनासक्त भाव से सेवा करते रहो पर) सद्गुरु के समान और उनसे अधिक और कुछ भी नहीं है वही इस प्रकार के दुखों से निवृत्त कर सकते हैं।

*****

अध्याय–63

गुरु कृपा पंचरत्न

1. इन्द्रियों के विषयों में आसक्त हो जाने पर व्यक्ति निःसन्देह दुर्गुणों से लिप्त हो जाता है परन्तु इन्हीं इन्द्रियों को वह सम्यक् रूप से वश में कर ले, तो शिव रूप परा सिद्धि को प्राप्त करता है।

2. सांसारिक भोगों का निरन्तर उपभोग करने से, उन्हें भोगने की कामना कभी शान्त नहीं होती, वह उसी तरह और बढ़ती जाती है, जैसे अग्नि में घृत डालने पर वह और अधिक प्रज्वलित होती है।

3. जो साधक मृदु या कटु वचनों का श्रवण करके, स्वादिष्ट या स्वादरहित भोजन करके, सुन्दर या कुरूप दृश्य देखकर तथा सुगन्धित या दुर्गन्धपूर्ण पदार्थ सूँघ कर न तो हर्षोल्लसित होता है और न ही ग्लानि का अनुभव करता है, उसी को जितेन्द्रिय जानना चाहिए।

4. जिसका मन और वाणी पवित्रता से ओत–प्रोत है, जो सभी प्रकार के दोषों से सर्वथा मुक्त है, वही वेदान्त सुनने का फल प्राप्त करता है।

5. ब्राह्मण या संत अथवा पदस्थ व्यक्ति को चाहिए कि वह सम्मान को विष तुल्य उद्विग्नकारी तथा अपमान को अमृत तुल्य माने । जो ब्राह्मण या ज्ञानी (महावर्णी) सम्मान के लिए एक छोटी सी पुष्प माला को भी चाहता है या शॉल श्रीफल या भोगों के लिए एक रुपये की भी दक्षिणा अथवा यह चाहता है कि सभी मेरा सम्मान करें वह संत या ब्राह्मण आनंद से कोसों दूर हो जाता है।

*****

शंकराचार्यांश ब्रह्मानंद अक्षयरुद्र अंशभूतशिव जी की प्रकाशित पुस्तकें –

1. ब्राह्मण गीता
2. शास्त्रों के अद्भुत रहस्य
3. शीघ्र कल्याणकारी कालखण्ड
4. भैरव गीता
5. स्तोत्र निधिवन भाग एक
6. स्तोत्र निधिवन भाग द्वितीय
7. महिमा
8. जिज्ञासा और समाधान
9. नारी जीवन एक संघर्ष
10. मैं ब्रह्म हूँ
11. संसार में कितना सुख
12. संभोग से समाधि किस किसकी लगी (मिथ्या या सत्य)
13. शिव चरित मानस भाग प्रथम
14. शिव चरित मानस भाग द्वितीय
15. दुष्कर्म और नरक की यातनाएं
16. देवी रहस्य
17. अक्षय आनन्द
18. ग्रंथ रहस्य
19. आपके प्रश्न
20. समाधान सरिता
21. परब्रह्म विश्वनाथशिव स्तोत्रम्
22. सांझ ढलेगी तेरी भी
23. गुरु माहात्म्य

अक्षय आनंद
आपके पत्र
स्तोत्र निधिवन
स्तोत्र निधिवन
जिज्ञासा और समाधान
नारी जीवन एक संघर्ष
दुष्कर्म
ब्राह्मण गीता
रहस्य
कालखण्ड
मैं ब्रह्म हूँ
देवी रहस्य
शंकराचार्यांश ब्रह्मानंद अक्षयरुद्र